(उपन्यास)

भैरवप्रसाद गुप्त

द्वितीय संस्करण १९५७

मूल्य

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन गृह
५, खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस, इलाहाबाद

साथियो !

तुम्हारे ही मज़बूत हाथों को !

........ये आवाजें अब और भी बलन्द होती जायँगी। मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर-आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी ! आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलायी है, वह कभी न बुझेगी ! उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी एकता की लड़ी में पिरो कर उसे मजदूरों के इन्कलाब का रास्ता दिखायगी........

पहला भाग

बस जब सिकन्दरपुर बाजार पहुँची, तो शाम की धुँधली छाया आसमान से जमीन पर उतरने लगी थी। कच्ची सड़क पर बाईस मील चलने के बाद बस की हालत ऐसी हो गयी थी, जैसे वह धूल की एक आँधी से गुजर कर आयी हो। सिर से पाँव तक धूल में नहाये हुए मुसाफिरों ने नीचे उतर कर अपने कपड़े झाड़ने शुरू किये, तो धूल और गर्द की एक छोटी-सी आँधी ही उठ गयी। फिर कोई रूमाल से रगड़-रगड़ कर चेहरे पर जमी धूल को साफ कर रहा था, तो कोई खाँस-खँखार कर गले में अटकी धूल को निकाल रहा था, और कोई बार-बार छिनक-छिनक कर नाक में भरी धूल को साफ कर रहा था, तो कोई बस, सड़क, सफर और धूल को कोस-कोस कर दिल का मैल ही निकाले जा रहा था। कच्ची सड़क के गचकों के धक्कों के कारण उनके शरीर की हड्डियों का पोर-पोर दर्द कर रहा था, और जहाँ धूल उनकी साँस की नली और फेफड़ों में भर गयी थी, वहीं उनकी सूरतें भी ऐसे बदल दी थीं, कि काले-गोरे, सुन्दर-असुन्दर की तमीज़ करना भी मुश्किल था। इस हालत में कोई नाजुक मिजाज मुसाफिर बस, सफर, सड़क और धूल को कोसे, बल्कि पानी पी-पी कर भी कोसे, तो उसकी यह हरकत किसी भी प्रकार अनुचित ही कैसे कही जा सकती है?

पर नरेन को इन सब से कोई शिकायत न थी। वह बस से हाथ में अटैची लिये ऐसे उतरा, जैसे वह बस न हुई ट्राम हुई। और निहायत इतमीनान से अटैची जमीन पर रख, एक ही साथ दोनों धूल-भरे हाथ ख़ाकी, फ़ौजी, ढीली-ढाली पतलून की दोनों जेबों में डाल, एक हाथ से सिग्रेट का पैकेट और दूसरे से दियासलाई की डिब्बी निकाली। फिर एक सिग्रेट धूल-भरे होंठों में थाम, दियासलाई जला कर सुलगायी और फिर पैकेट और डिब्बी जेबों में डाल, अटैची उठा कर मुँह से धुआँ छोड़ता चल पड़ा।

वह काफी तेज चल रहा था। फिर भी उसके सधे हुए कदमों में कोई अव्यवस्था नहीं थी। उसके पैरों ने जिस तरह चलने की शिक्षा पायी थी, उसी तरह एक सुव्यवस्थित गति से वे उठ रहे थे। बूटों से एक ही तरह की एक ही गति में बँधी हुई आवाज आ रही थी। ऊपर का शरीर सीधा तना हुआ था। हाथ एक गति से आगे-पीछे आ-जा रहे थे। आँखें सीधे सामने देख रही थीं। सिर तनिक ऊपर को उठा हुआ था। टेढ़ी, फौजी टोपी से एक अजब रोब टपक रहा था।

चाँद और सितारों की गुलकारी करने के लिए आसमान के धुँधले कैनवेस पर रात की रानी तेजी से स्याही की कूचाँ फेर, काली पृष्ठ-भूमि तैयार करने में जुटी हुई थी। धुँधलका तेज़ी से काले आवरण में ढँक रहा था। दृष्टि की सीमा तेज़ी से नज़दीक, और नज़दीक खिंचती आ रही थी।

नरेन की चाल की तेज़ी क्रमशः बढ़ती जा रही थी। उसका गाँव यहाँ से दो मील पर है। उसे जल्द-से-जल्द पहुँचना है। उसके गाँव, प्यारे गाँव की कशिश उसे खींच रही है। और वह कशिश पग-पग पर बढ़ी जा रही है, ठीक उसी तरह जैसे चुम्बक की आकर्षण-शक्ति ज्यों-ज्यों दूरी कम होती जाती है, बढ़ती जाती है। और उसके कदम हर कदम पर तेज, और तेज होते जा रहे हैं। अपनी सात साल की फौजी ज़िन्दगी

में उसने हिन्दुस्तान, बर्मा, मलाया के बड़े-बड़े, सुन्दर-सुन्दर शहरों को फ़ौजी, फिर कैदी, फिर हिन्द फ़ौज के सैनिक की हैसियत से देखा है। पर जहाँ कहीं भी रहा है, सुख-दुख की जिस परिस्थिति में भी रहा है, उसे अपने इस छोटे, महत्वहीन गाँव की याद एक क्षण को भी नहीं भूली है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति जैसे हमेशा हर चीज को अपनी ओर खींचती रहती है, उसी तरह उसने अनुभव किया है, कि उसका गाँव भी उसे हमेशा अपनी ओर खींचता रहा है। उसके हृदय में अपने इस गाँव के लिए जो आकर्षण है, वह दुनिया के किसी भी बड़े-से बड़े, सुन्दर-से सुन्दर शहर के लिए भी नहीं हो पाया। अपनी माँ से बिछुड़ा हुआ बेटा जिस तरह तड़पता रहता है, उसी तरह वह भी अपने प्यारे गाँव से बिछुड़ कर उसके लिए हमेशा तड़पता रहा है। उसकी मिट्टी, उसके पानी, उसकी हवा, उसके खेत-खलिहान, उसके बाग-बगीचे, उसके रहने वालों के लिए वह ऐसे तरसता रहा है, जैसे दुनिया में वही उसके सब-कुछ हों, जैसे उनके सिवा और किसी से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो, जैसे संसार का सारा प्रेम, सारा स्नेह, सारा आकर्षण, सारा अपनत्व उन्हीं में घनीभूत होकर रह गया हो, जैसे उन्हीं में जीवन का सारा सुख, सारी शान्ति सिमट कर रह गयी हो। अपना गाँव, दुनिया का वह नन्हा-निराला टुकड़ा, दुनिया के शहरों और गाँवों के बीच उसके हृदयाकाश पर वैसे ही चमकता रहा है, जैसे आसमान के करोड़ों तारों में शुक्र चमकता है। सात साल बाद वह अपने उसी प्यारे गाँव को लौट रहा है।

सात साल का अरसा यों भी कम नहीं होता। दो-चार साल में ही चीजें ऐसी बदल जाती हैं, कि पहिचान मे नहीं आतीं। और फिर गुज़रे सात साल ने तो दुनया का नक्शा ही बदल दिया था। कौन जानता था कि सात साल, सिर्फ सात साल में ही उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए जापान, जर्मनी, इटली, बरतानिया और फ्रांस-जैसे राष्ट्रों के दाँत ऐसे टूट जायेंगे! पर नरेन को आज, सात साल

बाद भी, लग रहा था, जैसे वह अपने गाँव से कल ही का बिछुड़ा हुआ है। उसके गाँव में कोई तब्दीली हुई होगी, इसका ख्याल भी उसके दिमाग में नहीं आ रहा था। उसकी आँखों में तो अब भी गाँव की वही रूप-रेखा नाच रही थी, जो वह सात साल पहले छोड़ गया था। वही बाग-बगीचे, वही खेत-खलिहान, वही तालाब-पोखरे, वही लोग-बाग, वही पास-पड़ोस, माँ, चाचा, बचपन और शुरू जवानी के साथी बिहारी, गोपी, यासीन, बैजू, अलीम और........और अलीम भैया की बीवी....वह भा........आदमी को जो वस्तु जितनी ही अधिक प्रिय होती है, उसे वह हृदय की उतनी ही गहराई में छिपा कर रखता है। हृदय की एक-एक तह खुलती है, एक-एक चीज़ उभरती है, और जब आखिरी तह आती है, तो दूसरों के सामने तो उसे कभी खोलता ही नहीं, अपने सामने भी उसे खोलते जैसे वह सहमता है, झिझकता है, शरमाता है। इसलिए बहुत हुआ, तो ज़रा-सा पर्दा हटा कर, एक नज़र बचा कर जैसे चोर अपनी चुरायी वस्तु की ओर देखता है, देख कर तत्क्षण ढँक देता है, जैसे उसे डर बना रहता है कि कोई उसकी प्रियतम वस्तु को देख न ले, छीन न ले। भाभी की बात मन में उठते ही नरेन की भी कुछ वही हालत हुई। उसके उठते हुए तेज़ कदम सहसा रुक गये। उसने ठिठक कर एक बार अपने चारों ओर सहमी हुई आँखों से देखा, जैसे वह डर गया हो, कि कहीं उसके मन में उठी हुई भाभी की बेआवाज बात किसी ने सुन तो नहीं ली। पर वहाँ सुनने वाला कौन था ? कहावत है कि गाँव की पगडंडियों और बच्चों की आँखें रात हुई नहीं कि बन्द हुईं। रास्ता बिलकुल सुनसान था। अन्धकार का रंग गाढ़ा हो चुका था। अन्धकार में काली सर्पिणी की तरह कई बल खा कर सामने जाती हुई पगडंडी ऐसी दिखायी देती थी, जैसे काली भूमि पर किसी ने उससे भी गाढ़े काले रंग की एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर खींच दी हो। मन्द-मन्द हवा चल रही थी, जिससे पास के बाग

के पेड़ों की पत्तियाँ हिल रही थी, और धीमी खड़खड़ाहट की ऐसी आवाज आ रही थी, जैसे हवा में कोई छोटी नदी कलकल करती धीमी चाल से बहती जा रही हो।

नरेन के कदम और भी तेजी से उठने लगे। जल्द-से-जल्द गाँव पहुँचने की इच्छा और भी तीव्रतर हो उठी। दिल में गाँव और उसके लोगों, अपने लोगों के विषय में सब-कुछ जान लेने की उत्सुकता परेशान हो करवटें ले रही थी। काश, इस वक्त उसे गाँव का कोई आता-जाता नज़र आता, तो वह उससे एक ही साँस में सब-कुछ पूछ लेता....गाँव के बारे में, लोगों के बारे में, माँ के बारे में, साथियों के बारे में, और ....और........मगर नहीं, वह अपनी भाभी के बारे में कैसे किसी से कुछ पूछता ? उसके बारे में पूछने पर कहीं उसकी आँखों की ओर कोई देख लेता, तो ? क्या वह छिपा पाता अपने हृदय के उस गूढ़तम रहस्य को, जो ऐसे अवसरों पर बरबस ही आँखों में प्रतिबिम्बित हो उठता है ? नहीं। तो उसके विषय में कुछ न जान, सब के विषय में सब-कुछ जान कर भी क्या उसे तृप्ति मिल सकती ? यदि नहीं, तो क्या फायदा किसी से कुछ पूछने से ? इसलिए नरेन, तुम बढ़ो, और भी तेज चलो ! गाँव के शुरू में ही, पोखरे के पास ही तो उसका घर है। सबसे पहले तुम उसी से मिलना। वही तो तुम्हारी ज़िन्दगी की सबसे पहिली चीज़ है, जिसके विषय में अक्सर तुम सब के बाद में सोचते हो।

नरेन की चाल तेज, और भी तेज होती गयी। पैर चल रहे थे। हृदय धड़क रहा था। और मस्तिष्क ? मस्तिष्क अतीत की अँधेरी घाटियों में भटक रहा था—

पोखरे के पास प्राइमरी स्कूल है। पचासों लड़के-लड़कियों के साथ नरेन भी पढ़ता है। पोखरे में लोग नहाते हैं, गन्दे कपड़े धोते हैं, गाय, बैल, भैंस और घोड़े भी नहलवाये जाते हैं। इसलिए हेडमास्टर साहब

का हुक्म है कि कोई लड़का पोखरे का पानी न पिये। लड़कों को जब प्यास लगती है, तो वे झुण्ड बनाकर स्कूल से करीब चार सौ कदम दूर के कुएँ पर पानी पीने जाते हैं। उनमें से कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मिला बड़ा लोहे का गगरा उठाता है और कोई रस्सी उठा लेता है। इस झुण्ड में पाँच-सात लड़कों से कम नहीं होते हैं। उनमें से कितनों को सचमुच प्यास लगी रहती है, यह बताना वैसे ही मुश्किल है, जैसे यह जानना कि कितनी बार कोई लड़का पेशाब करने की छुट्टी लेता है, और सचमुच उसे इसकी हाजत होती है या नहीं। सच तो यह है कि स्कूल के कैदखाने से, कुछ ही मिनट के लिए क्यों न हो, लड़के कोई-न-कोई बहाना करके आज़ादी की साँस लेने के लिए हर उचित या अनुचित तरीके से कोशिश करते हैं। अपनी इस हरकत के लिए उन पर मास्टरों की डाँट-फटकार पड़ती है, कभी-कभी क्या, अक्सर ही मार भी पड़ जाती है। पर लड़कों को इसकी परवाह नहीं होती, वे डाँट-फटकार सुन कर, मार खा कर भी अपनी हरकत से बाज नहीं आते। कैद यों भी बुरी चीज है, फिर लड़कपन की कैद, जब लड़के हिरन के बच्चों की तरह सर्व प्रकार मुक्त रह हमेशा छलांगें ही मारते रहना चाहते हैं, कितना बड़ा जुल्म है, कितने बड़े दुख की बात है, इसे कोई प्राइमरी स्कूल का लड़का ही समझ सकता है। भगवान जाने, उस वक्त लड़के इन भेड़ियों-जैसे मास्टरों को, जो हमेशा उन्हें दबोच लेने की ताक में आँखें गड़ाये रहते हैं, और उन निर्दय माँ-बाप को, जो उन्हें इन भेड़ियों को सुपुर्द कर देते हैं, मन-ही-मन कितनी बददुआएँ देते हैं, कितना कोसते हैं! और मास्टरों की हालत जानना चाहते हों, तो आप उन्हीं से पूछिए कि वे इन लड़कों की शरारतों, बदमाशियों और ऊल-जलूल हरकतों से कितना परेशान रहते है। अपनी परेशानी, गुस्सा और झुँझलाहट से छुटकारा पाने के लिए वह लड़कों को डाँटते है, फटकारते हैं, गालियाँ देते हैं, मारते-पीटते है और कड़ी-से-कड़ी सजा भी देते हैं, पर उनकी परेशानी, उनका

गुस्सा, उनकी झुझलाहट कभी ख़त्म होने को नहीं आती। आख़िर उनके पास यह जानने का तरीका ही क्या है, कि जो लड़का पेशाब करने या पानी पीने की छुट्टी माँगता है, उसे सचमुच पेशाब लगी है या नहीं, प्यास लगी है या नहीं ? कभी-कभी बेहद परेशान हो कर मास्टर जब लड़का पेशाब करने की छुट्टी मांगने आता है, तो उसे फटकार सुनाता कहता है, "चलो, बैठ कर पढ़ो ! पेशाब, पेशाब, दिन-भर पेशाब !" लड़का मुँह लटका कर अपनी जगह पर आ बैठता है। मास्टर को कुर्सी पर बैठे-बैठे एक झपकी आ जाती है। थोड़ी देर में दर्जे में एक शोर उठता है। बौखला कर मास्टर उठता है, और पूछता है कि क्या बात है, तो मालूम होता है, कि उस लड़के ने भगई में पेशाब कर दी। यह सुनकर मास्टर की समझ में नहीं आता कि वह क्या करे, लड़के को क्या करे, अपने को क्या करे, अपनी परेशानी को क्या करे ? यह विज्ञान की उन्नति का युग है। हज़ारों अद्भुत आविष्कार हो रहे हैं। कोई वैज्ञानिक इन मास्टरों पर दया कर एक ऐसे किसी यन्त्र का आविष्कार कर देता, जिससे मालूम हो जाता कि लड़के को पेशाब लगी है या नहीं, प्यास लगी है या नहीं, तो इन मास्टरों की एक बहुत बड़ी परेशानी की समस्या जरूर कुछ हल हो जाती।

नरेन ने भी एक बार ऐसा ही किया था। और उसके बाद, पता नहीं क्यों, मास्टर उसे छुट्टी देने से कभी इन्कार नहीं करता। कुएँ पर पानी पीने जाने वाले झुण्डों में अक्सर नरेन भी शामिल रहता। उसे बार-बार छुट्टी देते-देते मास्टर बौखला उठता, पर, जाने क्यों, दाँत पीस कर ही रह जाता, उससे इनकार करते न बनता। कदाचित उसे डर हो गया था कि पेशाब करने की छुट्टी एक बार न दी, तो भगई में पेशाब कर दी, अगर पानी पीने की छुट्टी न दी गयी, तो कहीं उसे गश न आ जाय। और नरेन-जैसा शरारती लड़का इस मौके से फायदा न उठाये, यह कैसे सम्भव था ?

लड़कों का झुण्ड जब गगरा और रस्सी लिये पानी पीने चलता, तो रास्ते में जहाँ-कहीं भी कोई दिलचस्पी की चीज नज़र आती, जरूर रुकता। स्कूल से सौ कदम चलकर ही एक छोटे मिट्टी के घर के सामने सहन में बेर का पेड़ था। उसके नीचे एक अधेड़ उम्र का जुलाहा सुनारों के यहाँ से लायी राख को सैकड़ों बार पानी में छान कर आग में जलाता। उसके हाथ धौंकनी चलाने में व्यस्त रहते। उसकी आँखें सामने उठती हुई नीली, खुशरंग लपटों पर टिकी रहतीं। लड़के वहाँ खड़े हो कभी उन लपटों को देखते और कभी उस जुलाहे की आँखों को। एक दिन पूछने पर उस जुलाहे ने बताया कि वह राख से सोना और चाँदी बनाता है। तभी से लड़के उसे जादूगर समझते हैं। उसके बारे में वे आपस में तरह-तरह की कानाफूसियाँ करते हैं। कोई कहता है, कि वह आँखों से जलती हुई राख पर जादू करता है, जिससे राख सोना और चाँदी बन जाती है। तब लड़के और भी ग़ौर से उसकी आँखों को, जिनमें लपटों की रंग-बिरंगी छायायें पड़ती रहती हैं, देखने लगते हैं, और एक-दूसरे से कहते हैं, "देखो, देखो, उसकी आँखों में सोने-चाँदी के कन चमक रहे हैं!" कोई कहता है, कि बड़े होने पर वह भी यह जादू सीख लेगा, और ढेर-का-ढेर सोना-चाँदी बनायेगा। उसकी बात सुन दूसरे लड़के भी मन-ही-मन कुछ इसी तरह का मनसूबा बाँधते हैं। तभी कोई लड़का कह उठता है, "चलो, चलो, जल्दी करो! नहीं तो देर हो जाने पर मास्टर साहब बिगड़ेंगे।" और लड़के ललचायी नजरों से उन जादू की लपटों की ओर देखते आगे बढ़ जाते हैं।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर एक मसजिद पड़ती है। मसजिद में कलमी आम के दो पेड़ हैं, जिनकी दो-तीन डालियाँ रास्ते के ऊपर फैली हुई हैं। गर्मी के दिनों में जब उन डालों में अंबियाँ नज़र आने लगती हैं, तो लड़के वहाँ ज़रूर रुकने लगते हैं। मसजिद की दीवार ऊँची है,

इसलिए उस पर नहीं चढ़ सकते। ललचायी दृष्टि से वे लटकती हुई नन्हीं-नन्हीं अंबियों को देखते हैं और ढेले उठा-उठा, आने-जाने वालों की नजरें बचा, निशाना साधते हैं। कभी जब दो-चार अंबियाँ उनके हाथ लग जाती हैं, तो मिल-जुल कर, बाँट-चुट कर खूब मजे ले-ले खाते हुए आगे बढ़ जाते हैं। और कभी-कभी जब कोई ढेला चलाते देख कर उन्हें दौड़ाता है, तो वे बेहद डर कर अस्तव्यस्तता की ऐसी हालत में गिरते-पड़ते भागते हैं, कि दौड़ाने वाले को हँसी आये बिना नहीं रहती। फिर भी जब बच-बचा कर निकल जाते हैं, तो खुद अपनी ही पीठ ठोंकने से बाज़ नहीं आते।

उसके बाद अपनी झोपड़ी के दरवाजे पर बैठी हुई एक अन्धी बुढ़िया मिलती है। उसे भी लड़के जरूर छेड़ते हैं। कोई उसके बाल खींचता है, तो कोई उसके कपड़े, और कोई उसके मुँह के पास हाथ ले जा कर कहता है, "ले ये चने चबा ले, तेरे दाँत उग आयँगे।" बाकी लड़के ताली बजा-बजा कर हँसते हैं, कूदते हैं। और बुढ़िया चिल्ला-चिल्ला कर, चीख-चीख कर उनके सात पुश्तों तक की ख़बर लेती है और बददुआओं का सारा खजाना खाली कर देती है। जब लड़कों का मन भर जाता है, या कोई बुढ़िया की चीख सुन कर, आ कर उन्हें भगा देता है, तो वे आगे बढ़ते हैं।

कुएँ पर जा मिल-जुल कर पानी खींचते हैं। फिर चुल्लू-चुल्लू पी कर, एक गगरा और खींच, दो-दो लड़के बारी-बारी से टिकाते हुए वापस होते हैं।........

माघ के दिन बीत रहे थे। मनियार के सहन के बेर के पेड़ में हरी-हरी, पीली-पीली, गोल-गोल बेरें नन्हीं-नन्हीं पत्तियों की आड़ में लटक रही थीं। पानी पीने आते-जाते लड़के उन बेरों की ओर लल-चायी नजरों से देखते, पर घात न मिलने के कारण मन मसोस कर

गुजर जाते । मनियार पेड़ के नीचे बैठा धौंकनी चलाता रहता, नीली-पीली लपटें हवा में लहराया करतीं, उसकी आँखों में उन लपटों की छायायें सोने-चाँदी के कण की तरह चमका करतीं, पर लड़कों के लिए अब उन-सब से कहीं अधिक आकर्षण उन गोल-गोल, हरी-हरी, पीली-पीली बेरो में था । अब वे सोचते कि कहीं यह मनियार यहाँ न बैठा रहता, तो कितना अच्छा होता !

यों ही एक दिन वे पानी पीने चले, तो यह देख कर, उनकी खुशी का ठिकाना न रहा कि बेर के पेड़ के नीचे मनियार न था । एक नज़र उन्होंने घर के दरवाजों की ओर भी देखा, तो वे भी भिड़े हुए थे । अब क्या था । कई दिनों से दिल-ही-दील में मचलते हुए अरमान पूरे होते नज़र आये । गगरा-रस्सी रख, वे लगे पेड़ पर ढेले मारने । नरेन के निशाने, यद्यपि कि वह बायें हाथ से ढेले चलाता, अचूक होते थे । उसने ताक-ताक ढेले मारे । कई पकी-पकी बेरें जमीन पर आ पड़ीं । लड़के उनकी ओर झपट पड़े । उस वक्त किसी ने यह नहीं देखा कि नरेन का ढेला बेरों को मारता हुआ उस घर में जा गिरा था । अभी वे छीना-झपटी कर ही रहे थे, कि उनके अनजाने ही सहसा दरवाजे खुले, और एक लड़की ने झपट कर नरेन का हाथ पकड़ लिया । संयोग से वही उसके क़रीब पड़ गया था । और लड़के भाग चले । नरेन के होश उड़ गये । फिर भी उसने अपना हाथ छुड़ाने की बहुत कोशिश की । अड़ा, मचला, हाँथ खींचा, पर पकड़ को छुड़ाने में असमर्थ रहा । अब वह दाँतों से काट खाने का उपक्रम कर ही रहा था, कि लड़की का दूसरा हाथ उसकी गर्दन पर आ पड़ा और उसने उसे एक तरह से टाँग कर ही अपनी दालान में ला छोड़ा ।

अब नरेन मचल-मचल कर, हाथ छुड़ाता रो रहा था, और कह रहा था, "मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो ।" पर लड़की ने उसे न छोड़ा । वह उसे घसीटती हु ई आँगन में ले गयी, और झुक कर नरेन का फेंका हुआ

ढेला उठा कर बोली, "देख, तेरे फेंके हुए ढेले से मुझे चोट लग गयी !" फिर अपना पैर आगे कर बोली, "यह देख, यहाँ, यहाँ चोट लगी है। खून बह रहा है। देख रहा है न ?"

नरेन ने जो खून की लकीर बहती देखी, तो सन्नाटे में आ गया। वह अब तक यही सोच रहा था, कि बेर मारने के अपराध में ही वह पकड़ा गया है, पर अब उसे मालूम हुआ कि जिस अपराध में वह पकड़ा गया है, वह मामूली नहीं है, संगोन है, संगीन ! खून बह रहा है। लाल-लाल खून जैसे उसकी आँखों में एक महान अपराध की छाया बन उभर आया। अब क्या करे वह ? उसने सिर झुका लिया।

"बोल, बोल !" उस लड़की ने आँखें तरेर कर कहा, "अब कैसे चुप हो गया ?"

नरेन को सहसा कुछ सूझ गया। उसने झट चेहरे को बेहद भोला बना, मासूम की तरह उसकी ओर देख कर कहा, "मैंने कहाँ ढेला चलाया ?" और वह कुहनी से आँखों को छिपा सिसक पड़ा।

"फिर किसने चलाया ?" लड़की और भी बिफर कर बोली।

"कई लड़के ढेले चला रहे थे। मैं.......मैं तो एक ओर खड़ा था।" और वह और भी मासूम बन फफक-फफक कर रो पड़ा।

उसका भोला-भाला, प्यारा मुखड़ा और मासूम आँखें देख, सहसा लड़की का चढ़ा हुआ पारा उतर गया। उसने उसके सिर पर हाथ रख कहा, "पर तू भी तो बेरें मार रहा था ?"

"कहाँ ?" नरेन ने आँसू-भरी आँखें ऊपर उठा कर कहा, "मैं....मैं...."

"झूठ !" लड़की ने आँखों में एक कृत्रिम गुस्से का भाव ला कहा।

नरेन ने फिर एक बार उसकी ओर वैसी ही आँखों से देखा। फिर

कहा, "मैंने तो सिर्फ एक ही ढेला चलाया था।" कहते-कहते उसके होंठों पर मुस्कान की एक हल्की रेखा उभर आयी।

"हूँ!" लड़की ने कहा, "तो तू क्यों मार रहा था बेरें?"

इसका क्या जवाब दे नरेन? उसे अफसोस हुआ, कि क्यों उसने यह बात अपने मुँह से कही। पर लड़की ने स्नेह से उसके सिर पर हाथ रख, जो सहानुभूति दिखायी थी, उससे वह प्रभावित हुए बिना कैसे रहता? उसने सोचा था, कि अब वह बच गया। पर इस सवाल का जवाब वह अब क्या दे? कह दे कि बेर खाने को उसकी तबीयत कई दिनों से मचल रही थी? मगर नहीं, यह कहना तो वही हुआ कि, "ए चोर तू ने चोरी क्यों की?" तो चोर कहे कि, "उस चीज को देख कर मेरा जी ललचा गया।" उहूँ, यह तो कोई बात न बनी। फिर? वह सोच ही रहा था कि एक अधेड़ उम्र की औरत वहाँ आ गयी, यह कहती हुई, "अरे, दुलहिन, क्यों पकड़ रखा है इस लड़के को?"

लड़की ने कहा, "अम्मा, यह बेर मार रहा था।"

"अरे, जाने भी दे। लड़का है। कुछ बेरें दे दे इसे।" कह कर वह औरत एक ओर चली गई।

लड़की नरेन की ओर देख कर मुस्करायी। फिर बोली, "पकड़ कर तो लायी थी, कि खूब पीटूँगी तुझे। पर, चल, तेरी किस्मत से अम्मा आ गयीं, तो मार के बदले इनाम मिल गया।" कह कर वह नरेन को एक कोठरी में ले गयी, और बेर-भरी टोकरी उसके सामने कर बोली, "ले ले, कितनी बेरें लेगा?"

पकी-पकी ढेर सारी बेरें देख कर, उसके जी में तो आया कि वह सब एक ही साथ ले कर, मुँह में डाल ले, पर टोकरी की ओर ललचायी दृष्टि से देख कर भी मुँह से बोला, "नहीं चाहिए मुझे तुम्हारी बेरें!"

"अरे, चाहिए क्यों नहीं रे ? लार तो टपक रही है ! ले, ले !" कह कर वह बेरों से नरेन की जेबें भरने लगी। नरेन यों ही दिखाने के लिये ना-नुकुर करता रहा।

जब जेबें बेरों से भर गयीं, तो लाख दबाने पर भी होंठों पर मुस्कान उभर ही आयी। उसने लड़की की ओर मुस्कराती नजरों से ऐसे देखा, जैसे आँखों से ही कहना चाहता हो, 'कितनी अच्छी हो तुम !'

लड़की ने जैसे उसकी भाषा-हीन बात समझ ली। हँस कर कहा, "कैसे मुस्की छूट रही है ! अच्छा जा, फिर कभी ऐसी शरारत न करना, वरना," उसके दोनों कान पकड़ कर कहा, "तेरे कान ऐसे उमेठूँगी कि तू भी याद करेगा !"

नरेन को लग रहा था, कि सचमुच यदि वह लड़की उस समय उसके कानों को खूब जोरों से भी उमेठती, तो भी उसे कोई तकलीफ़ न होती। वह उसे एक बार फिर कृतज्ञता-भरी आँखों से देख कर चल पड़ा।

अभी दरवाजे के बाहर ही आया था कि लड़की ने दरवाजे पर आ कर उसे पुकारा, "ए, ए, जरा सुनना तो।"

नरेन ने उसके सामने आ, अपनी भोली-भाली आँखों को उठा कर, प्रसन्नता से नचा दिया।

लड़की उसकी ओर एक क्षण मुग्ध-सी देखती रही। फिर आँखों में स्नेह भर बोली, "क्या नाम है तेरा ?"

"नरेन।"

"अच्छा जा ! और हाँ, देख तू कल भी आना ? ढेर सारी बेरें दूँगी तुझे। आयेगा न ?" आँखों में एक भोली चाह-सी भर उसने कहा।

नरेन ने सिर हिलाया, मुस्कराती आँखों से उसे देखा। फिर चल पड़ा।

लड़की उसे जाते देख रही थी। उसके होंठों पर भी एक मुस्कान थी। सहसा उसके मुँह से आप ही निकल पड़ा, "कितना भोला-भाला, प्यारा लड़का है!"

उसके बाद जब भी नरेन लड़कों के साथ पानी पीने उधर से गुजरता, वह उस लड़की को दरवाजे पर खड़ी पाता, जैसे वह उसका इन्तजार करती रहती हो। वह पास आ जाता, तो लड़की उसे हाथ-का इशारा कर बुलाती। नरेन साथियों से छुट उसके पास चला जाता। वह उसकी जेबों को बेरों से भर देती, और चुमकारकर कहती, "कल भी आना। तेरे लिए चुन कर पकी-पकी, मीठी-मीठा बेरें रखे रहूँगी।" नरेन उत्फुल्ल हो मुस्करा पड़ता, और खुशी से चमकती आँखों की पुतलियाँ नचा कर सिर हिला देता।

लौट कर नरेन कुछ बेरें अपने साथियों में बाँट देता। और सब मिल कर उस अच्छी लड़की की खूब-खूब तारीफें करते।

छुट्टी के दिन नरेन को उस लड़की से मिलने का अवसर न मिलता। उस दिन वह कुछ उदास रहा करता। खेल में भी उसकी तबीयत न लगती। बार-बार वह लड़की उसे याद आती, उसकी मीठी-मीठी बेरें और उनसे भी मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी उसकी बातें याद आतीं।

एक दिन सोते समय उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ, तुम उस पोखरे के पास वाले घर को जानती हो, जिसके सहन में एक बेर का पेड़ है, और जिसके नीचे बैठ कर एक दाढ़ी वाला आदमी राख से सोना-चाँदी बनाया करता है?"

"हाँ, हाँ, वह इस्लाम जुलाहे का घर है। वह मनियारी करते हैं। क्यों, तुम्हें उस घर से क्या मतलब?"

"माँ, उस घर में एक बड़ी अच्छी लड़की रहती है। वह रोज मुझे बेरें देती है। भला कौन है वह?" नरेन ने माँ की छाती से सट,

उसके मुँह के पास अपना मुँह ले जा कर ऐसे कहा, जैसे कोई राज़ की बात कह रहा हो।

"अरे, तू नहीं जानता उसे ? वह, इमली तले करीमन हैं न, उन्हीं की इकलौती बच्ची है। बेचारी की माँ पिछले साल मर गयी। इसी साल उसकी शादी इस्लाम के लड़के अलीम से हुई है। गुड़िया-गुड्डे की तरह बड़े शौक से उन्होंने शादी की है। बिलकुल बच्चे ही तो हैं अभी।"

"भला अलीम की क्या उम्र होगी, माँ ?" नरेन ने ऐसे पूछा, जैसे इस प्रश्न का उत्तर जान कर वह अपनी कोई समस्या हल करना चाहता हो।

"यही करीब ग्यारह साल।"

"और मेरी उम्र क्या है, माँ ?"

माँ ने उँगली पर हिसाब जोड़ बताया, "अगले बैसाख में तेरा आठवाँ पूरा हो जायगा।"

नरेन ने कुछ सोच कर ऐसे कहा, जैसे सलाह कर रहा हो, "तब तो अलीम मेरा बड़ा भाई हुआ न ? और वह लड़की...."

"तेरी भाभी हुई," बीच ही में उसकी बात काट कर माँ बोली और हँस पड़ी। फिर बोली, "मगर यह-सब क्यों पूछ रहा है तू ?"

नरेन ने शरमा कर अपना मुँह माँ की छाती में छिपा लिया। माँ और भी हँस पड़ी।

नरेन फिर कुछ बोला नहीं। जाने क्या-क्या सोचता सो गया। दूसरे दिन भाभी और देवर के नाते का मर्म जानते हुए भी वे सचमुच भाभी-देवर बन गये। लड़की की सास ने नरेन को बार-बार 'भाभी, भाभी' कहते सुना, तो दालान से आ कर बोली, "देखा, दुलहिन, इसी को अँगुली पकड़ कर, पहुँचा पकड़ना कहते हैं। और भर तू बेरें इसकी जेबों में ! फिर तो एक दिन पता नहीं तेरा यह क्या बन जायगा !" कह कर वह परिहास की हँसी हँस पड़ी।

नरेन और वह लड़की क्या समझें यह-सब ? वे एक-दूसरे का मुँह तकते रह गये। सास चली गयी हँसती हुई ही।

दिन बीतते गये। धीरे-धीरे अलीम से भी नरेन की जान-पहचान ही नहीं हो गयी, बल्कि अलीम 'अलीम भैया' भी बन गया। भाभी और देवर का रिश्ता और भी गाढ़ा हो गया।

प्राइमरी पास कर नरेन पाँचवें में गया, तो अलीम सातवें दरजे में था। वहाँ उनका साथ बराबर का हो गया। एक ही साथ वे गाँव से चल कर कस्बे के स्कूल में जाते और एक ही साथ स्कूल से छुट्टी मिलने पर गाँव वापस आते। अलीम का घर शुरू ही में पड़ता। नरेन उसके साथ ही उसके घर ज़रूर जाता। तब उसकी भाभी उसकी जेबों में कुछ-न-कुछ अवश्य भर देती। कभी-कभी नरेन भी अलीम को अपने घर ले जाता। वहाँ उसकी माँ भी अलीम की खातिर-तवाजा करने से न चूकती।

बचपन के भोले-भाले दिन यों ही बेखबरी के खेल-कूद, हँसी-खुशी, आमोद-प्रमोद और मौज-मजे में बरसाती नदी की अल्हड़ धार की तरह तेज़ रफ़ार से बहते हुए अतीत के सागर में डुबकियाँ लगा खोते गये। भोलापन, मासूमियत और नादानी का अंधकार धीरे-धीरे समझ, अनु-भव और ज्ञान के प्रकाश में विलीन होने लगा। अब वह बेबाकी न रही, नजरों की वह मासूमियत न रही, हृदय का वह भोलापन न रहा, बातों की वह स्वाभाविकता न रही। अब तो जब नरेन भाभी से मिलता, तो अपने में झिझक पाता, नजरें मिलने से पहले ही झपक जातीं, हृदय में जाने कुछ कैसा होने लगता, बातें मुँह से न निकलतीं; निकलतीं भी, तो ऐसे, जैसे कोई सहम-सहम कर, सोच-सोच कर, थाह-थाह कर बोल रहा हो। भाभी की भी कुछ ऐसी ही हालत थी। वह भी पहले की बेबाकी से अब उसका हाथ नहीं पकड़ लेती, उसकी जेबों को बेरों या

किसी और चीज से नहीं भर देती, उसके सिर पर स्नेह का हाथ रख कर, अपनी आँखोंसे मुस्करा कर नहीं कहती, 'कल भी आना।' अब तो वह भी जैसे नजरें बचा कर उसकी ओर देखती, जैसे डरते-डरते कोई अधकटी बातकह कर चुप हो जाती। नरेन की उपस्थिति में अपने को कुछ ऐसी अव्यवस्थित, हौल की हालत मे पाती कि खुदा से दुआ माँगती कि नरेन यहाँ से जल्द चला जाय, नहीं तो उसे उस स्थिति में देख कोई क्या सोचेगा?

उनके अनजाने ही उनमें यह-सब परिवर्त्तन आ गया है। पता नहीं कि उनमें यह परिवर्त्तन कैसे आ गया? पता नहीं, कि कौन आ उनके कानों में चुपके से कह गया कि अब वे दिन न रहे, अब वे बातें न रहीं, अब वैसा कुछ करना ठीक नहीं। शायद किसी लड़के-लड़की से यह-सब बातें बताने की जरूरत नहीं होती, शायद उम्र ही उन्हें सब-कुछ बता देती है, शायद प्रकृति ही उनमें यह परिवर्त्तन ला देती है, या शायद समाज की वर्त्तमान व्यवस्था ही उन्हें ऐसा करने को विवश कर देती है। जो भी हो, यह परिवर्त्तन जितना स्वाभाविक होता है, उतना ही आश्चर्यजनक भी। स्वाभाविक उनके लिए होता है, जिनमें यह परिवर्त्तन आ जाते हैं, और आश्चर्यजनक उनके लिए होता है, जो इन परिवर्त्तनों को दूर से खड़े होकर देखते हैं। सचमुच जो लड़के-लड़की कल बिना किसी दुराव के एक-दूसरे के साथ खेलते-कूदते रहे, आज उन्हीं को एक-दूसरे से नजरें चार करते भी झिझकते, शर्माते और कट जाते हुए देख कर किसको आश्चर्य न होगा?

अलीम भैया मिडिल पास कर एक साल की ट्रेनिंग के बाद गाँव के इस्लामिया स्कूल में मास्टर हो गये। और मिडिल पास करने की खुशी में नरेन अभी झूम ही रहा था कि अदृश्य ने उसके प्रकाशमान भविष्य के पट पर गाढ़े अन्धकार की कूँची फेर एक बड़ा-सा प्रश्नवाचक चिन्ह लिख छोड़ दिया—उसके पिता की अचानक मृत्यु हो गयी........

नरेन का उठा कदम सहसा रुक गया। पिता की स्नेह-भरी स्मृतियाँ उसकी आँखों में आँसू बन उतर आयीं। पिता की चलती-फिरती तस्वीर उसकी धुँधली आँखों के सामने नाच उठी। दिल में एक ऐंठती हुई कसक उठी। और व्यथा का धुआँ आह बन कर निकल गया। उसने आसमान की ओर आखें उठायीं। व्यथा के आवेग में पता नहीं क्यों, आदमी की आँखें ऊपर उठ जाती हैं। शायद यह अत्यधिक दुख का एक मनोवैज्ञानिक लक्षण है, शायद ऐसा करने से व्यथा दबती हुई आत्मा के लिए ऊपर से किसी का सहारा माँगती है, या शायद स्वभावतः गिरावट आदमी की प्रकृति के विरुद्ध है, इसलिए गिरावट का आभास पाते ही, अन्तर में बैठा कोई कहता है, 'ऊपर देखो, ऊपर!' और इन्सान ऊपर देखता है, क्योंकि वह गिरना नहीं चाहता, क्योंकि गिर कर भी वह ऊपर, और ऊपर उठना चाहता है।

नरेन के कदम धीरे-धीरे उठने लगे। धूल-भरे आसमान में तारे टिमटिमा रहे थे, जैसे मैले आँचल से ढँकी दीप-शिखा। चाँद का उदास, पीला टुकड़ा आसमान में ऐसे लटक रहा था, जैसे उसका कोई उद्देश्य न हो, जैसे वह चाँदनी छिटकाने वाला चाँद न हो, उसकी एक छाया-मात्र हो, जैसे बिजली का एक फ्यूज़ हुआ कुमकुमा हो। हवा में कुछ तेजी आ गयी थी। पेड़ों की डालियाँ अन्धकार की बाहों की तरह ऊपर-नीचे हो रही थीं। बाग से गुजरती हुई सुनसान राह पर चलते हुए नरेन को पत्तों की भयावनी खड़खड़ाहट ऐसी लग रही थी, जैसे अन्धकार का काला दैत्य पेड़ों पर पैर रखता चला जा रहा हो। उसने चलते हुए ही एक सिग्रेट जलायी। एक जोर का कश लिया। और फिर उसके कदमों में तेजी आ गयी। मस्तिष्क में स्मृतियों ने एक करवट ली—

माँ पछाड़ खा कर गिर गयी थीं। औरतें उन्हें घेरे बैठी थीं। नरेन की समझ में नहीं आ रहा था कि अब वह कैसे रहेगा। उसकी जैसे

दुनिया ही लुट गयी थी। एक कोने में पड़ा जाने हृदय और मस्तिष्क की किन हालतों में वह आँखें मूँदे सिसक रहा था। माँ, बाप और भाभी के सिवा अभी तक उसके जीवन में किसी चौथे की लगावट नहीं थी। उसकी ज़िन्दगी के तीन स्तम्भों में एक टूट गया। और इस समय उसे लगता था, कि जैसे उसकी ज़िन्दगी का एक ही स्तम्भ था, जो टूट गया और उसकी ज़िन्दगी ख़तम हो गयी। इस समय उसे माँ और भाभी के अस्तित्व का भी ख्याल न था। शरीर का जो अङ्ग टूट जाता है, आदमी का सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित हो जाता है, वह उस वक्त उसी की बात सोचता है, दूसरे अङ्गों का उसे ख्याल ही नहीं आता।

उसी एकान्त कोने में सहसा उसने किसी की आवाज़ सुनी—"नरेन!"

सिसकते हुए ही उसने योंही आँखें खोलीं। देखा, सामने भाभी खड़ी थी। उसे देखते ही पता नहीं उसके दिल की क्या हालत हुई कि वह और भी फफक कर रो पड़ा। भाभी ने झुक कर उसके सिर पर हाथ रख दिया और पास ही बैठ गयी। वह कुछ बोली नहीं। उसका दिल भी भरा था।

नरेन कुछ देर तक बिलख-बिलख कर रोता रहा। फिर उसे लगा कि सहसा उसके सिर पर कुछ बूँदे टप-टप चू पड़ी हैं। उसने आँखें खोल देखा, भाभी आँसू-भरी आँखों से उसे देख रही थी, जैसे व्यथा की असीमता के कारण वह करुणा की एक मौन तस्वीर बन गयी हो। उससे उसका वह रूप न देखा गया। वह बोल पड़ा, "भाभी!"

भाभी का सिर हिला। झर-झर बूँदें झड़ पड़ीं। उसने अपना हाथ बढ़ा नरेन की आँखों के आँसू पोंछ दिये। फिर जैसे अब अधिक कुछ सहने में असमर्थ हो, भरे गले से वह यह कहती हुई उठ खड़ी हुई, "चुप रहो, नरेन, यह बिपदा किस पर नहीं पड़ती?" और असीम

अपनापन और सहानुभूति और समवेदना की एक करुण दृष्टि उस पर डाल वह चली गयी।

उस दृष्टि में नरेन के लिए जैसे संजीवनी थी। उसके पितृ-शोक से व्याकुल हृदय को जैसे कोई ऐसे स्नेह-भरे हाथों से सहला गया, कि उसकी सहलाहट की मधुर-मधुर अनुभूतियाँ उसके हृदय की व्याकुलता पर कुछ इस तरह छा गयीं कि उसे लगा कि वह हँसते-हँसते विष का घूँट भी अमृत की तरह पी सकता है। वह अपनी बिखरी आशाओं को समेटने लगा। एक नयी तरह की ज़िन्दगी शुरू करने के उत्साह का उसने अनुभव किया। और वह उठ खड़ा हुआ।

कहावत है कि नाव से गिर कर डूबता हुआ आदमी सहारे के लिए तिनका पकड़ता है। जीवन का सबसे शक्तिशाली आश्रय खो कर, आदमी छोटे-मोटे आश्रयों की ओर हाथ लपकाता है। पिताजी के न रहने पर चाचा ने आश्रय का हाथ बढ़ाया, तो माँ ने लपक कर उसे पकड़ लिया। चाचा के तीन लड़कियाँ थीं, कोई लड़का नहीं था। उन्होंने माँ का हाथ पकड़ कर कहा, "नरेन मेरे बेटे के समान है। मेरे यहाँ और कौन भोगने वाला है। अब वही तो सब-कुछ है!" बेटे के भविष्य और अपने अवलम्ब का ख्याल कर माँ ने सिर झुका दिया। पर न जाने क्यों, नरेन को यह-सब अच्छा न लगा। वह तो सोच रहा था कि अब वह खुद कमायेगा और माँ की सेवा करेगा। पर माँ शायद उसे इस योग्य नहीं समझती, या चाचा ने उनकी दयनीय अवस्था पर रहम खा, उन्हें आश्रय दिया है। इन बातों को सोच उसके स्वाभिमान को धक्का लगता। वह किसी अनुकम्पा का दास नहीं बनना चाहता था। पर करता क्या, विवश था। माँ के विरुद्ध आवाज ही कैसे उठाता?

चाचा नये-नये आर्यसमाजी हुए थे। आर्य समाज के प्रचार में वह सक्रिय भाग लेते थे। सामाजिक सुधारों के वह कट्टर पक्षपाती थे। उन

लोगों का चाचा के घर आना चाची को फूटी आँखों न भाया। पर उन्होंने इसकी कतई परवाह न की। बल्कि चाची को फटकार बताते हुए कहा, "तुम चाहती हो कि अपनी विधवा भाभी को मैं निराश्रय छोड़ दूँ? भैया न रहे, तो उनके अनाथ बाल-बच्चों के प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है, उसे पूरा न करूँ?" उनकी बात सुन चाची ने दम साध लिया। फिर उसके बाद प्रत्यक्ष रूप से तो उन्होंने कभी अपना विरोध प्रकट न किया, पर मन-ही-मन वह नरेन और उसकी माँ से जरूर जलती रहीं।

चाचा ने गाँव में एक आर्य नवयुवक सभा स्थापित की थी। वहाँ रोज सन्ध्या को सन्ध्या-हवन के बाद उनका प्रवचन भी होता था। उन्होंने नरेन को भी अपनी राह पर खींचा। उसे भी वह प्रतिदिन सन्ध्या को वहीं ले जाने लगे। उन्होंने उसे गायत्री और सन्ध्या के मन्त्र और कुछ समाजी प्रार्थना और गीत भी याद करने की ताक़ीद की।

नरेन दि-नभर चाचा के साथ दुकान में रहता और सन्ध्या को सभा में जा, चाचा के आज्ञानुसार सन्ध्या-हवन में भाग लेता, प्रार्थना सुनाता, गीत गाता। उसका गला काफी मोटा और सुरीला था। लोग उसके गाने को बहुत पसन्द करते। चाचा को उसके गीत सुन आशा बँधती कि एक दिन वह बहुत बड़ा भजनोपदेशक होगा। इसलिए वे उसे हारमोनियम और तबला-ढोलक सिखाने की भी फिक्र में थे।

अगले दशहरे के अवसर पर चाचा ने समारोह के साथ सभा का वार्षिक अधिवेशन करने का निश्चय किया। प्रतिनिधि सभा से अच्छे-अच्छे विद्वान उपदेशकों और भजनोपदेशकों को निमन्त्रित किया गया। सदस्य और उत्साही नवयुवक अधिवेशन की तैयारी में जुट गये। कुछ लोग चन्दा भी वसूल करने लगे। ऐसे अवसर पर नरेन के मोटे और

सुरीले गले का फायदा उठाने के लिए यह निश्चय किया गया कि समाज की अच्छी-अच्छी प्रचारात्मक गानों की पुस्तकें मँगायी जायँ और कुछ स्वयं-सेवकों के साथ घूम-घूम कर नरेन उन्हें गा-गा कर गाँव और आस-पास के गाँवों में बेंचे। इससे पैसा तो मिलेगा ही साथ ही प्रचार भी खूब होगा। चुनांचे कुछ पुस्तकें मँगायी गयीं। उनमें से कुछ चटपटे, शीघ्र प्रभावित करने वाले गाने भी चुने गये। नरेन को उन्हें शीघ्र आकर्षक ढंग से गाने की ट्रेनिंग दी गयी। फिर झोलों में किताबें भर दी गयीं और स्वयंसेवकों के कन्धों में लटका, योजनानुसार उन्हें गाँवों में प्रचारार्थ भेज दिया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश पाने का नरेन का यह पहला अवसर था। लेकिन इसका प्रारम्भ कुछ इस तरीके से हुआ कि उसे यह पसन्द न आया। गाँव-गाँव घूम-घूम कर, गा-गा कर किताबें बेंचना उसे अच्छा न लगा। प्रचार और धर्म-सेवा का ख्याल कर यह कार्य चाहे जितना भी 'महत्वपूर्ण' क्यों न हो, पर नरेन-जैसे स्वाभिमानी युवक को यह कार्य बड़ा ही असम्मानपूर्ण और लज्जाजनक लगा। मन-ही-मन वह ऐंठ कर रह गया। चाचा की आज्ञा टालने की उसमें हिम्मत न थी। पर वह करता ही क्या? साथियों के साथ जब वह किताबों की झोली लटकाये सभा-भवन से निकला, तो शर्म के मारे वह गड़ गया था। उसके कंठ से स्वर ही नहीं फूट रहे थे। चाचा ने उसे ऐसा करते देखा, तो उन्होंने उसे बहुत डाँटा और समाज के प्रवर्त्तक और उसके प्रचारकों की सेवा और त्याग का हवाला दे कहा, "धर्म और समाज के लिए कोई भी काम छोटा नहीं है। धर्म-प्रचार में लज्जा कैसी?"

लेकिन त्याग और सेवा का महत्व नरेन कैसे समझता? बचपन के संस्कारों का मेल इन 'उच्च आदर्शों' से बैठाना एक उगते नौजवान के लिए कैसे सम्भव था? फिर भी वह क्या करता? पिता के मरने के बाद वह बिलकुल गुमसुम-सा रहता। मन-ही-मन ज़िन्दगी की कोई नयी राह

निकालने की बात सोचा करता। चाचा के साथ रहना उसे भाता नहीं। पर जब तक कोई राह न निकल आये, वह चाचा की हर आज्ञापर उसी तरह चुपचाप बिना चूँ किये नाचता रहेगा, जैसे मदारी का बन्दर। चाचा की प्रभावपूर्ण बातें सुन कर भी उसकी झिझक न गयी, तो चाचा उसके साथ हो लिये, और उसे गाने के लिए विवश किया। नरेन ने उसी तरह गाना शुरू किया, जिस तरह बचपन में वह मास्टर की छड़ी के नीचे सबक सुनाया करता था।

थोड़ी दूर जाकर चाचा ने देख लिया कि नरेन की भटक खुल गयी, तो वह वापस आ गये। नरेन खून का घूँट पीता गाता हुआ चल पड़ा।

नरेन के बेमन गाने पर भी किताबें धड़ाधड़ बिकने लगीं। विशेष कर वह किताब तो खूब बिकी, जिसमें 'मेरे मौला बुला ले मदीने मुझे....' वाला गाना था। उस किताब को अधिक बिकते देख नरेन के साथियों ने कहा कि वह वही गाना बराबर गाये। वह सिर झुकाये गाते हुए बढ़ चला—'मेरे मौला........'

चलते-चलते वह टोली आखिर उस गली से भी गुज़री, जिसमें भाभी का मकान था। नरेन सिर झुकाये करीब-करीब आँखें बन्द किये ही गाते हुए चल रहा था। उसे मालूम भी न था कि उसकी टोली कहाँ पहुँच गयी। वह तो शरम से गड़ा हुआ ही गाये चला जा रहा था—'मेरे मौला........'

सहसा उसकी दृष्टि सहन में खड़े बेर के पेड़ पर पड़ गयी। वह ठिठक कर रुक गया। आँखें दरवाजे की ओर मुड़ गयीं। उसे लगा कि भिड़े दरवाजे की दरार में दो आँखें चमक रही हैं और हरे दुपट्टे का एक पल्ला लहराता हुआ चला गया है। वह अपने को न रोक सका। उसके पैर अनियन्त्रित से ही दरवाजे की ओर बढ़ गये। उसके साथी अवाक् उसकी ओर देखते रह गये।

उसने दरवाजा खोल अन्दर पैर रखा। दालान में खूटियों पर टंगे हुए रंग-बिरंगे दुपट्टे ऐसे लहरा रहे थे, जैसे सन्ध्या के आकाश में रंग-बिरंगे बादल। नरेन की आँखें उन पर उठीं, तो उनके रंग उसकी आँखों में मुस्करा उठे। वह एक क्षण मुग्ध-सा हो उन्हें लहराते हुए देखता रह गया। फिर पुकारा, "अलीम भैया!"

कोई उत्तर न आया, तो उसने इधर-उधर नजरें दौड़ायीं। फिर पुकारा, "चाची!" फिर भी कोई उत्तर न आया, तो वह आँगन की ओर बढ़ गया। बायीं ओर के कमरे के दरवाजे पर भाभी ऐसे खड़ी थी, जैसे वह उसके इन्तजार में हो। नरेन की नज़र उस पर पड़ी, तो वह ठिठक गया। हरे दुपट्टे से घिरा हुआ भाभी का खिला हुआ गुलाबी मुखड़ा ऐसा लग रहा था, जैसे सब्जे पर एक खिला हुआ गुलाब का फूल पड़ा हो। मन्त्र-मुग्ध सा अभी वह उसे निहार ही रहा था, कि भाभी बोली, "मैंने तुम्हारा गाना सुना, बाबू। तुम बहुत अच्छा गाते हो, मगर...." आँखों में कुछ छिपाती-सी बात अधूरी ही छोड़, मुस्करा कर वह चुप हो गयी।

नरेन की आँखों में उत्सुकता मुस्करा उठी। तनिक पास आ बोला, "मगर क्या, भाभी?"

भाभी मुस्कराती बोली, "मगर यह कि, बाबू, मैंने तो अपने मौला से कभी यह दुआ न माँगी कि वह मुझे मदीने बुला लें! मुझे तो अपना यह गाँव ही प्यारा है, जहाँ मेरे अब्बा हैं, अम्मा हैं, वह हैं, और.... और तुम हो! आखिर तुम यह किसकी बात अपने गाने में गा रहे थे?"

नरेन को लगा, जैसे उसके दिल में एक नुकीला तीर चुभ गया हो। वह तड़प कर रह गया। आँखों में निरपराध की अज्ञानता भर तड़पते स्वर में वह बोला, "नहीं, नहीं, भाभी, मैं यह सब गाना नहीं चाहता था, मगर....मगर...." और आगे कुछ कहने में असमर्थ हो, वह

आँखों में भर आये गरम-गरम आँसुओं को टप-टप चुलाता, मुड़ कर तीर की तरह बाहर हो गया।

बाहर उसके साथी खड़े थे। उनकी ओर उसने देखा भी नहीं और सीधे घर की ओर चल पड़ा। उसने मुड़ कर उन दरवाजों की ओर भी न देखा, जिनकी दरार से दो आँखें उसको जाते हुए देख रही थीं।

उसके साथियों की समझ में कुछ न आया। वे भी हत्‌बुद्धि-से उसके पीछे हो लिये।

नरेन सीधे माँ के पास जा, बच्चे की तरह बिलख-बिलख कर रोते हुए बोला, "माँ, मुझसे यह सब न होगा! मैं ये गाने न गाऊँगा! मैं ये गाने गा-गा कर किताबें न बेचूँगा, माँ!" और यह कहकर उसने कन्धे में लटके हुए झोले को उतार एक ओर फेंक दिया।

तभी गुस्से में काँपते हुए चाचा आ गये। वे नरेन के साथियों से सब-कुछ सुन चुके थे। कड़क कर कहा, "यह क्या, नरेन? तूने मेरा भतीजा हो कर एक विधर्मी के कहने से धर्म-सेवा से मुँह मोड़ लिया?" और उन्होंने शोला बनी आँखों से गुरेर कर नरेन की ओर देखा।

माँ सहम कर खड़ी हो गयी, और नरेन को अपने पीछे कर बोली, "जाने दो, अभी लड़का है। मैं इसे समझा दूँगी।"

आग बरसाते हुए चाचा बोले—"तू क्या समझायेगी? तू ने ही तो इसे लाडला बना रखा है! अगर मेरा लड़का होता, और इस तरह धर्म-विद्रोह करता, तो मैं कच्चा ही चबा डालता!" कह कर उन्होंने हाथ बढ़ा, नरेन का हाथ पकड़ उसे खींच लिया, और फेंके हुए झोले के पास घसीटते हुए ले जा कर कहा, "उठा इसे!"

नरेन की सहमी हुई आँखों में सहसा चिनगारियाँ चमक उठीं। उसने चाचा को आँखें दिखा, बला की दृढ़ता से कहा, "मैं इसे नहीं उठाऊँगा! मैं ये गीत नहीं...."

"ओह, तेरा यह साहस !" बीच ही में चाचा तड़प कर बोल उठे और आवेश में आ जोर का एक थप्पड़ नरेन के गाल पर दे मारा। माँ चीख उठी। नरेन बुत बना खड़ा रह गया। चाचा बिफरते हुए चले गये।

न जाने व्यथा के किस आवेग में माँ ने सिसकते हुए नरेन के थप्पड़ खाये गाल पर हाथ रखा। पाँचों उँगलियाँ उसके गाल पर पाँच गरम, लाल सलाखों की तरह उभर आयी थीं। वह गाल सहलाती हुई बिलख पड़ी। नरेन ने चीख कर कहा, "माँ !" और उसकी छाती पर सिर रख कर जोर-जोर से रो पड़ा।

माँ ने उसके सिर पर हाथ रख, रोते हुए ही कहा, "मेरे लाल !"

नरेन ने माँ की छाती से सिर रगड़ कर कहा, "माँ, चलो, हम अपने घर चलें !"

"वहाँ अब क्या रखा है, बेटा ? अब तो सब-कुछ इस घर का हो चुका है। तू सब्र कर, बेटा !" रुँधी आवाज में माँ ऐसे बोली, जैसे उसकी बात के शब्द-शब्द विवशता में जकड़े हुए दम तोड़ रहे हों।

सब्र ! पर नरेन के सब्र का प्याला तो आज लबालब भर ही नहीं गया था, बल्कि भरने के बाद छलक भी गया था। उससे अब सब्र करना असम्भव हो गया था। पर कुछ कहने से अब बनता ही क्या ? माँ की विवशता वह समझ गया, और गूँगा बन गया। माँ रोती रही और समझाती रही।

रात को उसने खाना भी न खाया। माँ मना-मना थक गयी, तो खुद भी बिना खाये ही रोते-रोते सो गयी। चाचा ने उन्हें मनाना अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझा।

सब सो गये, पर नरेन की आँखों में नींद कहाँ ? उसे अब उस घर में एक पल भी रहना मुश्किल हो रहा था। अब वह किसी मुल्य पर भी

चाचा से समझौता करने को तैयार न था। जल्द-से-जल्द वह घर छोड़ देने की सोच रहा था। उसका वर्त्तमान अन्धकार से आच्छादित हो चुका था, जिसमें प्रकाश की एक किरण की भी आशा करना व्यर्थ था। अब वह भविष्य की सोच रहा था, जो वर्त्तमान से भी अधिक अन्धकार-पूर्ण और भयावना था, पर उसे आशा थी कि उसमें कदाचित कोई प्रकाश की किरण फूट पड़े, जिसके सहारे वह अपना सम्मानपूर्ण जीवन बिताने में समर्थ हो सके। वर्त्तमान अपने नंगे रूप में आँखों के सामने होता है, उसे किसी दूसरे रूप में आदमी देख नहीं सकता। भविष्य का रूप एक काले पर्दे में ढँका रहता है, वह पर्दा हटाने पर भविष्य का कौन-सा रूप आँखों के सामने आयगा, यह कोई नहीं कह सकता, इसी-लिए आदमी का यह सोचना बिलकुल स्वाभाविक है कि सम्भव है, कि भविष्य उसके लिए, वर्त्तमान से एक अच्छे जीवन का नया सन्देश ले आये। वह अब निश्चित कर चुका था, कि वह उस घर को छोड़ देगा। उसे उस घर से किसी प्रकार का मोह नहीं, उसे छोड़ते तनिक भी दुख का अनुभव उसे न होगा। पर माँ ? हाँ माँ, प्यारी माँ की ममता अवश्य उसकी राह में आ खड़ी हो रही है। वह माँ को छोड़ना नहीं चाहता। वह जानता है कि माँ जो यह ज़िल्लत की जिन्दगी गुज़ार रही है, वह भी उसी के कारण। वह विवश है, क्योंकि नरेन उसके लिए कुछ करने-योग्य नहीं। यदि वह इस योग्य होता, अपने और माँ के गुज़ारे के लिये कमा सकने में समर्थ होता, तो माँ यों खून का घूँट पी कर न रह जाती। तो अब उसे स्वयं कुछ करना चाहिए। उसे स्वयं अपनी कोशिश से इस विवशता का अन्त करना चाहिए। यहाँ रह कर वह कुछ नहीं कर सकता। चाचा के साथ रह कर उसका कोई अलग अस्तित्व ही नहीं बन सकता।

माँ कहती है, कि वह उसके चाचा ही नहीं, अब उसके पिता भी हैं। उनकी हर आज्ञा का पालन करना उसका कर्त्तव्य है। लेकिन वह

कैसे उन्हें अपना पिता मान ले, कैसे अपनी आत्मा की पुकार से विमुख हो, उनकी आज्ञा का पालन करे, कैसे वह उनके कहने से वह गाना गाये, जिसे सुन कर उसकी भाभी के दिल को चोट पहुँची है ? कल वह उसके यहाँ जाने से भी रोक सकते हैं। नहीं, नहीं, नरेन ऐसा नहीं कर सकता ! उन्हें क्या मालूम कि उसके जीवन में भाभी का क्या स्थान है ?

माँ उसके बिना पानी के बिना मछली की तरह जरूर तड़पेगी, मगर वह उसे कुछ सिलसिला लगते ही बुला लेगा। या यहीं उसके लिए खर्चा भेजेगा, और लिख देगा कि वह अपने घर में आ जाय।

उसने निश्चय कर लिया। चिन्तन में मुँदी हुई आँखें खुलीं। अन्धकार प्रगाढ़ हो चुका था। नीरवता घनीभूत हो चुकी थी। सारी सृष्टि गहरी निद्रा में बेसुध पड़ी थी, हवा भी जैसे कहीं पड़ी विश्राम कर रही थी। आकाश में शबनम अपनी चादर चुपके-चुपके फैला रही थी, जिससे आकाश की अनगनित आँखें भी सृष्टि को देखने में असमर्थ हो रही थीं। वह चुपके से उठा। थोड़ी दूर पर सोये चाचा पर उसकी निगाह पड़ी। उसने नफ़रत से अपनी आँखें हटा लीं। फिर घर के दरवाजे की ओर देखा। दरवाजे बन्द थे। तो क्या चलती बेर उसे माँ के चरणों की धूलि भी न मिलेगी ? उसके हृदय में व्यथा कसक उठी। आँखों में आँसू छलछला आये। उसे लगा कि अँधेरे में उसके सामने माँ आ खड़ी हुई और बिलख कर कहने लगी, 'बेटा, आज तू भी मुझे छोड़ कर चलता बना ? अब मैं किसके सहारे रहूँगी ?' उसने आँसू-भरी आँखों को और भी फैला कर देखा, और बढ़ कर उस छाया के चरणों पर सिर पटक दिया। दरवाजे की चौखट पर उसका सिर खट से बोल पड़ा। मोह का स्वप्न टूट गया। आँखों से आँसू चौखट पर टप-टप चू पड़े। वह सँभल कर उठा, और लड़खड़ाते कदमों से हृदय के आवेग पर किसी तरह काबू पाता अँधेरे में गुम हो गया।

शराबी जिस तरह नशे में चूर हो कर, मस्तिष्क और हृदय में अचेतनता का अन्धकार लिये चलता है, ठीक उसी तरह नरेन भी भागा जा रहा था। उसके हृदय और मस्तिष्क पर भी धुन का ऐसा नशा तारी था, जिससे भागते जाने के सिवा और किसी बात का उसे ख्याल ही न था। सहसा एक जोर की छपाक की आवाज हुई। उसके खोये मस्तिष्क को एक झटका लगा। उसने आँखें घुमा कर देखा, तो वह पोखरे के पास से गुजर रहा था। अभी-अभी शायद कोई बड़ी मछली पानी में उछली थी। उसे सहसा लगा कि यह मछली यों ही नहीं उछली है, यह जोर का छपाका यों ही नहीं हुआ है, उसके खोये मस्तिष्क को यों ही झटका नहीं लगा है, बल्कि ये बातें कुछ कह रही हैं, किसी की याद दिला रही हैं, कि 'ए निर्दयी, यहीं पोखरे के पास किसी का घर है, जिसमें कोई कोमल प्राण रहती है, जिसे कल सुबह यह सुन कर कि तू कहीं चला गया, माँ को छोड़ दुनिया में सब से अधिक दुख होगा! क्या जाते वक्त तू उससे मिलेगा भी नहीं?'

उसके कदम रुक गये। पर इस वक्त, इतनी रात गये उससे कैसे भेंट हो सकती है? पर शायद....हाँ, यह 'शायद' कभी-कभी क्या, अक्सर ही असम्भव को भी सम्भव दर्शा देता है। उसके कदम उस घर की ओर बढ़ चले। सहन में बेर का पेड़ ऐसे खड़ा था, जैसे उसकी डाल-डाल, पत्ती-पत्ती सो गयी हो। उसने आगे बढ़ दरवाजे की ओर नज़र डाली। दर-वाजे बन्द थे। वह कुछ देर यों ही हसरत-भरी नजरों से दरवाजों को देखता रहा। फिर मन में एक हूक उठी और वह फफक पड़ा। कदम मुड़े, तो सामने बेर का पेड़ था। उसने मन की कसक निकालने को उसके तने पर सिर पटक दिया। और ऐंठते कलेजे को हाथ से मसलता रो पड़ा। बेर का पेड़ हिल गया, और उसकी पत्तियों पर जमे शबनम के कतरे टप-टप चू पड़े, जैसे वह जड़ भी नरेन की बिछुड़न से दुखी हो आँसू चुला रहा हो। नरेन ने आँसू-भरी आँखों को ऊपर उठा एक बार

बेर के पेड़ को ऊपर से नीचे तक देखा। फिर आँखों में उबलते हुए गरम-गरम आँसुओं को टप-टप चुलाता चल पड़ा।........

उन हृदय-विदारक बातों को याद कर नरेन की आँखों में वह काली रात एक बार पुनः अपनी वह-सब दुखदाई बातें ले नाच उठी। उसकी आँखों में उसी रात की तरह आज भी आँसू उमड़ आये। उसने आस्तीन से आँसू पोंछ लिये। फिर एक ठंडी, लम्बी साँस ले एक और सिग्रेट जलायी। कई लम्बे-लम्बे कश ले उसने एक बार यह जानने के लिए अपने चारों ओर देखा, कि वह कहाँ तक पहुँच गया है! पास की छोटी बस्ती में टिमटिमाते हुए दीये दीख पड़े। यह किशोर का पुरवा है। इसके बाद दो बाग और पड़ेंगे। फिर गाँव का पोखरा। उसके कदम फिर पहली रफ्तार से उठने लगे। मस्तिष्क में स्मृतियों ने एक और पहलू बदला—

दूसरे दिन करीब एक बजे, जब वह स्टेशन पहुँचा, तो मारे भूख के उसका दम निकला जा रहा था। स्टेशन पर जल्द-से-जल्द पहुँचने की धुन में अब तक उसे भूख-प्यास का कोई ख्याल भी न हुआ था। पर अब स्टेशन पहुँच जाने पर भूख़-प्यास ने उस पर ऐसा हमला किया कि वह बेदम हो, वहीं बैठ गया। पास में तन के दो कपड़ों के सिवा और कुछ भी नहीं था। अब वह क्या करे? पेट की आग कैसे बुझाये।

बहुत देर तक योंही भूखी अँतड़ियों की ऐंठन महसूस करता बैठा रहा। फिर जब बैठे-बैठे थक गया, तो लेट गया। पास में एक तिनका पड़ा था, उसे हाथ से उठा दाँतों से कुतरने लगा। दिमाग में तरह-तरह की बातें उठने लगीं। माँ की याद आयी। ओह, जब सुबह वह उठी होगी, तो उसे घर में न पा उसकी क्या हालत हुई होगी? एक क्षण में सारे गाँव में उसके भाग जाने की बात बिजली की तरह फैल गयी होगी। भाभी ने भी

सुना होगा। मन-ही-मन उसे कितना दुख हुआ होगा। बेचारी खुल कर रो भी तो न सकेगी। पता नहीं, लोगों को उसके बारे में क्या-क्या शंकायें हुई होंगी। माँ को कोई यह कह कर समझाता होगा कि वह कहीं गया न होगा, शाम तक जरूर लौट आयगा। माँ को कुछ आशा बँधती होगी। वह शाम तक उसके आने का इन्तजार करेगी। फिर शाम होगी, रात होगी। माँ प्रतीक्षा करते-करते निराश हो जायगी। फिर....फिर....माँ का उसके वियोग में बिलखता-कलपता रूप उसकी आँखों सामने नाच उठा। उसकी आत्मा तक काँप उठी। ओह, वह कैसा बेटा है, जो माँ को इतना दुख दे रहा है! एक क्षण को उसके दिमाग़ में यह बात भी उठी कि क्यों न वह घर वापस लौट जाय। माँ उसे वापस आया देख कितनी खुश होगी! फिर उसे चाचा की याद आ गयी। और एक दिशा में बहता हुआ मस्तिष्क सहसा एक क्षण को रुका, फिर उल्टी दिशा में बहने लगा। माँ की करुण याद पर चाचा की कटु याद छा गयी। वह नफ़रत और गुस्से से भर, उठ बैठा। फिर तन कर खड़ा हो गया। और थके हुए पैरों में भी उसने एक शक्ति का अनुभव किया, और यों ही उन ख्यालों से पीछा छुड़ाने के लिए कुछ दूर पर खड़ी एक भीड़ की ओर चल पड़ा।

एक छोटी-सी रावटी के सामने भीड़ लगी थी। रावटी के दरवाज़े पर एक छोटी मेज के सामने एक हिन्दुस्तानी साहब खड़ा भीड़ की ओर मुखातिब हो, दाहिने हाथ की बीच की तीन उँगलियों को हवा में फैला कर कह रहा था—

"नौजवानो! फौज में भर्ती होने वालों को वे तीनों चीजें मिलती हैं, जो एक आदमी के लिए इज्ज़त और आराम के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए जरूरी हैं। पहली चीज," उसने बायें हाथ से उन तीन उँगलियों में से पहली उँगली को पकड़ कर अक्षर-अक्षर पर ज़ोर दे कर कहा—"अच्छी तनखाह!" और उसी तरह दूसरी और तीसरी उँगली को

पकड़ कर कहता गया—"दूसरी चीज़, अच्छा खाना और कपड़ा ! और तीसरी चीज़, अच्छी ज़िन्दगी ! फ़ुरसत के वक्त आप के दिल-बहलाव के सामान और बीमार पड़ने पर अच्छी-से-अच्छी दवा और तिमारदारी का इन्तजाम सरकार करेगी । और नौकरियों की तरह इसमें खुश्क तनखाह ही नहीं मिलती, बल्कि ज़िन्दगी की हर ज़रूरत पूरी करने की कोशिश की जाती है, जिस वक्त आप अपना नाम लिखायेंगे, उसी वक्त से आप को खुराक मिलने लगेगी।" इसके बाद रावटी पर इधर-उधर टँगे हुए बड़े-बड़े इश्तहारों को ओर इशारा कर वह फ़ौजी ज़िन्दगी के आकर्षक चित्र सामने खड़े नौजवानों के सामने खींचने लगा।

नौजवान उसकी बातों को गौर से सुन, सोच-समझ रहे थे । नरेन को तो उसकी बातों को सुन ऐसा लगा, जैसे उसकी सारी समस्यायें पहले ही से हल करके वहाँ रखी हुई हों। उसे भविष्य का एक ऐसा द्वार सामने खुलता नज़र आया, जिससे उसके सारे मनोरथ पूरे हो जायँगे।

अन्त में वह साहब अपनी बात खत्म कर मेज़ के पास रखी कुर्सी पर बैठ गया और कागज-कलम हाथ में ले ललकार कर कहा—'चलो, देखें, कौन-कौन अपना नाम लिखाता है !"

नौजवानों में एक-दूसरे को देख काना-फूँसी शुरू हो गयी । पर नरेन को जैसे न कुछ समझना था, न कुछ सोचना था। वह आगे बढ़ कर बोला, "मेरा नाम लिख लीजिए।"

"शाबाश !" साहब ने उठ कर तपाक से उससे हाथ मिलाया, और उसके कन्धों को पकड़, उसे मजमे के सामने घुमा उसकी छाती ठोंक कर कहा, "हमें ऐसे ही जाँबाज नौजवानों की ज़रूरत है ! बढ़ो, तुम भी बढ़ो ! और इस नायाब मौक़े से फायदा उठाओ !"

देखते-देखते ही और भी कितने ही नौजवान आगे बढ़ गये। साहब ने सब का नाम दर्ज किया। और उन्हें रावटी में पड़े फर्श पर बैठा दिया गया।

थोड़ी देर बाद पूड़ियों और मिठाइयों के दोने उनके सामने आ गये। सब के साथ भूखे नरेन ने भी खूब खाया। इस वक्त वह अपनी इस प्रारम्भिक सफलता में सब-कुछ भूल गया था।

ट्रेन आयी। सब रिक्रूटों को ले साहब भर्ती के केन्द्र की ओर रवाना हुए। वहाँ सब के साथ नरेन का भी डाक्टरी मुआइना हुआ। फिर वह ट्रेनिंग के लिए कुछ साथियों के साथ अम्बाला भेज दिया गया।

छै महीने की ट्रेनिग के दौरान में उसे फ़ौजी ज़िन्दगी के खतरों, मशक्कतों, जिम्मेदारियों और दिक्कतों की जब जानकारी हुई, तो उसे ख्याल आया कि वह बुरी तरह फंस गया। पर अब चारा ही क्या था ? मक्ड़ी के जाले में फँसी हुई मक्खी लाख हाथ-पैर पटक कर भी और भी फँसती जाने के सिवा कर ही क्या सकती है ? कई बार उसने माँ को पत्र लिखने की सोची। पर यह ख्याल कर न लिखना ही उचित समझा कि उसके फ़ौज में भर्ती हो जाने का समाचार सुन माँ तो मारे कोफ्त के ही मर जायगी।

ट्रेनिंग के बाद लाम पर जाने का परवाना आ गया। इसके पहले यह हुक्म आया था, कि जो घर जाना चाहे, उसे बीस रोज़ की छुट्टी मिलेगी, और जो न जाना चाहे, उसे एक महीने की तनख्वाह ज्यादा मिलेगी। उसके बहुत-से साथी छुट्टी ले-ले अपने-अपने घर चले गये। पता नहीं फिर कब मिल पायेंगे अपने लोगों से, मिल भी पायेंगे या नहीं, कौन जाने! यही सोचकर जब अपने लोगों से मिलने का अवसर मिला, तो उस सुयोग से कोई लाभ न उठाये, यह कैसे सम्भव है ? नरेन का जी भी घर जाने को मचला, माँ को, भाभी को देखने के लिए उसका दिल तड़प उठा। पर फिर ख्याल आया कि माँ या भाभी जब उससे पूछेंगी कि 'यह क्या किया,' तो वह उनको क्या जवाब देगा ? फिर चलते

वक्त उसका दामन पकड़ कर रोयेंगी, तो कैसे अपना दामन छुड़ा, उनके स्नेह, ममता और मोह को वह ठुकरा सकेगा ? उस बार तो अच्छा हुआ कि उन दोनों में से किसी को कुछ मालूम न हुआ, वर्ना क्या उनके रहते उसका उस तरह भाग सकना सम्भव होता ?

आख़िर मन मसोस कर रह गया। जो अतिरिक्त वेतन मिला, उसे माँ के पते पर भिजवा दिया। उसने पहले ही अपने वेतन की तीन-चौथाई माँ के पते पर भिजवाने का प्रबन्ध करा दिया था। हर महीने माँ को रुपये मिलते होगें। पता नहीं उन रुपयों को पा कर माँ खुश होती होगी या नहीं। उसे अब तक पता तो लग ही गया होगा कि नरेन फ़ौज में भर्ती हो गया। भाभी को भी मालूम हो ही गया होगा। ओह, वे कितनी चिन्तित होंगी !

घर से चलते समय उसने सोचा था कि वह माँ को रुपये भेजेगा, और साथ ही लिख देगा, कि वह चाचा का घर छोड़ कर अपने घर आ जाय। पर अब तक वह ऐसा न लिख सका। फ़ौजी ज़िन्दगी ठहरी, क्या ठिकाना उसकी ज़िन्दगी का ? कहीं वह मोर्चे पर मारा गया, तो माँ तो अपने घर में बिलकुल अकेली हो जायगी। कौन सहारा देगा उसे ? इसलिए जब तक उस ख़तरे से बच नहीं निकलता, तब तक माँ का चाचा के साथ ही रहना ठीक है। जो भी हो, आख़िर वह अपने ही तो हैं। चाचा के प्रति अपने मन में जो कड़ुवाहट ले कर वह भागा था, अब वह बहुत कम हो गया था। उसे लगता था कि हर घड़ी मौत उसके सिर पर मँडरा रही है। मौत के जबड़ों में फँसा हुआ इन्सान भी क्या किसी से नफरत कर सकता है ?

अबकी लाम पर जाने के पहले उसके जी में बहुत आया कि वह भी माँ को एक पत्र लिख दे। पर उसकी समझ में न आया कि वह कैसे माँ को लिख दे, कि वह लाम पर जा रहा है ? लाम पर जाने की बात सुन कर माँ तो और भी तड़प-तड़प कर जान दे देगी !

उसी वक्त हुक्म आया कि जिस रेजीमेंट में वह दाखिल हुआ है, वह एक हफ्ते के अन्दर कूच कर देगा। उसे आखिरी हुक्म के लिए हर घड़ी तैयार रहना चाहिए।

आखिर वह दिन भी आया, जब वह एक अनजान मोर्चे पर जाने के लिए अपने रेजीमेंट की एक टुकड़ी के साथ ट्रेन में चढ़ गया। उस समय उसे लगा कि वह अपनी प्यारी माँ, दुलारी भाभी और अपने अज़ीज़ वतन से हमेशा के लिये बिछुड़ रहा है! उस वक्त उसके दिल-दिमाग़ में एक ख़ामोश उदासी थी और उसकी आँखों में खुश्क आँसू थे।

जब बन्दरगाह पर उनकी लारी रुकी, और उन्हें जहाज़ पर चढ़ने का हुक्म हुआ, तो यों ही जैसे कोई उनके कानों में चुपके से कह गया, कि वे बर्मा के मोर्चे पर जा रहे हैं, आफत के परकालों जापानियों से उनका मुकाबला है। जापानियों की जीत, बहादुरी, चालाकी और अद्भुत हथियारों की कितनी ही कहानियाँ वे सुन चुके थे। उन तेज़ सधे हुए फौजियों से इन नौसिखिये हिन्दुस्तानियों को भिड़ना पड़ेगा, यह बात सोचकर जैसे अभी से उनके दिलों में एक शंका बैठ गयी कि भेड़-बकरियों की तरह वे उनके मशीनगनों और बन्दूकों की खूराक बनने के सिवा कुछ नहीं कर सकते। मोर्चे पर जाने के पहले ही जिन फौजियों की यह हालत थी, वे मोर्चे पर पहुँच कर क्या कर पायेंगे, यह सहज ही समझा जा सकता है।

आखिर हुआ भी वही। नरेन का रेजीमेंट अभी कुमक पर ही था कि लड़ने वाले रेजीमेंट के बचे-खुचे फ़ौजी भागते हुए पहुँचे। खूँख्वार जापानी टिड्डी के दलों कि तरह उनका पीछा करते आ रहे थे। आसमान

में अनगिनत जापानी वायुयान चिंग्घाड़ते हुए उड़ रहे थे। गोले पर गोले इस तेज़ी से गिर रहे थे, कि खाई से आँख उठा कर भी देखने का अवसर न मिलता था। ज़मीन के टुकड़े फट-फट कर शोले उगल रहे थे। चारों ओर विषैली हवा के बादल छा रहे थे।

कमान की हिम्मत टूट गयी। बिना कोई हुक्म दिये अफ़सर पता नहीं कहाँ गायब हो गये।

"हैंड्स अप!" सुन कर खाई में दुबके हुए नरेन और उसके साथियों ने खौफ़ में काँपती हुई आँखें ऊपर उठायीं, तो जापानी सैनिक उनकी ओर बन्दूक ताने आँखों में आग लिये उनकी ओर घूर रहे थे। वे काँपते हुए उठ कर खड़े हो गये। और उनके हाथ मशीन की तरह ऊपर उठ गये, सिर हार के अपमान से झुक गये।

वे क़ैदी हो गये। जहरीले मच्छरों और कीड़ों-मकोड़ों से भरे हुए किसी जंगल के कैदियों के कैम्प में उन्हें भेज दिया गया। वहाँ पर नरेन को वे सब ज़िल्लतें, मशक्कतें, फ़ाके, परेशानियाँ और तकलीफ़ें उठानी पड़ीं, जो एक फ़ौजी क़ैदी को उठानी पड़ती हैं। चन्द घड़ियाँ जब फ़ुरसत की मिलतीं, तो उसे अपने वतन की, अपने लोगों की, माँ, भाभी की याद आती। वह सबकी नजरें बचा कर खूब-खूब तड़प कर रोता, बिलखता। ओह, क्या सोच कर वह घर से निकला था, और यह क्या उसके सिर आ पड़ा! क्या उसके भाग्य में यही सब लिखा था?

पता नहीं, ये मुसीबतें कब तब उठानी पड़तीं; पता नहीं, उन ज़िल्लतों से उन्हें कभी मुक्ति भी मिलती या नहीं, कि एक दिन मालूम हुआ कि उनके देश का एक नेता उनकी मुक्ति का सन्देश ले कर आया है। मुर्दा दिलों में एक बार फिर ज़िन्दगी का खून दौड़ गया, पस्त मनसूबे फिर सिर उठाने लगे। वे उस नेता के दर्शन के लिए, उसके चरणों की धूलि माथे पर लगाने के लिए तड़प उठे, जो उनके लिए एक नयी ज़िन्दगी, एक नया कार्यक्रम, एक नया लक्ष्य ले कर आया था।

दूसरे दिन जापानी हेडवार्डर ने जापान सरकार का हुक्म कैम्प के सब क़ैदियों को इकट्ठा कर सुनाया, "हिन्दुस्तान के एक नेता ने ग़ुलाम हिन्दुस्तान को अँग्रेजों के चंगुल से मुक्त करने के लिए एक विशाल सेना खड़ी करने का आयोजन किया है। उस सेना में जो भी हिन्दुस्तानी फ़ौजी क़ैदी भरती हो जायगा, उसे जापान सरकार मुक्त कर देगी। तुम लोगों में से जो भी अपने देश के लिए सब-कुछ न्योछावर करने के लिए तैयार हो, मुझे अपना नाम दे दे!"

यह हुक्म क़ैद की बला से हमेशा के लिए मुक्ति का सन्देश ही नहीं, बल्कि गुलामी की ज़ंजीरों में सदियों से जकड़े हुए उनके प्यारे मुल्क की आज़ादी के मोर्चे के लिए एक खुला आह्वान और ललकार मालूम हुआ। दिलों में सोये देश-प्रेम ने करवट ली। आज़ादी कितनी बेशकीमत चीज़ होती है, उसका ज्ञान उन्हें कैद के ज़माने में हो चुका था। कौन अभागा था, जो इस सुनहले अवसर पर अपने प्यारे देश के लिए अपने को न्योछावर करने से हिचकता। उस वार्डर पर एक ही साथ सब टूट पड़े चिल्लाते हुए, "मेरा भी नाम लिख लीजिए, मेरा भी...."

फिर शुन्नान के म्यूनिसिपैलटी भवन के सामने के विशाल मैदान में आज़ाद हिन्द फौज में भरती होने वाले अनगिनत हिन्दुस्तानी फौजियों की महती सभा में तिरंगे झण्डे के नीचे खड़े नेताजी का वह ओजस्वी भाषण, जिसने मुर्दा दिलों में भी बला का जोश भर दिया, जिससे आदमी हँसते-हँसते देश-प्रेम की वेदी पर अपने को कुरबान कर देता है। फिर 'जय हिन्द' की वह गूँज, जिसने मानस को कुछ इस तरह आन्दोलित कर दिया कि देश-प्रेम की असंख्य लहरें उठ पड़ीं, और फौजी ऐसे भड़क उठे की यदि उस समय उनके मुल्क को गुलाम बनाने वाले वहाँ मौजूद होते, तो उनके शरीरों के रेशे का भी नामोनिशान वे न छोड़ते, और हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाली हुकूमत को खड़े-खड़े शोलों में झोंक देते।

नेताजी ने खून माँगा और बदले में देश की आज़ादी दिलाने की प्रतिज्ञा की। फौजियों ने खून नहीं, बल्कि उसके साथ शरीर, प्राण, आत्मा, सब-कुछ देश के लिए नेताजी के चरणों पर न्यौछावर करने की सौगन्ध खून की बूँदों से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करके ली। नेताजी की छाती सीमा से अधिक फूल उठी, ललाट यों उन्नत हो उठा कि यदि सूर्य भी उस वक्त उनके सामने पड़ जाता, तो उनके कदमों में झुक जाता! उन्होंने 'जय हिन्द' कह कर अपने जाँबाज हिन्द-फौजियों की सलामी ली। फौजियों ने अकड़ कर सलामी दी, और उनके 'जय हिन्द' की गूँज से हिन्द महासागर का पानी बाँसों उछल पड़ा, आसमान में लाखों बिजलियाँ कौंध गयीं।

नौजवानों, नवयुवतियों और बालकों की सेनायें सजने लगीं। नरेन ने उस वक्त अपने को एक बदला हुआ इन्सान पाया। देश-प्रेम की उमंग में वह सारे दुख-दर्द भूल गया। उस वक्त बस गुलाम हिन्दुस्तान का नक्शा उसकी आँखों के सामने नाचा करता, जैसे हिन्दुस्तान ने ही उसके गाँव, माँ, भाभी, सब-कुछ का एक मिश्रित रूप धारण कर लिया हो, और वह जैसे उसी का, केवल उसी का हो!

कवायद में जाते वक्त जब वह फौजियों के साथ देश-प्रेम से भरे हुए गीतों को गाता चलता, तो उसकी छाती फूल उठती और पेशानी चमक उठती, शरीर की बोटी-बोटी जोश और उमंग से फड़क उठती। उस वक्त उसे याद आया वह ज़माना, जब वह अँग्रेजी हुकूम की फ़ौज में था। ओह, कितना अन्तर था उस वक्त के फौजी नरेन में और इस वक्त के फौजी नरेन में! उस वक्त तो जैसे वह पेट भरने के लिए सिर पर एक अनचाहा भार लिये कवायद में जाया करता था। उसे हर घड़ी चिन्ता लगी रहती थी, कि मोर्चे पर वह कैसे लड़ेगा? कहीं वहाँ मारा गया, तो? पर आज उसके मन में ये बातें भूले से भी न उठतीं। आज तो अपने प्यारे देश को आज़ाद कराने के लिए वह अपने ख़ून की

आखिरी बूँद तक देने के लिए तैयार था। उसकी नस-नस में आज देश-प्रेम जोश मार रहा था। नेताजी ने उसे वह आँखें दे दी थीं, जिनसे जीवन में पहली बार वह अपने हिन्दुस्तान को और अपने को देख सका था, पहिचान सका था, समझ सका था। आज वह अपने को अपने देश पर कुरबान कर देने के लिए हृदय में एक उतावलापन लिये तड़प रहा था।

आखिर वह दिन भी आया, जब उसे अपने जाँबाज साथियों के साथ इम्फाल के मोर्चे पर भेज दिया गया। अपने प्यारे देश के दीवाने, देश-प्रेम के नशे में झूमते हुए, प्राणों में बलिदानी उमंग, ख़ून की उबाल में फटते हुए अंग, हृदय में प्रतिशोध की तड़पें, जलती आँखों में दुश्मनों को भस्मीभूत कर देने वाली लपटें, भौंहों के बल में दुश्मनों के लिए कहर, वाणी में विद्रोहियों का गर्जन और छाती में तूफानों की धड़कन लिये शान से तिरंगे झण्डे लहराते हुए चल पड़े। उस समय नरेन को लग रहा था कि सचमुच आज वह अपना जीवन सार्थक करने जा रहा था। उसे लग रहा था कि देश अपने असंख्य हाथों से उस पर फूलों की वर्षा कर रहा है, और कह रहा है, 'शाबाश मेरे सपूत! तुझ पर हमें नाज है!' उसकी आँखों के सामने जैसे भारत माता की भव्य, आलोकमय मूर्ति आगे-आगे चल रही थी, हृदय में उस पर क़ुरबान हो जाने के वलवले उठ रहे थे, सधे हुए कदम लक्ष्य की ओर उठ रहे थे, और मुँह से गीत निकल रहा था, "कदम-कदम बढ़ाये जा...."

फिर इम्फाल का वह मोर्चा। आज़ाद हिन्द फ़ौज के फ़ौजियों ने अपने नेताजी के सामने तिरंगे झंडे के नीचे जो कसम खायी थी, उसे पूरा कर दिखाया। जंगलों और पहाड़ियों की घाटियों से उनके ख़ून

की नदियाँ ग़ुलामी की आग में झुलसे हुए अपने प्यारे देश की धरती को सींच कर सरसब्ज बनाने के लिए बह चलीं। वह ख़ून किसी एक क़ौम का, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई का न था, वह सबका खून था, हिन्दुस्तान के शरीर के अंग-अंग का खून था, जिसका रंग एक था—लाल!

अल्प-संख्यक बहादुरों को यश मिला है, विजय नहीं। आख़िर वह दिन भी आया जब कि आज़ाद हिन्द फ़ौज अँग्रेज़ी सेना से घिर गयी। पर शहादत का जामा और सिर पर कफ़न बाँध कर मैदान में निकलने वाले उन देश के दीवानों को कोई ग़म नहीं था। वे हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ झनझनाते भी, दुश्मनों की संगीनों के साये में भी देश-प्रेम के नशे में झूमते हुए, शेरों की तरह बेग़म चाल से गाते हुए चले, "आजाद हिन्द फ़ौज के नौजवान आये!...."

फिर लाल किला। जिस किले के बुर्ज पर आज़ाद हिन्द फ़ौज के शेरदिल नौजवानों ने अपने तिरंगा झंडा फहराने का क़स्द किया था, आज उसी में वे कैद थे। नरेन की आँखों के सामने कभी बन्दूक की गोली की लपट कौंध जाती, कभी फाँसी का तख़्ता झूल जाता, पर उसके दिल में लग्जिश की एक कँपकँपाहट भी न होती थी। उल्टे मन्सूर की तरह वह दार की रस्सियों को चूम लेने के लिए बेताब हो उठता। आज़ाद रहने और अपने मुल्क को आज़ाद करने के अरमान जिसने अपने दिल में पाल रखे थे, उसके लिए यह क़ैद की यातना एक ऐसी बला थी, जिससे जल्द छुटकारा पाने को उसकी आत्मा तड़प उठी। उसे उस वक्त नेताजी के शब्द बार-बार याद आते, "जियेंगे, तो आज़ाद होकर, वर्ना ग़ुलामी से मौत अच्छी!" और वह भगवान से प्रार्थना करता, 'हे भगवान, तू जल्द ही मुझे मौत दे, इस ग़ुलामी से मुक्ति दे, इस क़ैद से मुक्ति दे!'

पर भगवान को तो कुछ और ही मंजूर था। देश को आज़ाद करने के लिए आज़ाद हिन्द फ़ौज के नौजवानों ने जो ख़ून बहाया था, जो बेशकीमत कुरबानियाँ दी थीं, उनकी कहानियाँ लाल क़िले की पत्थर की दीवारों को भेद कर देश के कोने-कोने में फैलने लगीं। काशमीर से जवाहर लाल नेहरू ने ऐलान किया, कि आज़ाद हिन्द फ़ौज के नौजवान देश की आज़ादी के बहादुर सिपाही हैं। उन्होंने देश के बाहर जो मुसीबतें उठायी हैं, जो बलिदान दिये हैं, उन पर देश को गर्व है। वे भारत माता के अनमोल लाल हैं, राष्ट्र पर अपना सब न्यौछावर करने वाले वीर हैं, देश के सपूत हैं। उनकी रक्षा करना देश का पहला और सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अँग्रेजी हुकूमत जो उन्हें गद्दार कहती है, उसे समझ लेना चाहिए कि अगर उनमें से किसी एक का भी बाल बाँका हुआ, तो देश इसे किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता!

लाल क़िले में बन्द आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों ने, जिन्होंने नेताजी की अनुपस्थिति में अपने को अनाथ समझ लिया था, यह दहाड़ सुनी, तो उन्हें अनुभव हुआ, कि नहीं, वे अनाथ नहीं है, उनके सिर पर अब भी किसी नेताजी के हाथ हैं, देश उनसे, उनकी सेवाओं और उनके अमूल्य बलिदानों से ग़ाफ़िल नहीं। उन्होंने देश के लिए खून बहाया, तो देश भी उनके लिए खून बहाने से न हिचकेगा।

देश में खलबली मच गयी। देश की और समस्याओं से मुख मोड़ जनता और नेता हिन्द फ़ौज के अपने बहादुर सिपाहियों को छुड़ाने का नारा बुलन्द करने लगे। कैदी सैनिकों ने जब यह सुना, तो एक बार फिर उनमें देश के लिए खून बहाने के अरमान उभर पड़े।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सामने पंडित जवाहर लाल नेहरू ने आज़ाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये सहायक समिति के

निर्माण का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सब सम्मति से स्वीकार हुआ, और सरदार पटेल की सदारत में सहायक समिति बना दी गयी।

सरकार के कान खड़े हो गये। वह आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर कोई मुकदमा चलाये बिना ही, उनको खत्म कर देने के मनसूबे गाँठ रही थी, पर अब देश की हवा जो बिगड़ी देखी, तो ऐलान किया कि उन पर बाक़ायदे मुकदमे चलाये जायँगे, उनकी पैरवी करने का पूरा-पूरा अधिकार देश को है।

कांग्रेस ने पैरवी की तैयारी की। देश के नामी-गरामी वकीलों, एडवोकेटों और बैरिस्टरों ने खुल कर सहयोग दिया। आज़ाद हिन्द फौज के तीन प्रमुख अफसरों से मुकदमे का नाटक सरकार ने शुरू किया। ऐसा करके सरकार देश और दुनिया की आँखों में धूल झोंक कर यह दिखाना चाहती थी, कि जो भी सजा उनको दी जायगी, वह नियमित और न्यायोचित होगी। पर देश की जनता ऐसे भुलावों में पड़ने वाली न थी। इधर मुक़दमा चल रहा था, उधर जनता का आन्दोलन चल रहा था। कभी-कभी दीवारों से छन कर हवा में तैरती हुई जनता की आवाज़ उनके कानों में भी पड़ जाती थी, 'बच्चा-बच्चा रहे पुकार, सहगल, ढिल्लन, शाहनवाज!' और उन्हें लगता कि बच्चे केवल उन्हीं तीनों की पुकार नहीं कर रहे हैं, बल्कि सब-के-सब आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों की पुकार कर रहे हैं। वे तीन आज तीन न रह कर पूरी आज़ाद हिन्द फौज के प्रतीक हो गये हैं।

फिर कलकत्ता, बम्बई और दूसरे शहरों के सब दलों के संगठित जलूसों के निकलने के समाचार आये। फिर मालूम हुआ कि उन जलूसों पर गोलियाँ चलायी गयीं। उनके देशवासी भाइयों ने सड़कों पर अपना खून बहाया और दिखा दिया कि आज वे उनके लिए क्या कर सकते हैं!

नाटक का पहला दृश्य समाप्त हुआ। तीनों को मृत्यु दंड दिया गया। फिर मालूम हुआ कि उनकी सजा आजन्म कारावास में बदल दी गयी।

देश यह समाचार सुन कर पागल हो उठा। इस धूर्तता के नाटक को उन्होंने कोई महत्व न दिया। जब तक उनके लाड़ले उन्हें सही-सलामत न मिल जायँ, उन्हें कहाँ चैन था? विद्रोह की चिनगारियाँ हवा में उड़ने लगीं। चारों ओर पुकार गूँजने लगी, 'लाल किला को तोड़ दो!....'

ज्वालामुखी फटने ही वाला था कि मालूम हुआ कि महात्मा गाँधी से मिलने पर वायसराय ने उन्हें मुक्त कर देने का निश्चय किया है।

आज उनकी खुशी का ठिकाना न था। खुशी उन्हें इस बात की न थी कि उनके अफ़सर मुक्त हो गये, बल्कि इस बात की थी कि उन्हें मालूम हो गया कि उनके प्यारे देश की जनता जग कर आज अजेय हो गयी है! सरकार आज उन तीनों को मुक्त करने पर विवश हुई है, कल देश को मुक्त करने को विवश होगी। जगी जनता को दुनिया में कौन गुलाम रख सकता है? नेताजी के जीवन, उनकी प्यारी आज़ाद हिन्द फ़ौज का काम पूरा होने से अब कोई नहीं रोक सकता!

उसके बाद एकाध और मुकदमों का तमाशा हुआ। फिर बिना मुक़दमा चलाये ही वे छोड़े जाने लगे। नरेन और उसके साथी जब मुक्त हो लाल किले के फाटक पर आये, तो वहाँ एकत्रित हुई भीड़ ने उनका बड़ी शान से स्वागत किया। उनके गले फूलों के हार से भर गये। 'जय हिन्द' का गगन-भेदी नारा ऐसे बुलन्द हुआ, कि पास में बहती हुई जमुना भी एक मिनट तक ठिठक कर रह गयी। उस वक्त अपने देशवासियों का जोश देख कर नरेन की छाती फूल उठी थी, आँखें देश-प्रेम की चमक से आलोकित हो उठी थीं, सिर तन गया था।

कैम्प में आने पर जब नरेन से उसका पता-ठिकाना पूछा गया, तो सहसा उसे लगा कि वह एक नयी दुनिया में आ गया है। देश-प्रेम के नशे में वह जिस गाँव, जिन सगे-सम्बंधियों के ख्याल से बेखर हो चुका था, इस समय वे उसकी आँखों के सामने ऐसे आ खड़े हुए, जैसे एक लम्बी जुदाई के बाद सहसा मिल गये हों। पूछने वाला उससे पूछ रहा था। नरेन खोया हुआ-सा उसके सवालों जा जवाब दिये जा रहा था, और उसकी आँखों में गाँव और वहाँ के अपने-लोगों की रूप-रेखायें बन-बिगड़ रही थीं।

"अब आप क्या करना चाहते हैं?" आखिर में उसने नरेन से पूछा। नरेन ने कुछ सोचा। फिर भरे स्वर में कहा, "फिलहाल मैं घर जाऊँगा। उसके बाद मैं क्या करूँगा, वहाँ जा कर ही निश्चय कर सकूँगा।"

उसे एक रेलवे टिकट और राह-खर्च दे दिया गया। वह अपने बिछुड़े गाँव, अपने प्यारों से जल्द-से-जल्द मिलने की तड़प दिल में लिये चल पड़ा।........

सहसा एक छपाक की आवाज़ आयी। नरेन ने चौंक कर आवाज़ की ओर देखा। ओह, यह तो गाँव का पोखरा है। उसे याद आयी वह छपाक की आवाज, जो आज से सात साल पहले, जब वह गाँव से विदा हो रहा था, हुई थी। उस समय उस आवाज़ ने उसे किसी की याद दिलायी थी। पर आज उसे याद दिलाने की आवश्यकता नहीं। आज तो नरेन स्वयं ही उस 'किसी' से मिलने के लिए तड़प रहा है। उसकी चाल आप ही और तेज हो गयी। जी में आया कि दौड़ पड़े, और और.... पर वैसा न कर सका। सहसा उसे अब जा कर बोध हुआ कि जैसा वह अब तक सोचता रहा है, वैसा वह भाभी से खुल कर दिल

से नहीं मिल सकेगा। समाज की ज़ंजीरें........ओह ! और उसकी उमंगों में एक पस्ती आ गयी, ठीक उसी तरह, जैसे उफनता दूध पानी के छींटे पा दब जाता है। फिर भी और कुछ नहीं, तो कम-से-कम एक नज़र भाभी को देख तो लेगा। यही सोच कर बढ़ता गया, और मन-ही-मन कटता गया।

'यह क्या ?' सहसा उसका हृदय चीख पड़ा। सामने आश्चर्य में तकती आँखें सीमा से भी अधिक फैल गयीं। बेरका पेड़ ठूँठ बना खड़ा था, और घर खँडहर बना मुर्दे की ठठरी की तरह पड़ा हुआ था 'यह क्या हुआ ? यह कैसे हुआ ? यह क्यों हुआ ?' उसका व्यथा से छटपटाता हुआ हृदय बार-बार चीख़-चीख़ कर पूछने लगा। पर इसका जवाब वह ठूँठ बेर का पेड़ क्या देता ? वह खँडहर बना घर क्या देता ? नरेन का कलेजा जैसे कटता-सा लगा, मस्तिष्क जैसे फटता-सा लगा। उसके जी में बार-बार आता कि वह उस ठूँठ पर अपना माथा पटक दे, उस खंड-हर की नंगी दीवारों से अपना सिर टकरा दे और बिलख-बिलख कर उनसे पूछे, 'यह क्या हुआ ?'

सहसा पास ही ज़ोर का अट्टहास हुआ। चकराता-सा दिमाग़ लिये मुड़ कर नरेन ने देखा, तो खँडहर की बग़ल से एक पागल-सा बूढ़ा, शोलों की तरह जलती हुई छोटी-छोटी आँखों से उसे घूरता दोनों पंजों को जैसे उसका गला दबोचने के लिए बढ़ाये, अट्टहास करता हुआ उसकी ओर बढ़ा आ रहा था। पास आ ज्योंही उसने उसके गले की ओर दाँतों को भींचते पंजों को बढ़ाया, कि नरेन ने हाथ का सूटकेस ज़मीन पर रख उसके हाथों को अपने मजबूत हाथों से बीच ही में पकड़ कर नीचे कर दिया। बूढ़ा पागल ज़ोर से चीख कर उछल पड़ा और चाहा कि नरेन पर टूट पड़े, कि नरेन, जो उसे अपनी सिकुड़ी आँखों से गौर से देख पहचानने की कोशिश कर रहा था, कि यह कौन है, पहचान कर उसकी बाहों को पकड़ कर बोल पड़ा, "अलीम के अब्बा !"

"अलीम के अब्बा !" ज़ोर लगा कर अपने बाजुओं को नरेन की पकड़ से छुड़ाने का प्रयत्न करता पागल चिल्ला उठा, आज "अलीम का अब्बा कहने चला है ! उस दिन तेरे बूटों पर सिर रगड़ कर जब मैंने अलीम, अपने बेटे की जिन्दगी की भीख अपना दामन फैला कर और गिड़गिड़ाकर तुझसे माँगी थी, तो तूने मुझे अलीम का अब्बा नहीं समझा ? शैतान, तेरी खोज में मैं बहुत दिनों से था ! आज तुझे मैं जिन्दा न छोड़ूँगा !" कह कर उसने फिर अट्टहास किया और सीने का ज़ोर लगा नरेन को पीछे ढकेल कर गिरा देने की कोशिश करने लगा।

"अलीम के अब्बा, मुझे पहचाना नहीं ? मैं नरेन हूँ ! यह आप क्या कह रहे हैं ? अलीम भैया को क्या हुआ ? वह कहाँ हैं ?" रुदन-भरे स्वर में पागल के बाजुओं को पकड़े, झकझोर कर नरेन ने पूछा।

"ओह, आज तो तू बड़ी मुहब्बत-भरी बातें कर रहा है ! लेकिन मैं तेरे चकमे में नहीं आ सकता। मैं आज तुझे खत्म किये बिना न छोड़ूँगा। शैतान, जालिम, मेरे बेटे का कातिल ! आज तू पूछ रहा है, अलीम भैया को क्या हुआ ? वह कहाँ है ? क्या तू वह दिन भूल गया, जब मेरी आँखों के सामने ही तूने मेरे लाड़ले बेटे को गोली से मार गिराया था ? नहीं, नहीं, तू मुझे आज धोखा नहीं दे सकता ! तूने मेरे बेटे का खून किया। आज मैं भी तेरा खून कर अपना कलेजा ठंडा करूँगा ! अब तू मेरे हाथों से बच कर नहीं निकल सकता ! मैं तुझे कच्चा चबा जाऊँगा।" गला फाड़ कर चिल्लाता हुआ पागल मुँह खोल कर नरेन का हाथ काटने को हुआ, कि अपने दरवाजे पर खड़ा पड़ोस का एक आदमी पागल की चीख सुन और उसे एक आदमी से उलझा देख कर 'हाँ, हाँ,' चिल्लाता दौड़ कर आ गया, और पागल को खींच कर दूर किया। फिर उसे ढकेल कर खँडहर की ओर कर आया कहता हुआ, "अलीम के अब्बा ! क्या तुम पागल हो कर इस तरह लोगों का रास्ता-घाट चलना भी बन्द कर दोगे !"

नरेन विमूढ़-सा खड़ा रहा। उसकी समझ में कुछ न आ रहा था। दुख से उसका बुरा हाल था। हे भगवान, यह सब क्या देख रहा है वह ?

लौट कर वह आदमी नरेन के पास आया, तो उसकी फौजी वर्दी देख कर सहम गया। कुछ डरा-सा ही उसने कहा, "यह पागल हो गया है, बाबू। इस तरह की इसकी हरकत रोजाना की बात है। किसी को भी खाकी कमीज में देखता है, तो उसे अपने बेटे को गोली से मार गिराने वाले दारोगा ही का धोखा हो जाता है। वह उस पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ता है। बदकिस्मती की ठोकरें खाते-खाते यह पागल हो गया है। सन् बयालिस के सरकारी-दमन का फफोला अपने दिल पर लिये यह बूढ़ा पता नहीं कब तक ग़म के खून-भरे आँसू बहाता रहेगा। बेटा गोली से मार दिया गया। बहू को फौजवाले पकड़ कर ले गये, घर जला दिया गया, बीबी अपने बेटे और बहू से बिछुड़ कर तड़प-तड़प कर मर गयी। और यह सब इसलिए हुआ कि अलीम को अपने मुल्क से मुहब्बत थी, अपने देश की आज़ादी प्यारी थी। अब यह बूढ़ा बच गया है, जो खँडहर में पड़ा-पड़ा दिन-रात चीखता चिल्लाता रहता है।"

सुन कर नरेन के कलेजे में सैकड़ों बर्छियाँ चुभ गयीं। व्यथा में बेसुध-सा बेर के ठूँठ पर सिर रख कलेजे को दोनों हाथों से मसलता वह फूट-फूट कर बच्चों की तरह रो पड़ा।

उस आदमी को उसे यों रोता देख कर उस पर सहानुभूति हो आयी। बढ़ कर उसकी पीठ पर हाथ रख कर वह भरे स्वर में बोला, "बाबू, जो भी इस अभागे की कहानी सुनता है, आप ही की तरह रो पड़ता है। इस गाँव में इससे ज्यादा जुल्म और किसी पर न हुआ। पर अब हो ही क्या सकता है ? मुझे आप से यह सब नहीं कहना चाहिए था। पर आप परदेसी हैं, और वर्दी से यह भी मालूम होता है, कि आप फौजी हैं, पता नहीं, क्या सोच कर, क्या कर बैठते। इसीलिए मैंने

यह बातें आप से कह दीं। आप यों दुखी न हों। हाँ, आपको कहाँ जाना है ? आप कौन हैं ?"

वैसे ही बिलखते हुए नरेन ने कहा, "मुझे नहीं पहिचाना, दुखी काका ? मैं नरेन हूँ।" नरेन उस आदमी को पहिचान गया था।

"नरेन ? अरे, हमारा नरेन ?" वह विस्मय और हर्ष से विह्वल हो बोल पड़ा। फिर उसका सिर तने से उठा, उसका मुँह हाथों में ले अपनी ओर कर, एक क्षण आश्चर्य-भरी आँखों से एक टक देख, खुशी से करीब-करीब चीख कर बोला, 'तू ज़िन्दा है ? यहाँ तो सालों पहले यह खबर फैल गयी थी कि लड़ाई में तू कहीं मर-खप गया ! तू कहाँ रहा अब तक, बेटा ? न कोई सर, न समाचार, हम लोग तो तुझे अब भूल भी गये थे।" कह कर उसने नरेन की आँखों को हाथों से पोंछ दिया। फिर उसका सूटकेस उठा बोला, "चल, चल, तुझे घर तक पहुँचा दूँ !"

हृदय में असीम व्यथा, आँखों में आँसुओं का तूफान और मस्तिष्क में दर्द-भरी शून्यता लिये, अन्तर-ही-अन्तर में कराहता वह दुखी के पीछे-पीछे बोझिल पैरों को घसीटता चल पड़ा।

चाचा ओसारे में ही सो रहे थे। दुखी ने उन्हें जगा कर कहा, "भैया, भैया, नरेन आया है !"

सुनकर चाचा यों बिस्तर से उछल कर खड़े हुए, जैसे किसी अन-होनी बात के घट जाने की ख़बर सुन ली हो। फिर भौंचक से नरेन को देखते बोले, "बेटा नरेन !"

नरेन दुख की सूरत बना चुप खड़ा रहा। दुखी सूटकेस रख कर चला गया।

चाचा ने घर का दरवाज़ा खोलवाया। फिर नरेन के सामने पानी-भरा लोटा रख बोले, "हाथ-मुँह धो ले, बेटा।"

नरेन की आँसू-भरी आँखें माँ की खोज कर रही थीं। दुखी बेटा चाहता था कि अपनी माँ के आँचल में मुँह छिपा कर खूब रो ले।

कदाचित वैसा करने से उसका जी कुछ हल्का हो जाय । ओह, माँ को उसने कितना दुख दिया ! चाचा ने शायद उसके आने की खबर माँ को नहीं दी है । नहीं तो क्या यह सम्भव था, कि इतने दिनों बाद बेटे के आने की खबर सुन, माँ दौड़ कर उसके पास न आती, उसे कलेजे से न लगा लेती ? वह 'माँ-माँ' पुकारता घर में घुस पड़ा । चाचा भी उसके पीछे ही मन-ही-मन में एक व्यथा लिये घुसे ।

घर में इस कमरे से उस कमरे में पागल की तरह भागते नरेन ने 'माँ-माँ' चिल्ला कर सारा घर गुँजा दिया, पर किसी कोने से भी माँ की आवाज़ न आयी । फिर सहसा उसकी दृष्टि ओसारे में खड़ी चाची पर पड़ी । वह आँचल से मुँह ढँककर रो रही थीं । हैं, चाची रो क्यों रही हैं ? व्यथापूर्ण हृदय में एक भयावनी आशंका लिये, फैली हुई काँपती आँखों से देखता वह चाची की ओर बढ़ा, कि चाचा ने उसका हाथ पकड़ कर दुख-भरे स्वर में कहा, "बेटा !"

"माँ कहाँ है ?" नरेन ने चाचा की ओर घूम कर आशंका-भरे स्वर में एक तड़प लिये पूछा ।

"बेटा, चल, पहले हाथ-मुँह धो, जरा ठंडा हो ले । फिर सब मैं बताऊँगा । चल, चल !" कह कर उन्होंने नरेन का हाथ खींचा ।

"नहीं, नहीं, चाचा ! आप बताते क्यों नहीं ? माँ कहाँ है ?" और भी आशंकित हो नरेन ने पागल के स्वर में कहा ।

चाचा की आँखों में आँसू भर आये । चाची ज़ोर से रो पड़ीं । किसी के मुँह से बोल न फूटा । पर नरेन को लगा, जैसे किसी ने चीख कर कहा, कि 'तेरी माँ नहीं रही !' उसका कलेजा मुँह को आ गया । मस्तिष्क ने जोर का एक चक्कर खाया । आँखों के सामने अँधेरा छा गया । वह धमाक से गिरने को हुआ, कि चाचा ने उसे सँभाल कर चारपाई पर ले जा कर लेटा दिया ।

रोने की आवाज़ सुन, पास-पड़ोस की कितनी ही स्त्रियाँ और मर्द जुट गये। घर में एक हंगामा-सा मच गया। चाचा नरेन को होश में लाने की कोशिश कर रहे थे, और इकट्ठे हुए लोग उसाँसे भरते मरने वाली माँ और उसके बेटे नरेन के विषय में रुदन-भरे स्वर में न जाने क्या-क्या एक-दूसरे से कह रहे थे।

बेहोशी की अँधेरी घाटियों में भटकती हुई नरेन की अचेत आत्मा कभी-कभी एक क्षण के लिए चेत में आती तो, उसका मुँह खुल जाता और एक अस्फुट स्वर जैसे बहुत गहराई से आ उसके होंठों पर काँप कर कह जाता—"माँ...."

दूसरा भाग

बेला चाहती थी कि उसका बीमार बेटा मर जाय। वह रोज़ सुबह-शाम उसकी मौत की दुआ खुदा से माँगा करती। फिर भी उसे ज़रा भी उम्मीद न थी कि उसका बेटा मर जायगा। वह जानती थी कि उसकी दुआओं में असर नहीं है, उसका खुदा उसकी कोई बात नहीं सुनता। ऐसा अगर नहीं होता, तो वह खुद ही अब तक कैसे ज़िन्दा रहती? उसने कितनी बार, कितनी आजिज़ी से, कितना गिड़गिड़ा कर, कितना सिर पटक-पटक कर, किस तरह रूह को मुँह में ला-ला कर खुदा से अपनी मौत की दुआ माँगी थी, पर कहीं कुछ हुआ? नहीं, वह आज भी ज़िन्दा है, और उस दोज़ख की आग में पल-पल जल रही है, जिसका उसने कभी ख़्वाब में भी ख्याल न किया था। उसने कितनी बार कोशिश की थी कि कहीं से उसे ज़हर की एक पुड़िया ही मिल जाय, या कोई ऐसा अवसर ही मिल जाय कि गले में फँसरी लगा कर वह मर सके, पर उसे तो ज़िन्दगी की दोज़खी गलियों से भी गुज़रना था, फिर कैसे मर जाती? उसने कितनी बार अपने हाथों से ही अपना गला दबोच देना चाहा था, पर उन कमज़ोर हाथों में इतनी ताक़त कहाँ थी कि वे उसे इस दोज़खी ज़िन्दगी की कैद से छुटकारा दे सकते।

उसके बेटे को सात दिनों से मलेरिया आ रहा था। दिन ढलते उस पर बुखार चढ़ना शुरू होता और बढ़ते-बढ़ते इतना तेज़ हो जाता,

कि वह दो साल का दुधमुँहा बच्चा एक भट्ठी में तपता बेहोश हो जाता। पहले दिन जब वह बुखार में बेहोश हो गया था, तो बेला उसके पैताने बैठी, सिर झुकाये उसके तलवों को अपने आँचल से झार रही थी और उसकी आँखों से आँसू की गरम-गरम बूँदें टप-टप आप ही गिरे जा रही थीं। बेला जानती थी, कि समाज की जिस दोज़खी गली में आज वह रह रही है, वहाँ उसके बेटे की क्या कीमत है। वह जानती थी, कि उसका बेटा मरे या जिये, तड़पे या चीखे, उसकी परवाह यहाँ किसी को नहीं है। यह वह घर है, जहाँ मायें बेटे को वैसे ही बेकार समझती हैं, जैसे कि गृहस्थ-घर की माँयें बेटी को समझती हैं। इसीलिए दवा-दारू के लिए उसने किसी से कुछ न कहा था। वह जानती थी कि ऐसा कुछ कहने पर नाहक उसे फटकारें ही सुननी पड़ेंगी। लाचार, वह अपनी किस्मत को रोये जा रही थी और बेटे के शरीर की गर्मी अपने आँचल के कोने से खींचने की बेकार कोशिश कर रही थी।

तभी दादी अम्मी उसके पास आ धमकीं और आँखें निकाल कर बोलीं, "अरी कमबख्त, तू अभी तक यहीं मर रही है! चम्पा, गुलशन चंदा कबकी जाकर छज्जे पर बैठी हैं और तेरा अभी वक्त ही नहीं हुआ!"

"दादी अम्मी," बेला ने आँसू-भरी आँखें उठाकर कहा, 'बुल-बुल बुखार में बेहोश पड़ा है।"

"ओ हो! बड़ी बेटे की चहेती माँ बनी है तू! चल उठ!" दादी अम्मी ने हाथ चमका कर कहा, "कल अस्पताल से मैं इसके लिए दवा मँगा दूँगी।"

"नहीं, नहीं, दादी अम्मी! यह बिल्कुल बेहोश पड़ा है। आज आप रहम करें! इस मासूम बच्चे पर रहम करें!" बेला ने गिड़गिड़ा कर कहा।

"रहम करने से पेट नहीं भरेगा, कमबख्त! मैं कहती हूँ, उठ जल्दी!" दाँत पीस कर दादी अम्मी ने कहा, "गाहकों का वक्त जा रहा है! उठ, उठ जल्दी!"

"नहीं-नहीं, दादी अम्मी," रोती हुई बेला बोली, "अगर ऐसा ही है, तो मैं आज न खाऊँगी, जब तक बुलबुल अच्छा न हो जायगा, मैं न खाऊँगी। आप माफ़ कर दें, दादी अम्मी ! मैं हाथ जोड़ती हूँ !"

"ओह, तो तेरे साथ क्या घर की लश्कर भी फ़ाका करेगी ? तू उठेगी कि बक़वास करेगी ? बोल, जल्दी बोल, उठती है, कि बुलवाऊँ झम्मन को ?" दादी अम्मी ने आँखें गिरोर कर दरवाज़े की ओर बायाँ हाथ उठा कर कहा।

बेला की आँसुओं में डूबती आँखों के सामने एक भेड़िये की दो खून में रंगी हुई घूरती आँखें चमक उठीं और हवा में जैसे एक जल्लाद का कोड़ा लहरा उठा। वह काँप कर चीख उठी, "नहीं, नहीं, दादी अम्मी, उसे न बुलाइये, उसे न बुलाइये !"

"तो उठ, जल्दी कर !" दादी अम्मी ने उसका हाथ पकड़ कर खींचा।

कलेजे में हजारों बिच्छुओं की डंक की पीड़ा लिये हताश बेला उठ खड़ी हुई। दादी अम्मी ने उसे बरामदे में बैठा, जल्दी-जल्दी उसके बाल सँवारे, कपड़े बदले, नकली सोने के जेवर पहनाये। फिर चेहरे का मेकअप करने लगीं। पाउडर लगा कर भौंहों की काली रेखायें अभी उभार ही रही थीं कि उनकी नज़र गालों पर लुढ़कते आँसुओं पर पड़ गयी। फिर क्या था, आगबबूला हो कर चीख पड़ीं, "काफी दिलजोई कर चुकी मैं तुम्हारी ! अब इन आँसुओं को रोको, नहीं तो इन आँखों को फोड़ कर रख दूँगी !" और उन्होंने एक अँगुली उसकी आँख में कोंच दी।

बेला की आँखों में भरे आँसू जब पलटे, तो जैसे उसका कलेजा जलाते चले गये। वह बुत की तरह जा कर छज्जे पर बैठी ही थी, कि दादी अम्मी चीखीं—"दिखा अब तू अपना मनहूस चेहरा ! यह आ गया झम्मन !"

और बेला की तड़पती नज़रें झम्मन की खूनी आँखों से अभी पूरी तौर पर टकरायीं भी नहीं कि उसके होंठ मशीन की तरह फैल कर मुस्करा उठे।

"बस, बस, मेरी जान! इसी अदा पर तो हम-जैसे लाखों कुर-बान हैं तुझ पर! चल, अब सड़क पर तो ये तीर फेंक!" झम्मन कह कर एक कुटिल मुस्कान मुस्कराया और दादी अम्मी का हाथ पकड़ कुछ पीने का इशारा कर हट गया।

बेला की रात तीन बजे तक कैसे कटी, यह बताना मुश्किल है। तड़पता हृदय, कराहती आत्मा और उबलते हुए आँसुओं को बरबस रोके, पत्थर का टुकड़ा बनी बेला से गाहकों ने वह सब लिया, जो उससे ले सकते थे। और बेला रोम-रोम में एक जलता तूफान लिये भी चुप रही। आख़िर जब आख़िरी गाहक से उसे छुट्टी मिली, तो वह क्रुद्ध शेरनी की तरह आँखों में आग लिये अपने बेटे के कमरे की ओर लपकी। तभी रास्ते में खड़ा हो, नशे में चूर झम्मन ने कहा, "छुट्टी मिल गयी, मेरी जान, तो जरा अब इधर आओ।" कहकर उसने बेला का हाथ पकड़ लिया।

बेला तड़पकर अपना हाथ छुड़ा भागी। झम्मन उसे फिर पकड़ने को लपका कि दादी अम्मी ने उसे रोककर कहा, "जाने दे आज बेचारी को। उसका लड़का बीमार है। चल, तुझे गुलशन बुला रही है।"

"ओह, यह बात है, तो तुमने पहले क्यों न कहा?" झम्मन ने चढ़ी आँखें और भी चढ़ाकर कहा। फिर मुस्करा कर बोला, "अच्छा, जाओ, मेरी जान! कभी याद करोगी तुम भी, कि एक था फरिश्ता, जिसका नाम था झम्मन!" और वह ठहाका लगा कर हँस पड़ा।

काँपते हुए हाथों को मज़बूत कर, दाँतों को बलपूर्वक भींच कर, आँखों को बन्द कर जब बेला ने अत्यधिक आवेश में अपने हाथ बुलबुल

के गले की ओर बढ़ाये, तो बुलबुल ने सहसा ही स्याह पड़ी पलकें खोलकर पुकारा—"अम्माँ, पा...." और वह पपड़ियाये होंठों पर अपनी सूखी ज़बान फेरने लगा।

बेला ने हाथ खींचे, तो उसे लगा कि वह बेहोश हो रही है। वह धड़ाम से पलंग की पाटी पर गिर पड़ी। पर दूसरे ही क्षण वह बेटे की आँख पर मुँह रख बिलख-बिलख कर रो पड़ी। उसका तड़पता हृदय उस वक्त चीख रहा था, 'मेरे बेटे! मेरे बेटे!' और वह बेटे को छाती से चिमटा जोर-जोर से रोती रही।

"अम्माँ, पा...." बुलबुल ने अपने कमजोर हाथों से बेला का मुँह छूकर कहा। उसका बुखार अब उतर गया था। उसका गला सूख रहा था।

बेला का मन जब कुछ हल्का हो गया, तो वह सिसकती हुई उठी। सुराही से पानी ढाल बच्चे को पिलाया। दो-तीन घूँट ही पीकर बुलमुल ने अपना मुँह न जाने कैसा बनाकर खींच लिया। पानी उसे बिल्कुल कड़वा लग रहा था।

आँसुओं को बरबस रोक, बेला ने जन पुनः बुलबुल के पास लेट उसे अपनी छाती से चिपकाया, तो वह ठुनककर रो उठा और 'अम्माँ, छमोछे' की रट लगाने लगा।

बेला इस वक्त कहाँ से उसे समोसे दे? वह उसे सिसकती-सिसकती ही समझाने लगी, "इस वक्त सो जा, बेटे। सुबह मैं समोसे मँगा दूँगी। इस वक्त़ कोई दूकान खुली न होगी।" और उसकी पीठ ठोंकने लगी।

पर बुलबुल ज़िद पर उतर आया। इस वक्त समोसे खाने को उसका जी बहुत हो रहा था। उसे क्या मालूम कि समोसा मिलने पर भी वह उसे खा न पाता, जैसे अभी-अभी चाह कर भी वह पानी न पी सका था। पर बीमार बच्चे का मन ही तो ठहरा। ज्यों-ज्यों उसकी ज़िद

बढ़ती गयी, बेला की रुलाई बढ़ती गयी। और फिर सहसा न जाने कौन-सा भाव बेला के हृदय में भयंकर हो जाग उठा कि उसने बच्चे की पीठ पर एक ज़ोर की धौल जमा दी और पागल की तरह चीख पड़ी, "अरे अभागे, तू मर क्यों नहीं जाता !....तुझे कब मालूम होगा, कि तेरी माँ लाचार है, वह तेरे लिए कुछ नहीं कर सकती, अपने लिए कुछ नहीं कर सकती ! उसके साथ तू भी इस नरक की आग में तिल-तिल जल कर राख हो जायगा। इससे अच्छा हो, कि तू अभी मर जा, अभागे ! तेरी माँ तुझे इस तरह जलते नहीं देख सकती, मेरे बेटे !" और वह ज़ोर-ज़ोर से रोते बेटे को और भी छाती से दबा ज़ोर-ज़ोर से बिलख-बिलख कर रो पड़ी।

रोते-रोते आखिर थक कर सिसकते-सिसकते बुलबुल सो गया। पर बेला सिसकती रही। उसके दिल में जैसे एक आग जल रही थी। उसका सारा शरीर जैसे परिताप से भुन रहा था। उसके रोम-रोम में जैसे एक गहरी बेचैनी भर गयी थी। उसे लग रहा था, जैसे उसका दिमाग़ फट रहा है, हृदय डूब रहा है। वह छटपटाने लगी। उसकी आत्मा जैसे सांघातिक रूप से घायल हुए पंछी की तरह तड़पने लगी।

इन तीन सालों के बीच न जाने कितनी बार बेला की ऐसी ही अवस्था हुई थी। और उस वक्त एक छटपटाहट की-सी ही हालत में उसे हमेशा तीन साल पहले के जीवन की सारी बातें बरबस ही याद आतीं। उसकी व्याकुल आत्मा एकदम वर्त्तमान से छलाँग लगाकर तीन साल पहले के उस घर में पहुँच जाती, जहाँ उसे हर तरह का चैन नसीब था। और एक क्षण को बेला सब-कुछ भूल कर ठण्डी, आराम की साँस लेती। आह, कितना मधुर जीवन था वह ! उस जीवन की मधुर याद मात्र से जैसे बेला एक क्षण को अपना आपा खो बैठती, ठीक उसी तरह, जैसे पिंजड़े में बन्द पंछी अपने आज़ाद दिनों की याद की गहराई में डूब कर अपनी क़ैद को एक क्षण को भूल जाता है-। पर दूसरे ही क्षण फिर जब

उसे अपनी कैद का ज्ञान होता है, तो वह कैद के दुख को और तीव्रता से अनुभव कर, उस जाल, उस शिकारी और उस पिंजड़े की बातें याद कर-कर बेबसी से जैसे चीख़-चीख़ पड़ता है, वैसी ही हालत बेला की भी होती, जब उसे अपने वर्त्तमान का ज्ञान होता, और उस जाल, उन जल्लादों और इस नारकीय कैद की याद आती, जिसमें पड़ी-पड़ी वह तिल-तिल जल रही है। उस समय उसकी आत्मा उस तीन साल पहले वाले घर के बाहर क़दम उठा आज के वर्त्तमान की ओर क़दम-क़दम बढ़ती। एक-एक खाई और एक-एक घाटी में भटकती उसकी व्याकुल आत्मा दुःख, पीड़ा, प्रतारणा, अत्याचार, हिंसा और बलात्कार की ठोकरें खाती, भेड़ियों-से भयंकर जल्लादों से अपने मांस नुचवाती, चीखती, तड़पती, कराहती रहती और बेला की मुँदी आँखों के सामने एक-एक घटना अपना अन्धकारपूर्ण, हिंसक, भयंकर जबड़े खोले आ खड़ी होती। तीन साल पहले—

उस रात बारह बजे के करीब नौ दिन-रात आँखों में काटने के बाद अचानक दालान से उसे अपने पति के उल्लास-भरे ये शब्द सुनायी पड़े— "अब हम आज़ाद हैं, अम्माँ! हमने गुलामी के एक-एक गढ़ को तोड़ दिया, अब्बा! जुल्मों के अड्डों, थानों, चौकियों और कचहरियों को शोलों में खड़े-खड़े जला कर हमेशा के लिए उनका नामोनिशान मिटा दिया! जेल के खूनी फाटकों को तोड़ दिया! अँग्रेजी हुकूमत के एक-एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आज़ाद हैं, अम्माँ! जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गयी! खुश होओ, अब्बा! हँसो,, अम्मा!" और फिर एक हर्षोन्मत्त ठहाका घर के कोने-कोने में गूँज उठा।

उसकी खुशी का ठिकाना न था। वह सही-सलामत आ गये! पर वह ठहाका सुन वह चौंक-सी पड़ी। उनका ऐसा ठहाका तो उसने

इससे पहले कभी भी न सुना था। उसे क्या मालूम कि जब ग़ुलाम इन्सान अपनी ताक़त से ग़ुलामी की जंजीरें तोड़ डालता है, तो वह आज़ाद होकर ऐसा ही ठहाका लगाता है। ग़ुलामी और आज़ादी की बात उसने समझी ही कब थी। उसे तो सिर्फ यही मालूम था कि उसका पति कांग्रेस का ख़तरनाक काम किया करता है। इसी कारण दो बार वह जेल जा चुका है। अब की भी जब वह उससे रुख़सत होकर गया था, तो उसका कलेजा दहल उठा था। पता नहीं, क्या हो जाय। वह दरवाजे पर खड़ी खौफ़ से थर्राती आँखों से घर के सामने से गुजरते जुलूस को देखती रह गयी थी। उस जुलूस के हर नौजवान की आँखों में वही गुस्से और नफ़रत की आग जल रही थी, जिसे वह अभी-अभी अलीम की आँखों में देखकर काँप गयी थी। अलीम ने आगे जाकर एक झण्डा अपने हाथ में ले नारा दिया था। और नारों से ज़मीन और आसमान को लरजाते जुलूस आगे बढ़ गया था। अब्बा, अम्मा और वह उसी घड़ी से दिल में एक खौफ़नाक दहशत लिये उसका इन्तजार कर रहे थे। रोज़-रोज़ थानों और चौकियों के फूँके जाने की खबरें उन्हें मिलती रहीं और उनका कलेजा मुँह को आता गया। पता नहीं, अब क्या हो? और वे दुआ करते, 'खुदाया, उसे सही-सलामत हमारे पास पहुँचा दे!'

और नौ दिनों के बाद आज वह सही-सलामत वापस आ गया। पर उसका वह ठहाका? कहीं पागल तो वह नहीं हो गया?

तभी अम्मा ने आकर कहा, "दुलहिन-दुलहिन, वह आ गया! अलीम आ गया! जल्दी उठ! पानी दे! खाना दे! पता नहीं नौ दिनों तक मेरे लाल को कुछ खाने को मिला या नहीं!"

और अम्मा के पीछे अलीम का वही ठहाका सुनायी दिया! वह चीख-चीख कर कह रहा था, "मुझे भूख नहीं है। मैं कुछ न खाऊँगा। खुशी से मेरा पेट भरा हुआ है! हम आज़ाद हो गये! हमने अंग्रेजी हुकूमत को खत्म कर दिया! हमारा सारा दुख आज खत्म हो गया!

आज हमारी धरती का जर्रा-जर्रा हँस रहा है ! आज हमारे आसमान का तारा-तारा खिलखिला रहा है ! आज हम आज़ाद हो गये ! नाचो, हँसो, खुशी मनाओ ! आज हम आज़ाद हो गये ! अब सब-कुछ हमारा है ! देश का एक दाना भी अब बाहर नहीं जायगा । अब कोई भी भूखा नहीं रहेगा ! हम आज़ाद हो गये !" और फिर उसने वही ठहाका लगाया ।

अब्बा परेशान, अम्मा परेशान, वह परेशान ! यह अलीम को क्या हो गया ! अब्बा ने जबरदस्ती उसे चारपाई पर बैठाया । अम्मा ने अपने हाथ में पानी ले-ले उसका मुँह धुलाया, पैर धुलाये । फिर ढेर-से पानी से उसका सिर धो कर बोली, "अरी दुलहिन, खड़ी-खड़ी मुँह क्या देखती है ? ला जल्दी पंखा ! ओह, कितनी गर्मी है !" फिर अपने आँचल से उसका सिर और मुँह पोछती बोली, "मेरे लाल, जरा लेट के ठण्डा हो ले । ओह, मालूम होता है, नौ दिन-रात में तूने घड़ी भर को भी आराम नहीं किया है ।"

"आराम ! अम्मा, आराम की किसको फिक्र थी ? जब तक हमने गुलामी की आखिरी कड़ी तक न तोड़ ली, हमारे दिमाग़ में और कोई बात ही नहीं आयी ! अब हम आराम करेंगे ! अब हम आज़ादी की मीठी नींद सोयेंगे ! अब हम आज़ादी की खुशहाल ज़िन्दगी बसर करेंगे ! अब हमें सत्रह रुपल्ली तनख्वाह नहीं मिलेगी ! अब हमें इतना रुपया मिलेगा, इतना कि...कि..." और वह फिर ठहाका लगाकर हँस पड़ा!

"लेट जा, बेटा, लेट जा !" अब्बा ने उसे बिस्तर पर लेटाते कहा ।

"अरी दुलहिन, इसके सिर पर हवा कर ! ओह, कितनी उमस हो आयी ! और, देख, ज़रा ठण्डा तेल इसके सिर में लगा देना ! थोड़ी देर में यह सो जायगा । तू छेड़ना न इसे । बहुत थका है न ।" और वह अब्बा को ले दालान में चली गयी ।

वह तेल हथेली में उड़ेल, पति के सिर में मलने लगी। न जाने कैसी आशंका से उसका दिल काँप रहा था। पति का वह ठहाका, उसकी समझ में न आने वाली वे बातें उसे बेहद परेशान कर रही थीं। वह सोच नहीं पा रही थी, कि वह क्यों ऐसे हँसता है, वह क्यों ऐसी बातें करता है? उसे पहले की बातें, जब अलीम जेल से लौट कर आया था, सहसा ही याद आ गयीं। उस वक्त कितने प्रेम से वह उससे मिला था, कितने जोर से उसने उसे छाती से चिपटाया था, कितना गहरा चुम्मा उसने उसके होंठों पर दिया था! और रात-भर कितनी मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी बातें की थीं उसने! पर आज? ओह, आज तो वह उस तरह की कोई बात नहीं कर रहा है। और उसकी आँखों से चुपचाप आँसू की बूँदें ढुलकने लगीं।

काफी देर बाद अलीम अपने आपे में आया। तब उसने अपने सिर पर किन्हीं परिचित, प्यार-भरे हाथों के कोमल-कोमल स्पर्शों का अनुभव किया। क्षण में ही जैसे उसकी सारी थकावट छूमन्तर हो गयी। उसने करवट ली और उसका एक हाथ पकड़ अपनी कनपटी के नीचे दबा लिया। फिर अपने हाथ से उसका मुँह टटोलता बोला, "सक़ीना, सक़ीना, तुम्हारे हाथों में कितनी ठंडक है! आओ, इधर, मेरे पास आओ! तुम कहाँ छिपी थीं अब तक?"

उसका रोम-रोम सहसा कंटकित हो गया। क्षण में ही उसकी सारी शंकायें उड़ गयीं। नहीं, नहीं, उसके पति को कुछ नहीं हुआ है। वह ठीक हैं। उनके ठहाकों और बातों को उसने ग़लत समझा। उसने पति की कनपटी के नीचे से अपना हाथ धीरे से खींच कर कहा, "आप आराम कीजिये। बहुत थके हैं।"

"सकीना, तुम्हारी गोद में सिर रख एक छन को भी मैं आँखें मूद सकूँ, तो मेरी सारी थकावट आराम में बदल जाय! आओ, आओ, सकीना!" सूखे, धीमे स्वर में अलीम ने कहा।

वह धीरे से उठकर दुपट्टा अच्छी तरह सिर पर ओढ़ अलीम की छाती के पास जा बैठी। अलीम उसका हाथ अपने गाल पर रख विह्वल स्वर में बोला, "सकीना, अब हम आज़ाद हो गये! अब हमें कोई दुख न होगा! अब तुम्हें किसी चीज की तकलीफ न होगी!"

"मैंने कभी आपसे कोई शिकायत की?" उसने नरम लहजे में कहा।

"नहीं, सकीना, ऐसी बात नहीं। पर मैं क्या नहीं जानता, कि हमारी ज़िन्दगी कैसे बसर हो रही है। लेकिन अब वे गुलामी के, दुख के दिन कट गये। अब हम आज़ाद हो गये। आज़ाद मुल्क में किसी को कोई तकलीफ़ नहीं होती। इसी आज़ादी के लिए मैं और मेरे-जैसे लाखों, करोड़ों आज सालों से तरह-तरह की तकलीफ़ें, जेल के कष्ट, कोड़ों की चोटें, अत्याचार और जुल्म सहते रहे हैं। तुम्हें नहीं मालूम कि हमारे मुल्क के कितने नौजवान गोली खा कर और फाँसी के तख्तों पर झूल कर इसी आजादी की ख़ाहिश लिये शहीद हो गये। आज वह दिन आ गया। आज हमने अंग्रेजी हुकूमत के सारे जाल एक-एक कर काट डाले हैं। जिस तख्त पर बैठ कर अंग्रेजों का एजेन्ट कलक्टर हम पर हुकूमत करता था, हम पर तरह-तरह के जुल्म तोड़ता था, आज उस तख्त पर हमारा नेता बैठ गया है। आज हुकूमत की बागडोर हमारे हाथ में आ गयी है। इसी से हमारी खुशी का ठिकाना नहीं है। भूख, प्यास, आराम, सब-कुछ भूल गया है, सकीना!" कह कर अलीम ने उसका हाथ अपने होठों पर ला चूम लिया।

वह ठीक-ठीक कुछ भी न समझ सकी। पर जब वह कहते हैं, तो होगा ऐसा ही। जिस बात में उसे अभी-अभी अपने पति के पागल हो जाने की शंका हुई थी, उसी बात से इस क्षण खुशी के मारे उसका रोम-रोम सिहर उठा। वह बोली, "मैं मूरख क्या जानूँ यह-सब। आप खुश हैं, तो मैं भी खुश ही हूँ।" कह कर उसने सिर उठा आसमान की ओर देखा।

बरामदे की चारपाई से आसमान का जो टुकड़ा दिखायी दे रहा था, वह चाँद की उज्ज्वल चाँदनी में नीलम की तरह चमक रहा था और अनगिनत तारे उस पर गह-गह कर झिलमिला रहे थे। आखिरी बरसात की एक रात की वे आखिरी घड़ियाँ थीं। हवा में एक खुशगवार ठण्डक-सी बसी हुई थी, जिसके स्पर्श से सकीना के दिल पर एक अजीब-सा नशा तारी हो गया। आँगन में पड़ा हुआ चाँदनी का उज्ज्वल टुकड़ा उसकी आँखों में क्षण-क्षण अधिक स्निग्ध होता मुस्कराये जा रहा था।

तभी पति का गरम हाथ उसके बाज़ू पर आ पड़ा और उसने जैसे बेहोश-सी हो अपना सिर पति की छाती पर रख दिया।

उनकी नौ दिनों की व्याकुल जुदाई के बाद मिली वह आज़ादी की मीठी बेहोशी की नींद पता नहीं कब खुलती कि सहसा सकीना को लगा, जैसे सैकड़ों गोलियों की धायँ-धायँ की चिग्घाड़ती आवाज़ उसके कानों में गूँज उठी। वह चौंककर ऐसे उठ बैठी, जैसे उसके पास ही कोई बम का गोला फट पड़ा हो। उसने हैरत और बदहवासी की ही हालत में सुना, बाहर से गोलियों की लगातार आवाज़ें आ रही थीं और साथ ही मोटरों की भयंकर घरघराहट चारों ओर गूँज रही थी। उसने घबराकर पति को जगाया।

अलीम ने आँखें खोल पूछा, "क्यों, सुबह हो गयी क्या?"

सहमी हुई सकीना बोली, "हाँ, ये गोलियाँ कहाँ छूट रही हैं, और यह मोटरों की घरघराहटों की आवाज़ें कहाँ से आ रही हैं? जमींदार के पास तो दो ही बन्दूकें हैं। और ये मोटरें?"

अब जाकर मदहोश अलीम को धायँ-धायँ की आवाज़ सुनायी पड़ी। वह चट चारपाई से उठ, दरवाज़े की ओर लपका। सकीना भी वहाँ बैठी न रह सकी।

खुले दरवाजे के चौखट पर पैर रखते ही अलीम ने बाहर जो-कुछ देखा, उससे सहसा उसके दिल और दिमाग़ पर छाये आज़ादी के सपने टूट गये। वह ऐसे थथमकर खड़ा हो गया, जैसे सामने के दृश्य पर उसे विश्वास ही न हो रहा हो।

अलीम की बगल से काँपती सकीना ने झाँककर बाहर देखा, तो उसकी आँखें फैल गयीं और दिल ऐसे धड़क उठा, जैसे वह बेहोश हो रही हो। उसने चीखकर पति का हाथ पकड़कर कहा, "अम्मा, अब्बा बेर के तने से क्यों बँधे हुए हैं? ये काले-गोरे सिपाही खड़े बन्दूकें क्यों चला रहे हैं?"

तभी दारोगा की बगल में खड़े जमींदार ने अलीम की ओर इशारा कर कहा, "यही अलीम है, इधर के बलवाइयों का सरगना!"

अलीम सक्ते में आ गया था। यह सब क्या अचानक हो गया, उसकी समझ में न आ रहा था। तभी दारोगा ने अपनी पिस्तौल ताने उसका हाथ पकड़ उसे बाहर खींच लिया।

चौंड़-चौंड़ कर बँधे हुए अम्माँ और अब्बा छटपटा-छटपटा कर चीख पड़े। सकीना आपा खो दारोगा पर झपटी कि एक गोरे फौजी ने उसका हाथ पकड़ अपनी ओर खींच लिया। वह पागल हो अपना हाथ छुड़ाने लगी। उसकी आँखों से लुत्तियाँ छिटकने लगीं।

अलीम से सकीना की वह हालत न देखी गयी। वह जोर लगाकर झटके से अपना हाथ छुड़ा, उस गोरे की गर्दन की ओर हाथ बढ़ाये लपककर दाँत पीसकर चीखा—"छोड़ दे इसे, शैतान! नहीं तो....नहीं तो...."

तभी दारोगा की पिस्तौल में लपटें जल उठीं। धायँ-धायँ की कई आवाजें एक साथ हुईं और अलीम लहूलोहान हो, आह-आह करता गिर पड़ा।

सकीना अपनी गिरफ्त न जाने किस ताकत से छुड़ा बेहोश होती-सी, चीखती हुई अलीम के ऊपर भहराकर गिर पड़ी। अम्मा और अब्बा ने किचकिचाकर आँखें मूँद अपना सिर बेर के तने पर पटक दिया।

दारोगा की क्रूर आवाज सकीना के सुन्न होते कानों से टकरायी, "तलाशी लेकर, पेट्रोल छिड़ककर गोली से इस घर में आग लगा दो!" और सकीना की आँखों के सामने अन्धकार छा गया।

सकीना की जब आँखें खुलीं, तो उसका सारा शरीर दर्द के मारे ऐंठ रहा था। ठुड्डी, होंठों, गालों, छातियों और कमर में जख्मों का दर्द हो रहा था। उसने हाथ से गालों को छुआ, तो मालूम हुआ कि कई जगह वे कट गये हैं। उँगलियों का स्पर्श पा कर जख्म छनछना उठे। उसने उँगलियों को हटा कर देखा, तो खून। फिर उसे लगा, कि उसके सारे कपड़े भींगे हुए हैं। उसकी समझ में न आया कि ऐसा क्यों हुआ है। वह इधर-उधर आँखें घुमाकर देखने लगी।

ताक पर एक लालटेन जल रही थी और कमरे में कितनी ही साँसें सुनायी पड़ीं। उसने और ध्यान से देखा, तो मालूम हुआ कि उसके आस-पास कई और औरतें पड़ी थीं। उनके कपड़े पर काले-काले धब्बे थे। तभी उसे लगा कि शायद वे धब्बे उसके कपड़ों पर भी पड़े हों। उसने अपना दुपट्टा उठाना चाहा। पर दुपट्टा नहीं था। उसने तब अपनी कमीज का दामन उठाया। हाँ, उस पर भी धब्बे पड़े थे। उसने उसे बिल्कुल आँखों के पास ला कर देखा, तो मालूम हुआ कि वे खून के धब्बे थे। ये खून के धब्बे कैसे पड़े? उसने याद करने की कोशिश की, और जो याद आया, उससे उसका कलेजा दहल गया। वह उठ कर गुस्से में काँपती हुई बैठ गयी सामने जो देखा, तो छै गोरे नींद में बेहोश पड़े हुए थे। उनके आस-पास खाली बोतलें और सिग्रेट और दियासला-इयों के बक्स पड़े हुए थे। और सहसा उसे लगा कि एक तेज दुर्गन्ध

से उसका जी मिचला उठा है। उसने नफ़रत और गुस्से से उन दोज़खी कुत्तों की ओर देखा। काश, इस वक्त उसके पास कोई हथियार होगा, या उसके हाथों में ताक़त ही होती कि उनमें से वह एक-एक की गर्दन दबोच सकती! तभी सहसा उसे अपने पति की याद आयी। उसे लगा कि उसके दिल से एक चीख निकली, पर उसने बरबस उसे होंठों पर आते-आते दबा दिया। उसकी आँखें भर आयीं। वह सँभल कर उठी।

शरीर का पोर-पोर दर्द के मारे फट रहा था। फिर भी वह धीरे-धीरे बिना कोई आवाज किये कमरे से बाहर हो गयी। अब उसे मालूम हुआ कि वह थाने में है। आँगन में इधर-उधर एक-दूसरे के सहारे कई जगह बन्दूकें खड़ी रखी थीं। उसके जी में आया कि वह लपक कर उनमें से एक को उठा ले और उन गोरों को....पर उसे बन्दूक चलाना कहाँ मालूम है? वह दाँतों से होंठ काट कर रह गयी। फिर धीरे-धीरे ही चल कर आँगन में खड़े नीम के बड़े पेड़ के नीचे आ खड़ी हुई। सामने फाटक है। उसके बाहर शायद गैस जल रहा है। फाटक खुला है, या बन्द? वह धीरे-धीरे फाटक की ओर बढ़ी। देखा, तो एक बड़ा ताला लटक रहा था। अब? वह पीछे की ओर मुड़ी कि बाहर जाने को शायद कोई रास्ता मिल जाय।

वह फिर आँगन में इधर-उधर देख बायीं ओर के ओसारे पर चढ़ गयी। तभी उसकी बगल में एक दरवाज़ा खटाक से खुल गया और उसके मुँह पर टार्च की तेज़ रोशनी आ पड़ी। वह काँप कर एक खम्भे की ओट में जा खड़ी हुई। उसकी साँस फूलने लगी। अब? कुएँ से निकल कर कहीं खाई में तो नहीं जा गिरी।

तभी उसे धीमी-धीमी आवाज में सुनायी पड़ा—"मैं तुम्हें पहचान गया। उन ज़ालिमों के पंजों से छूटकर ज़िन्दा निकल आयीं, यह तुम्हारी खुशकिस्मती है। वरना कल दिन में ही इनके ज़ुल्मों की वजह से दो

कच्ची लड़कियाँ खून उगल कर मर गयी थीं। आओ, मैं तुम्हें बाहर कर दूँ।"

यह क्या सुन रही थी सकीना ? उसे विश्वास न हुआ कि उस भेड़ियों की माँद में यह फरिश्ता कहाँ से आ टपका ! वह झिझकी। कुछ बोल न सकी।

"आओ, मेरे पीछे-पीछे आओ। घबराओ नहीं। तुम्हें शाम को ही मैंने देखा था, जब तुम चीख-चिल्ला रही थीं। तुम्हें किसी बात का होश नहीं था। उसी वक्त मुझे तुम पर बड़ा तरस आया था मैं इस वक्त तुम्हें किसी तरह बचाने की ही सोच रहा था। उन गोरों को तो तुम अब जान ही गयी होंगी। इनकी हुकूमत है। इनसे हमें डरना ही पड़ता है। तुम आओ, घबराओ नहीं। इस गलियारे से बाहर जाने का रास्ता है। यह थाना नहीं है। नहीं तो इस वक्त बड़े दरोग़ा के हुक्म के बिना तुम्हें कोई ताक़त बाहर न कर पाती। थाना जल जाने के बाद इस घर को ही थाना बना दिया गया है। आओ, देर न करो। वर्ना कोई जग गया, तो...."

वह आगे-आगे बढ़ा। उसके पीछे-पीछे सकीना चली। बाहर आ, थोड़ी दूर चल कर, एक घर के दरवाज़े का ताला खोलता वह बोला, "तुममें एक क़दम भी चलने की ताब नहीं है। आओ, यहाँ जरा आराम कर लो।"

"नहीं, मैं जाऊँगी !" सकीना ठिठक कर बोली, "मेरी अम्मा, अब्बा, वह....ओह, आप नहीं जानते।"

"मैंने सब मालूम कर लिया है। तुम एक छन यहाँ आराम कर लो, तो मैं तुम्हें सब बता दूँगा। आओ, डरो नहीं। सब इन्सान एक-से नहीं होते। मुझ पर तुम विश्वास करो।" उसने बड़ी ही सहानुभूति और स्नेह से कहा।

उसकी बातें और लहजा ऐसा था कि सकीना उस पर अविश्वास न कर सकी। वह सचमुच एक कदम भी चलने की ताक़त अपने में न पा रही थी। वह तो किसी तरह ज़ोर लगा कर वहाँ तक आ गयी थी। उसका गला सूख रहा था। उसने कहा, 'ज़रा पानी हो, तो दे दीजिये।"

"तुम अन्दर तो आओ। यहाँ सब-कुछ है। पानी भी और खाना भी। तुम भूखी भी तो होंगी।" उसने अन्दर लालटेन जलाते कहा, "मैं इसी घर में रहता हूँ आजकल। थाने के क्वार्टर जला दिये गये हैं न।"

सकीना अन्दर आयी, तो वह बोला, "तुम आराम से चारपाई पर बैठ जाओ। मैं पानी और खाना अन्दर से लाता हूँ।"

"नहीं, नहीं," सकीना बैठती बोली, "आप ज़रा पानी ही...."

पर उसकी बात सुने बिना ही वह अन्दर चला गया। बेहाल सकीना ने हाथ पर सिर रख एक ठण्डी साँस ली।

वह एक हाथ में पानी और दूसरे में खाना ला बोला, "जरा अच्छी तरह हाथ-मुँह धो लो। तबीयत हल्की हो जायगी। फिर जो रुचे, खा लो।" कहकर उसने जों सकीना का कपड़ा देखा, तो दुख-भरे स्वर में बोला, "च-च, शैतानों ने तुम्हारे कपड़ों को नोच-खसोट कर खून-खून कर दिया है। इन कपड़ों में तुम्हें कोई देख ले, तो....नहीं, नहीं...." फिर व्यस्त हो उसने पानी और खाना एक ओर रख, ट्रङ्क से एक धोती और बनियाइन निकालकर सकीना को देते कहा, "उधर जाकर बदल लो। मुझसे तुम्हारे ये कपड़े नहीं देखे जाते।" कह कर उसने कपड़े सकीना की गोद में गिरा दिये और मुँह फेर एक ओर खड़ा हो गया।

सकीना अपना मुँह दोनों हाथों से ढँक रो पड़ी।

"नहीं, नहीं," उसने मुँह फेरे ही आर्द्र कंठ से कहा, "रोने से अब क्या होगा? आदमी को दुख की बातें भुलाने की कोशिश करनी

चाहिए। खुदा को यही मंजूर था।" कह कर वह ऐसे चुप हो गया, जैसे रुलाई आ जाने के कारण कंठ से कोई शब्द ही न निकल रहा हो।

सकीना के कराहते दिल पर उसकी बातों ने मरहम का काम किया। वह धीरे-धीरे अपने को सँभाल कर सिसकती हुई उठी। उस रहम-दिल, शरीफ़ आदमी की बात टालना उसके लिए अब असम्भव लग रहा था। वह बधने का पानी और कपड़े ले अन्दर चली गयी।

कपड़े बदल, हाथ-मुँह धोकर, हल्की हो जब सकीना कमरे में लौटी, तो वह आदमी दस्तरखान पर खाना चुने बैठा था। वह बोला, "अब आओ, थोड़ा खा लो। ऐसे वक्त पर भी आदमी को जी कड़ा कर कुछ खाना ही चाहिए। मैंने भी अभी कुछ नहीं खाया है। शाम को खाना बना कर थाने पर गया था। वहाँ तुम्हें देख कर न जाने कैसा मन हो गया। तुम्हारे बारे में ही सोचते मैं वहाँ एक कमरे में लेट गया। आओ, अब थोड़ा खा लो। यों खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं।"

मीठी, स्नेह-भरी, सहानुभूतिपूर्ण बातों में जादू का असर होता है। एक दुखे दिल के लिए तो जैसे ऐसी बातें अमृत की बूँदों की तरह होती है। सकीना से इनकार करते न बन पड़ा। जी कड़ा कर वह दस्तरखान पर बैठ गयी। पर नेवाला मुँह में डालते ही फिर रुलाई ऐसे फूट पड़ी कि वह अपने को सँभालने में असमर्थ हो कर उठ गयी।"

"अच्छा, लो पानी ही पी लो," उसने गिलास में पानी भर उसकी ओर बढ़ाते कहा।

सकीना एक साँस में पानी ख़तम कर बोली, "एक गिलास और दीजिये।"

वह उठ कर बोला, "अब ज़रा लेट रहो। थोड़ा आराम करके पानी पीना, नहीं तो कलेजे से लग जायगा।"

थोड़ा आराम महसूस कर सकीना लेटी, तो मिनटों में ही उसे गहरी नींद ने आ दबोचा। बेहद परेशान सकीना नींद में होशो-हवास खो बैठी।

दूसरे दिन काफ़ी दिन चढ़े सकीना ने अपने माथे पर किसी ठण्डी चीज का स्पर्श अनुभव कर भारी आँखें जोर लगा कर खोलीं, तो सुना, "ओह, तुम्हारा माथा तो आग की तरह जल रहा है।"

सकीना ने उठने की कोशिश की, पर उठ न सकी। पुनः लेट कर जलती जबान सूखे होंठों पर फेर कर बोली, "जरा पानी दीजिये।"

पानी पी कर वह बोली, "मुझे मेरे घर पहुँचा दीजिये।"

"हाँ, हाँ, जरा बुख़ार उतर जाय, तो मैं ज़रूर पहुँचा दूँगा। तुम घबराओ नहीं। इसे भी अपना ही घर समझो। मैं तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने दूँगा। मैं ज़रा दवा लेने जा रहा हूँ।" उसने उसके मुँह पर झुक कर कहा।

सकीना कुछ कहना चाहती थी, पर उसके कण्ठ से बोल न फूटा। उसे लगा कि वह बेहोश हो रही है।

सात दिन तक सकीना बुखार में बुत, ज्यों की त्यों पड़ी रही। उसे नहीं मालूम उसके कपड़े कौन बदलता रहा, उसकी कौन सेवा करता रहा, उसकी अनजानी ज़रूरतों को कौन पूरा करता रहा। जब बुख़ार कुछ हल्का होता, तो उसकी आँखें क्षण-भर को खुल जातीं। तब वह उस आदमी को हमेशा आँखों के सामने उदास बैठा देखती। वह उससे कुछ कहना चाहती, पर उसकी जबान न हिलती।

आठवें दिन सुबह ही सकीना की आँखें जब खुलीं, तो उसने एक डाक्टर और उस आदमी को अपने पास खड़ा पाया। डाक्टर ने उसे देख कर कहा, "अब बुखार धीरे-धीरे उतर जायगा। तुम अच्छी हो जाओगी।" फिर उस आदमी की ओर मुड़ कर उसने कहा, "अब पहले से भी ज्यादा तिमारदारी और एहतियात की जरूरत होगी। आप एक मिनट के लिए भी ग़ाफ़िल न हों। मैं आज एक टानिक भी दूँगा।" कह कर डाक्टर चला गया।

सकीना ने देखा, उस आदमी के होंठों पर आज एक मुस्कान थिरक रही थी। उस अच्छे आदमी के प्रति कृतज्ञता से सकीना की आँखें भर आयीं। ओह, उसने उसके लिए क्या नहीं किया, जो एक माँ-बाप ऐसी हालत में कर सकते हैं। और सकीना की आँखें एक विवश लज्जा से झुक गयीं।

पूरे पन्द्रह दिनों के बाद सकीना में इतनी ताक़त आयी, कि वह अपने से उठने-बैठने लगी। एक दिन उसका हृदय असीम कृतज्ञता के आवेश में फूट पड़ा। उसने सिर झुका कर सामने बैठे उस आदमी से कहा, "मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं। पर आपने मेरे लिए वह किया है, जो शायद अपने सगे भी न कर सकें। अब मैं अपने घर जाने-लायक हो गयी। पर इसके पहले कि आप मुझे मेरे घर पहुँचा दें, मैं अपने मेहरबान के बारे में कुछ जान लेना चाहती हूँ।" कह कर सकीना ने अपनी भरी आँखें उठायीं।

उस आदमी की आँखें भी नम हो गयीं। उसने भरे गले में असीम अपनापन भर कहा, "जिस दिन शाम को पहले-पहल मैंने तुम्हें उस हालत में देखा था, मुझे न जाने क्यों लगा था कि तुम मेरी कोई अपनी सगी हो। तुम्हारे चेहरे से मेरी अम्मा का चेहरा बिल्कुल मिलता मालूम हुआ। उसी वक्त जो दौड़ तुम्हारे गाँव पर गयी थी, उसके एक पुलीस साथी से मैंने तुम्हारे बारे में पूछा। उससे ज्यादा कुछ तो मालूम न हो सका, पर जो-कुछ मालूम हुआ, वह भी मेरा दिल दहला देने के लिए काफी था। मुझे तुमसे दिली हमदर्दी हो गयी। फिर जब तुम बीमार थीं, तो एक दिन तुम्हें बेहोश छोड़ कर मैं तुम्हारे गाँव गया, कि तुम्हारे घर से किसी को बुला लाऊँ। पर वहाँ जा कर जो मालूम हुआ, उससे...." अचानक रुक कर उसने अपना उदास चेहरा झुका लिया।

सकीना आशंकित हो तड़प कर बोली, "क्या मालूम हुआ वहाँ ? मेरे घर के...."

"मालूम हुआ कि तुम मेरी सगी मौसी की इकलौती बेटी हो। और तभी मुझे ख्याल आया, कि तुम्हारी सूरत मेरी माँ से क्यों इतनी मिलती है। मैं मऊ का रहने वाला हूँ। तुम्हारी अम्मा तुम्हें बचपन में ही छोड़ कर मर गयी थीं। तुम्हें शायद अपने ननिहाल जाने का कभी मौक़ा न मिला हो। मेरा ननिहाल और घर दोनों मऊ में ही हैं। मेरा नाम मंजूर है। खालू चा को भी मरे पाँच-छै साल हो गये न ?" कह कर उसने सकीना की ओर देखा।

"हाँ।....ओह, मेरी क़िस्मत कि आप मिल गये। वर्ना मेरे मरने में कसर ही क्या थी। खून-खून का रिश्ता छिपता नहीं। मैं मन-ही-मन सोच रही थी, कि आप जरूर कोई मेरे अपने सगे हैं। खुदा को लाख-लाख शुक्र! खुदा दुश्मनों को भी ऐसी खुशकिस्मती दे! आपका मैं किस दिल से शुक्रिया अदा करूँ! खुदा आपकी उम्र दराज़ करे, आपको हर काम में कामयाबी दे, तरक्की दे, आपकी हर मुराद पूरी हो!.... अच्छा, अब आप मुझे मेरे घर पहुँचा दें, अम्मा और अब्बा आप से मिल कर बहुत खुश होंगे। और वह....वह....ओह, आपने यह तो बतलाया ही नहीं कि मेरे सरताज कैसे हैं। उन्हें उस दिन गोली लगी थी।" कह कर अत्यन्त उत्कण्ठा से सकीना ने मंजूर की ओर देखा।

मंजूर न जाने आँखों में क्या छिपाता हुआ वहाँ से उठ कर अन्दर चला गया।

सकीना का माथा ठनक गया। वह कुशंका में तड़पती दौड़ कर मंज़ूर के पास खड़ी हो सहमे स्वर में बोली, "बताइये, बताइये, मंजूर भैया, वह खैरियत से तो हैं ?"

मंजूर कुछ बोला नहीं। उसने केवल अपनी आँसू-भरी आँखें सकीना की ओर उठा दीं।

सकीना की आँखें फैलीं, पुतलियाँ एक वहशत में काँपीं और वह दोनों हाथों से मुँह ढँक वहीं-की-वहीं बैठ बिलख-बिलख कर रो पड़ी। फिर चीख कर बोली, 'मुझे जल्दी पहुँचा दीजिये। ओह, अम्मा, अब्बा।''

''तुम्हारा अब कोई सहारा न रहा, सकीना,'' मंज़ूर ने सकीना के सिर पर हाथ रख कर भरे गले से कहा, ''अलीम भाई शहीद हो गये। घर जल कर राख हो गया। अम्मा चल बसीं। और अब्बा पागल हो हमेशा के लिए बेकार हो गये।''

सकीना मंज़ूर की गोद में सिर पटक ज़ार-ज़ार रो पड़ी। मंज़ूर उसके सिर पर हाथ फेरता अपने दिलो-दिमाग पर क़ाबू रख उसे सान्त्वना देता रहा, ''धीरज धरो, सकीना, धीरज धरो! बिपदा सहने से कटती है। किस्मत में जो लिखा होता है, वह भोगना ही पड़ता है। तुम अभी-अभी बीमारी से उठी हो, धीरज न रखा, तो फिर बीमार पड़ जाओगी। मैं तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने दूँगा। वक्त पड़ने पर अपने ही तो काम आते हैं। मुझ पर भरोसा रखो, सकीना। अलीम भाई की शहादत और तुम्हारे ऊपर उन गोरों कुत्तों का ज़ुल्म देख कर मेरी आँखें खुल गयी हैं। अब मैं यह नौकरी छोड़ दूँगा। मैं भी अब उसी राह पर चलूँगा, जिस पर अलीम भाई चले थे। वही सही रास्ता है। उस पर चले बिना यह ज़ुल्म खतम नहीं किये जा सकते। आज से मेरी ज़िन्दगी का मक़सद हुकूमत से तुम पर तोड़े गये ज़ुल्मों का बदला लेना होगा, जो इस हुकूमत को खत्म किये बिना मुमकिन नहीं। तुम हिम्मत से काम लो। तुम उस शहीद अलीम भाई की बीवी हो, जिसने मुल्क पर अपनी जान न्योछावर कर दी। तुम्हें उन पर फख्र होना चाहिए।.... तुम अलीम भाई की पाक हस्ती की हमारे पास हमेशा एक पाक अमानत रहोगी। मैं तुम्हें पूजा के फूल की तरह हमेशा अपने माथे से लगाये रहूँगा, तुम्हारे क़ाबिल बनने की हर कोशिश

करूँगा। मेरे चाचा भी कांग्रेसी हैं। मैं भी यह नौकरी नहीं करना चाहता था, पर वालिद ने मजबूर कर दिया। अभी तीन ही महीने हुए मुझे नौकरी करते हुए, लेकिन मैंने समझ लिया है, कि इस नौकरी की छूत से भी रूह गन्दी हो जाती है। यहाँ ईमानदार आदमी की गुज़र नहीं हो सकती !...."

सकीना उसकी गोद में बहुत देर तक रोती रही, सिसकती रही, बिलखती रही।

बेचारी सकीना अब क्या करती, कहाँ जाती ? यह उसका सौभाग्य ही तो था कि ऐसी बिपदा में उसे एक ऐसा हमदर्द, पवित्र आत्मा, कर्त्तव्य-परायण, नज़दीकी सम्बन्धी मिल गया। वर्ना सकीना की क्या हालत होती, कौन जाने।

सकीना ने बहुत जिद की कि मंजूर उसके लिए अपनी नौकरी न छोड़े, पर मंजूर ने खूब सोच-समझ लिया था। एक बार जिस आलोक में उसकी सोयी आत्मा जाग उठी थी, उससे एक क्षण को भी आँखें मींचना उसे सह्य न था। उसने दो हफ्ते के अन्दर ही अपना इस्तीफा मंजूर करा लिया। फिर खुश होकर सकीना से बोला, "बोलो, अब कहाँ चलें ?"

"खाला माँ के पास चलिए। और कहाँ ?" उदास सकीना ने कहा।

"नहीं, मैं वहाँ चलना नहीं चाहता। नौकरी छोड़ने की बात सुन कर वालिद बहुत नाराज होंगे। फिर तुम्हारे बारे में कुछ मालूम हो गया, तो जाने क्या आफ़त आ पड़े। यह हिन्दुस्तान है, सकीना। यहाँ के लोग अपनी रूह पर हजारों धब्बे रख कर भी किसी का एक नुमायाँ धब्बा देखना बरदाश्त नहीं कर सकते !" फिर कुछ सोचकर कहा, "मेरे पास इस वक्त सौ रुपये के क़रीब हैं। मैं सोचता हूँ कि हम

कानपुर चले। वहाँ कोई नौकरी आसानी से मिल जायगी। लड़ाई का जमाना है। मिलों को आदमियों की सख्त ज़रूरत है। फिर वहाँ जम जायँगे, तो अम्मा-अब्बा को खबर कर देंगे।"

सकीना को क्या कहना था? ले-दे के अब मंजूर ही तो एक सहारा था। वह चाहे, जहाँ ले जाय; चाहे जैसे रखे। नाव क्या कभी मल्लाह से कहती है, कि 'मुझे इस दिशा में ले चलो'।

आखिर वे कानपुर पहुँच गये। कानपुर में मंजूर की जान-पहचान के, अपने कस्बे के कई आदमी थे, पर मंजूर उनमें से किसी के भी पास सकीना को ले कर जाना न चाहता था। तीसरे दर्जे के टिकट-घर के पास बैठा मंजूर सोच में पड़ गया कि अब वह क्या करे। वह इसके पहले भी कई बार अपने पिता के साथ सूत वगैरह के सिलसिले में कानपुर आ चुका था। वह यहाँ की कई सड़कों, कई मुहल्लों से परिचित था। उसके पिता मूलगंज के एक सस्ते होटल में ठहरा करते थे, जहाँ रात को सोने के लिए कुछ भी खर्च न देना पड़ता था। हाँ, खाना दोनों जून ज़रूर उसी के यहाँ खाना पड़ता था। मगर सकीना को ले कर तो वह उस होटल में ठहर नहीं सकता। न जाने कैसे-कैसे लोग वहाँ आते-जाते रहते हैं। फिर सकीना के सोने-बैठने को वहाँ जगह भी कहाँ मिलेगी। सहसा उसे ख्याल आया, वह क्यों न तब तक किसी ख़ानकाह में जा ठहरे। बड़ा शहर है। यहाँ जरूर कोई-न-कोई ख़ानकाह होगी। यह सोच कर वह पास ही बैठे एक बुजुर्ग के पास जा कर बोला, "बड़े मियाँ, यहाँ ख़ानकाह कहाँ हैं?"

बड़े मियाँ एक टक सड़क की ओर देख रहे थे। उसकी बात सुन कर वह चौंक उठे। पूछा—"क्या कहा, बेटा, तूने?"

"मैं पूछ रहा था कि यहाँ ख़ानकाह कहाँ है?" मंजूर ने कहा।

"मुझे नहीं मालूम, बेटा। मैं यहाँ नया ही आया हूँ।" उन्होंने कहकर फिर आँखें सड़क की ओर मोड़ लीं।

"बड़े मियाँ, तो आपका कहाँ ठहरने का इरादा है?" मंजूर ने पूछा, जैसे उसे उनके जवाब से कदाचित कुछ सहारा मिल जाय।

"मेरा बेटा यहाँ बिजली घर में काम करता है, बेटा। उसने टीसन पर आने को लिखा था। अभी तक नहीं आया। उसी का इन्तजार कर रहा हूँ।....तुम कहाँ के रहने वाले हो?" उन्होंने हमदर्दी से पूछा।

"मैं मऊ का रहने वाला हूँ," मंजूर ने कहा।

"ओह, तब तो पड़ोस के ही रहने वाले हो, बेटा। मैं औड़िहार का रहनेवाला हूँ। कैसे आये हो कानपुर?" उन्होंने अपनापा जताते कहा।

"नौकरी की तलाश में", मंजूर ने सिर झुकाकर परेशान-सा कहा।

"परेशान मालूम होते हो। अकेले हो या...."

"जी मेरी एक बहन भी साथ है," कहकर उसने मुड़कर सकीना की ओर देखा, तो वह वहाँ न थी। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। तभी उसकी नजर नाली के पास बैठी कै करती सकीना पर पड़ गयी। वह व्यस्त हो बोला, 'देखिये, उसकी तबीयत खराब हो गयी।" कहकर वह बधने का पानी ले सकीना के पास पहुँचा।

सकीना ने कई बार कुल्ली कर कहा, "सर चकरा रहा है, भाई जान! जी भी मिचला रहा है।" फिर मंजूर के हाथ का सहारा ले वह उठी और सामान के पास छोटे ट्रंक पर सिर रख लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगी।

"अरे बेटा!" सुन कर मंजूर ने आँखें घुमायीं, तो वह बुजुर्ग उसे बुला रहे थे।

वह पास गया, तो वह बोले, "घबरा मत, बेटा। उस छोकरी को गाड़ी लग गयी है। थोड़ी देर में थिरा जायगी। देख, मेरा बेटा आ गया।" फिर वह अपने बेटे की ओर मुड़कर बोले, "बेटा शकूर, यह मऊ का रहने वाला है। साथ में इसकी बहन भी है। उसकी तबीयत खराब है। अभी यह खानकाह का पता मुझसे पूछ रहा था। भला तुम्हारे यहाँ इनके एक-दो रोज ठहरने की जगह मिल जायगी? मुसीबत का मारा है बेचारा। नौकरी की तलाश में आया है।"

"हाँ, हाँ," कुछ सोचकर उनके बेटे ने कहा, "किसी तरह गुजर हो ही जायगी।" फिर मंजूर की ओर देखकर कहा, "चलिये, आप भी चलिये। तकलीफ तो होगी, मगर इस कानपुर में किसी मजदूर को आराम ही कहाँ है? आप कुछ पढ़े-लिखे मालूम होते हैं।"

"नहीं। बिल्कुल मामूली। मैं एक गरीब जुलाहा हूँ।" मंजूर ने कहा।

"तब आपको कोई तकलीफ न होगी हमारे यहाँ। गरीब मजदूर के यहाँ गरीब मजदूर को कोई तकलीफ नहीं होती। चलिये, समान उठाइये।"

चमनगंज में अपने कमरे के बरामदे में अपने अब्बा और मंजूर को बैठाकर शकूर ने सकीना से कहा, "आओ, बहन, तुम कमरे में आओ। मैं तुम्हें तुम्हारी भाभी से मिला दूँ।"

अन्दर जा शकूर ने अपनी बीवी, मदीना, से कहा, "तुम इससे खुद जान-पहचान कर लो। यह मऊ की रहनेवाली है। साथ में इसका भाई भी है। नौकरी की खोज में आया है। हाँ, अब्बा भी आ गये हैं। जरा पहले इनके लिए चाय बना दो। अरे, लौंडा नहीं दिखायी देता है।"

"कहीं खेल रहा होगा," उसकी बीवी ने कहा।

तभी सकीना ओ-ओ करने लगी। शकूर व्यस्त हो बोला, "इसकी तबीयत खराब है। जरा इसे सँभालो। अब मैं काम पर जा रहा हूँ।" कहकर वह बाहर हो गया।

मदीना ने सकीना के बाजुओं को पकड़ कर उसे चूल्हे के पास बैठा दिया। यहाँ फर्श से सटकर दीवार में एक बड़ा-सा छेद था, जो नाबदान का काम देता था। सकीना बहुत देर तक ओ-ओ करती रही। उसकी आँखों और नाक से पानी बहने लगा। कनपटियों की रगें तन कर लाल हो गयीं। मदीना उसकी पीठ सहलाने लगी। कै करने के बाद कई बार कुल्ली कर आ-ऊ करती बेहाल सकीना उठी, तो उसे ज़ोर का चक्कर आ गया। वह गिरने ही वाली थी कि मदीना ने उसे सँभाल लिया और सहारे-सहारे उसे कमरे के दूसरी ओर, जहाँ एक चिथड़ी दरी बिछी थी, ले जाकर लिटा दिया।

मदीना ने उसे गौर से देखकर कहा, "बहन, जरा आराम कर ले। मैं तब तक चाय बना दूँ। मैं भी पहली दफे जब गाड़ी से आयी थी, तो कई दिन तक मेरी तबीयत खराब रही।"

सकीना ने आँखें मूँदीं, तो उसे नींद आ गयी।

चाय पीने के लिए जब उसे मदीना ने जगाया, तो आँखें मूँदे ही उसने कह दिया, "मेरा जी नहीं करता।"

इस पर जबरदस्ती मदीना ने उसे उठाते कहा, "नहीं, यह पी लो, सफर की थकान मिट जायगी।" और उसे बैठा कर उसके होठों से कटोरा लगाया ही था, कि सकीना फिर ओ-ओ करती बोली, "कैसी बदबू आती है चाय से! मुँह से पानी छूट रहा है।" कहकर उसने उठकर ढेर-सा पानी थूक दिया।

उसकी बात सुनकर मदीना का माथा ठनका। पहले उसके माथे पर कई बल आये। फिर उसकी भौंहें सिकुड़ीं। और फिर होंठ ऐसे फैले,

जैसे अब वह मुस्करा देगी। उसने पूछा, "क्या खाने को जी करता है ? बोलो, तो बना दूँ।"

सकीना ने फिर लेटते कहा, "कुछ नहीं।"

"वाह, ऐसा भी कहीं होता है ? यहाँ से जाकर कहोगी कि मैंने खाने को भी नहीं पूछा। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हमें तुम गैर न समझो। बोलो, चूल्हा चढ़ाने की देर हो रही है।"

सकीना कुछ देर तक चुप रह जैसे आप ही जानने की कोशिश करती रही कि आखिर उसका जी क्या खाने को कर रहा है। फिर जरा शर्मा कर बोली, "कोई खट्टी चीज खाने को जी करता है। और हरी मिर्च...."

मदीना जोर से हँस पड़ी। सकीना उसका मुँह ताकती रह गयी।

शाम को साढ़े पाँच बजे शकूर लौटा, तो खुश होकर मंज़ूर से कहा, "कल हमारे यहाँ कुलियों की भर्ती होगी। फिलहाल भर्ती हो जाओ। फिर बाद में देखा जायगा। उन्नीस रुपया महीना और बत्तीस रुपया महँगाई मिलेगी। कुछ तो अलम हो ही जायगा।"

मंज़ूर ने भी खुश हो कहा, "आपकी मेहरबानी का एहसान मानूँगा।"

"भाई, तुम्हें इस तरह की बात नहीं करनी चाहिए," शकूर ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "हम मजदूर हैं। हमें एहसान-एहसान की बात नहीं करनी चाहिए। आज दुनिया के सभी मजदूर भाई-भाई की तरह मिलकर फाशिस्तों के खिलाफ....ओह, माफ करो, भाई....तुम....तुम खुद ही सब समझ जाओगे।" कह कर वह कमरे के अन्दर घुसता हुआ बोला, "क्यों, भाई, रोटी-वोटी कुछ बनी है ?"

"हाँ, हाँ," मदीना ने तवे की रोटी उलट कर कहा, "तुम सब एक ही साथ बैठ जाओ।"

घड़े से लोटे में पानी ढालकर उठा, तो कोने में सिकुड़कर बैठी सकीना पर शकूर की नजर पड़ गयी। वह बोला, "अरे, यह क्यों इस तरह उदास बैठी है?"

"कौन? सकीना?...." सकीना की ओर देखकर मदीना बोली, "इसकी तबीयत जरा...." फिर होठों पर फूटती हँसी को दबाकर बोली, "हाँ, मैं तो भूल ही गयी थी। इसने दोपहर को कुछ भी नहीं खाया। ज़रा बगल की दुकान से दो पैसे की अमावट और एक पैसे की हरी मिर्चें तो लपक कर लेते आओ। ज़रा चीख कर मिर्चें लेना।" कह कर मदीना ने अपनी साड़ी की खूँट में बँधी गाँठ को उसकी ओर बढ़ा दिया।

शकूर पंजों पर बैठ कर गाँठ खोलता बोला, "तो इसका नाम सकीना है।....सकीना और मदीना, खूब जोड़ी मिल गयी तुम लोगों की!" कह कर वह हँसता हुआ उठा।

मुस्करा कर मदीना बोली, "तुम्ही कौन घाटे में रह गये। मंजूर और श...." कह कर उसने शर्मा कर मुँह फेर लिया।

शकूर फिर कुछ कहने ही वाला था कि मदीना बोल पड़ी, "जाव, जाव, जल्दी लाओ, नहीं रोटी ठंडी हो जायगी। ठिठोली फिर कर लेना।"

शकूर जाते-जाते सकीना की ओर देख कर बोला, "बहन सकीना, मंजूर को कल काम मिल जायगा।"

सकीना उनकी बातें सुन चुकी थी। उसने सिर पर आँचल डाल, दोनों हाथ की उँजली बना कहा, "खुदा, तेरा लाख-लाख शुक्र! शकूर भाई को बरक्कत दे!" उस वक्त उसका उदास चेहरा खुशी से अनायास चमक उठा। वह उठ कर मदीना के पास जा कर बैठ गयी और आटे की लोई बनाने लगी।

तीनों मर्द खा चुके, तो अपने छै साल के लड़के और सकीना को लेकर मदीना खाने बैठी। सकीना की नज़र जैसे ही दाल पर पड़ी, वह मुँह फेर कर बोल पड़ी, "इसकी तरफ़ देखने से उकाई आती है। ओ-ओ...."

"ले, मैं इसे हटा देती हूँ। तू इस चटनी और मिर्चे से खा।"

दो टुकड़े रोटी के साथ सारी चटनी और मिर्चें खा कर सकीना ने एक लोटा पानी पी लिया, तो मदीना ने कहा, "वाह रे!"

"माफ करो, बहिन," सकीना ने ऐसे कहा कि मदीना कुछ न कह, हँस कर रह गयी।

खा चुकने पर चूल्हे की आग गोरसी में भर कर मदीना ने बाहर रख दिया। फिर चिराग़ गुल कर दरवाजे बन्द कर सकीना और बेटे के बीच में लेट गयी। दिन-भर की थकी मदीना को नींद आते देर न लगी। पर सकीना दिन में काफी सो लेने के कारण आँखें मूँदे यों-ही पड़ी रही और बाहर की बातें सुनती रही।

शकूर ने कहा, "अब्बा, लो। हुक्का भर दिया। तुम यहाँ लेट जाओ। और आराम से गुड़गुड़ाओ।"

फिर दो बीड़ियाँ जला कर उसने कहा, "लो, भाई मंजूर।"

हुक्के की गुड़गुड़ाहट की आवाज कुछ देर तक तेज आती रही। फिर धीरे-धीरे मद्धिम पड़ती गयी। अब्बा ने अलसाये स्वर में कहा, "बेटा, ले यह हुक्का रख दे।"

शकूर ने हुक्का रख, उनका ओढ़ना ठीक कर दिया। फिर मंजूर के पास बैठ कर कहा, "एक बीड़ी और जलाऊँ?"

"नहीं," कह कर मंजूर ने जम्हाई ली।

"दिन में आराम नहीं किया?" शकूर ने पूछा।

"नहीं, भाई, मुझे हफ्तों से अच्छी तरह नींद नहीं आती। दिमाग कुछ इतना परेशान रहता है कि...."

"तब तो एक बीड़ा और जरूर पीओ।" कह कर शकूर ने फिर दो बीड़ियाँ जलायीं और एक मंजूर की ओर बढ़ाते बोला, 'तुम्हारे घर पर कौन-कौन हैं?"

बेमन एक कश खींच कर मंजूर बोला, "अम्मा, अब्बा और एक छोटा भाई।"

"करगह चलता है?"

"हाँ।"

"तुमको घर का काम अच्छा न लगा?"

"अब्बा ने पुलीस में भर्ती करा दिया था।"

"पुलीस में? फिर...."

"इस्तीफ़ा दे दिया।"

"क्यों?"

मंजूर थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर उदास, भीगे स्वर में अपनी पूरी कहानी सुना कर एक लम्बी आह-भरी साँस खींची।

"ओह!" शकूर के मुँह से निकला। उसने हाथ बढ़ा कर मंजूर का हाथ अपने हाथ में ले जोर से दबाया। फिर रूँधे गले से बोला, "आओ, अब सो रहें।"

सिसकियों की आवाज़ सुन मदीना की नींद खुल गयी। नींदासी ही वह सकीना की तरफ हाथ बढ़ा कर बोली "बहन, बहन, अरे तू सिसक क्यों रही है? कोई बुरा सपना तो नहीं देखा?" और उसने सकीना को अपनी गोद में समोते कहा, "नहीं, नहीं, कुछ नहीं है।"

दूसरे दिन सुबह ही शकूर ने दरवाजे पर दस्तक दी। मदीना ने धीरे से उठकर दरवाजा खोला।

शकूर ने अन्दर आते कहा, "सकीना अभी सोयी है न?"

"हाँ," मदीना ने कहा, "क्यों?"

"यों ही, तुमसे कुछ बातें कहनी हैं। चलो चूल्हे के पास, आग तो जलाओ।"

मदीना आग जलाने लगी और शकूर उसके पास बैठ साँसों की ही आवाज़ में सकीना और मंजूर की पूरी कहानी संक्षेप में कह गया। फिर बोला, "तुम उसका पूरा-पूरा ख्याल रखना।"

"यह भी कोई कहने की बात है," मदीना ने एक गहरी साँस लेकर कहा, "हाँ, शायद तुम्हें नहीं मालूम, सकीना के पैर भारी हैं।"

"अच्छा ?" शकूर ने गम्भीर होकर कहा, "तब तो तुम्हें उसका और भी ख्याल रखना चाहिए।"

"तुम निसाखातिर रहो। मैं उसे कोई तकलीफ न होने दूँगी।" कह कर मदीना ने फूँक मारी। चूल्हे की लकड़ी चटख कर जल उठी। लपटों से धुएँ-भरे कमरे में उजाला हो गया।

थोड़ी देर तक हाथ सेंक कर एक बीड़ी जला शकूर उठते हुए बोला, "अब्बा का हुक्का ताजा कर दूँ। शायद अब उठ गये होंगे।"

वह बाहर आया, तो अब्बा और मंजूर दोनों को बैठे पाया। हाथ की जलती बीड़ी मंजूर की ओर फेंककर कहा, "तब तक पीओ।" फिर जल्दी में हुक्का ताजा कर, चिलम भर के अब्बा के हाथ में थमा दिया। गुड़गुड़ाहट और खाँसी की आवाजें बारी-बारी गूँजने लगीं।

शकूर और मंजूर बिजली घर चले गये, तो मदीना ने लोटे में पानी भर अब्बा के पास रख कर कहा, "मुँह-हाथ धो लीजिये। नाश्ता तैयार है।"

अब्बा ने हुक्का एक ओर रखकर कहा, "यहाँ मैदान कहाँ है, बेटा ?"

मदीना ने कहा, "यहाँ मैदान नहीं है, अब्बा। मैं बदरे को जगा कर भेजती हूँ। उसके साथ चले जाइये।" कहकर उसने अन्दर जा बेटे को जगा कर कहा, "जा, दादा को टट्टी तो दिखा आ।"

बदरे जम्हाई लेता उठा। दरवाजे के बाहर नजर फेंकी, तो बरामदे में मीठी धूप चमक रही थी। उसकी आँखें खिल उठीं। वह "दादा, दादा" चीखता बाहर हो गया।

उसकी चीख सुन कर सकीना उठ बैठी। मदीना ने व्यस्त हो उसके पास बैठ कर कहा, "कैसा जी है?"

"अच्छा है," कहकर सकीना ने मदीना की ओर देखा, तो उसकी आँखों में उभरी हमदर्दी और अपनापा देख विस्मित रह गयी। मिलने के पहले क्षण भी उसने यह हमदर्दी उसकी आँखों में देखी थी, पर इस वक्त तो यह इतनी अधिक हो गयी थी, कि सकीना को अपनी अम्मा की याद आ गयी। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

"नहीं, बहन, यों रो-रो कर अपने को हलकान न करो। खुदा एक सहारा ले लेता है, तो दूसरा दे देता है। मंजूर भाई बहुत अच्छे आदमी मालूम होते हैं। उनके साथ तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। इस वक्त तुम्हारी सेवा की ज़रूरत है। फिर भी तुम कोई फिक्र न करो। तुम्हें मैं छोटी बहन की तरह रखूँगी। खुदा खैरियत से ये दिन काट दे, यही मेरी दुआ है। अच्छा, उठो, मुँह--हाथ धो लो। तुम्हारे लिए मैंने नमकीन टिकिया बनायी है।"

"नहीं, बहन, कुछ खाने को जी नहीं करता," सकीना ने ठेहुने पर माथा रख कर कहा।

"वाह, ऐसा भी कहीं होता है!....जब मेरे पेट में बदरे था...."

"बहन!" चीखकर एक वहशत में आँखें नचाते सकीना बोली, "यह क्या कह रही हो?"

मदीना ने सकीना का सिर अपनी गोद में लेकर, उसकी पीठ सहलाते कहा, "खुदा का शुक्र, है, बहन! पेड़ पर बिजली गिराकर, उसकी जड़ में एक नये पौधे का बीज रोपना भी उसी का काम है। यह

अपने बाप का निशान बन कर तेरे पास आया है। तू खुशी से इसे कबूल कर!"

"तुम्हें नहीं मालूम," सकीना एक प्राणलेवा यातना में चीख कर बोली, "ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता!"

"मुझे सब मालूम हो गया है," संजीदा हो मदीना बोली, "लेकिन जो बात है, उससे आँखें मूँदना तो बेकार है। उसे तुम्हें खुशी से सिर-आँखों पर लेना चाहिए।"

सकीना की छटपटाती आत्मा बिलख-बिलख कर रो पड़ी। आह, वह मर क्यों नहीं जाती? आह, यह जमीन क्यों नहीं फट जाती? यह क्या किया तूने अल्लाह, और वह जोर से अपना मुँह मदीना की छाती में रगड़ने लगी। मदीना उसे तरह-तरह से सान्त्वना देती रही।

मंजूर को नौकरी मिल गयी। परमट की ओर एक नयी लाइन निकलने वाली थी। भर्ती के बाद ही चट वह एक गैंग के साथ काम पर भेज दिया गया। वह नया आदमी था, इसलिए उसे खुदाई का काम दिया गया। मंजूर ने कभी फावड़ा नहीं चलाया था। फिर भी उसने खूब मिहनत से काम किया। उसमें आज एक नया उत्साह था। लगातार पाँच घंटे तक काम करने के बाद बारह बजे जब दो घंटे की छुट्टी हुई, तो थकावट के मारे उसका सारा शरीर चूर-चूर हो गया था। बाहों के पुट्ठों, कन्धों और पेट में जोर-जोर से दर्द हो रहा था। भूख और प्यास के मारे दम निकल रहा था।

उसके कुली साथी अपना चना-चबैना या सूखी रोटियाँ खोलकर एक पेड़ के साये में खाने लगे। मंजूर के पास कुछ भी खाने को न था। शकूर को मालूम न था, कि वह आज ही इतनी दूर ड्यूटी पर भेज दिया जायगा। वर्ना उसने जरूर कुछ खाने को बाँध दिया होता। छुट्टी कहीं पाँच बजे होगी। कैसे मंजूर तब तक अड़ा रहेगा?

मंजूर को उदास, पसीने में थक बैठे देख कर एक मजदूर ने उसे पुकारा।

वहाँ कई मजदूर एक साथ बैठे बाँट-चुट कर खा रहे थे। मंजूर जब उनके पास पहुँचा, तो एक ने कहा, "आओ, भाई, तुम भी कुछ खा लो। सरमाने की जरूरत नहीं। कल तुम कुछ लाना, तो हमें भी खिला देना।"

मंजूर को आज पहली दफा मालूम हुआ, कि मजदूरों में आपस में कितना भाईचारा है। उन-सबमें उसे शकूर का ही खुला सहानुभूतपूर्ण प्रतिविम्ब दिखायी पड़ा।

शाम को साढ़े पाँच बजे जब वह बिजली-घर के सामने ट्रक से उतरा, तो शकूर को गेट पर खड़ा पाया। शकूर ने लपककर उससे हाथ मिलाया। मंजूर कहने लगा—"मैं भर्ती...."

"मुझे सब मालूम है। चलो, तुम्हें भूख लगी होगी। मुझे यह नहीं मालूम था कि वे आज ही तुम्हें काम पर भी भेज देंगे। आज-कल काम की बड़ी तेजी है। लड़ाई का जमाना है।" कहकर लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता वह चल पड़ा। मंजूर भी उसके साथ चलने की कोशिश कर रहा था। उसके शरीर के पोर-पोर में दर्द हो रहा था। उससे चलना मुश्किल हो रहा था।

"एक बात तुम्हें मालूम है?" मुस्कराते हुए शकूर ने कहा।

"क्या?" मंजूर ने पूछा।

"सकीना के पैर भारी हैं, मदीना कह रही थी।"

मंजूर कुछ परेशान-सा हो चुप ही रहा, तो शकूर ने कहा, "विश्वास करने लायक बात नहीं है। उतना जुल्म, फिर वैसी बीमारी के बाद भी....फिर भी यह कोई अनोखी बात नहीं है। मदीना के पेट में जब बदरे था, तो वह एक बार ऐसी बीमार पड़ी, कि पूरे तेरह दिन तक

मियादी बुखार में बेहोश रही। जब भी उसे होश आता, वह कहती, 'हाय, मेरा बच्चा!' पर उसके बच्चे को जरा भी आँच न आयी।"

"खुदा की जो मर्जी!" एक आह-सी लेकर मंजूर ने कहा।

"सो तो जो हो। लेकिन अब जरूरत है कि सकीना को जैसे भी हो खुश रखने की कोशिश करनी चाहिए। सदमा उस पर मामूली नहीं पड़ा है। लेकिन इन्सान सब सह लेता है। तुमसे मैंने यह बात इसलिए कही कि तुम उसके साथ जरा होशियारी से पेश आना। उसके दिल में एक मिनट के लिए भी यह बात उठने का मौका नहीं मिलना चाहिए कि....समझे न?"

"मुझे इसका ख्याल रहेगा," धीमे से मंजूर ने कहा।

कड़ी मिहनत, सूखी रोटियों और अपर्याप्त आराम की कितनी ही गहरी-गहरी रेखायें मंजूर के चेहरे पर अंकित कर तीन महीने बीत गये। मंजूर ने सोचा था कि काम मिल जाने पर वह अपने अब्बा को इत्तला देगा और कुछ खर्चे के लिए भी भेजेगा। पर यहाँ जो काम उसे मिला, उससे बड़ी मुश्किल से उसका ही खर्चा चलता। फिर कड़ी मिहनत के कारण जैसे उसे मालूम ही नहीं होता, कि कैसे दिन-रात कट रहे हैं। सुबह से शाम तक काम। काम से लौटकर खाने के बाद नींद का ग़लबा। उसे कभी कुछ सोचने का समय नहीं मिलता। एक जो इतवार मिलता हफ्ते में, वह तो कपड़े साफ करने, बाजार से हफ्ते-भर का सर-सामान लाने और शकूर के साथ किसी मिटिंग में जाने में ही हवा की तरह उड़ जाता।

मज़दूर-जीवन से उसका यह पहला साबिका था। इसका उसे जो अनुभव हुआ, उससे उसका दिल रोज़-रोज़ पका-सा जा रहा था। उसे शकूर को देखकर आश्चर्य होता कि वह कैसे इतने उत्साह से काम करता है, कैसे इतनी मशक्कतों और तकलीफों को हँसते-हँसते झेल लेता है,

जैसे कभी थकता ही नहीं, कभी हारता ही नहीं। पहले उसे शक हुआ था कि शायद उसे कोई हल्का काम करना पड़ता है। पर बाद में कई बार उसे जब उसके गैंग के साथ भी काम करना पड़ा, तो उसने देखा कि जमादार होने पर भी वह किसी भी कुली से ज्यादा काम करता और हमेशा ऐसे उत्साह और खुशी से भरा रहता, जैसे उसके दिल में इनका ऐसा खजाना भरा हो, जो कभी खाली होनेवाला नहीं।

आखिर एक दिन शाम को तंग आकर उसने शकूर से कहा, "भाई, मेरी तो तीन महीनों में ही तेरहो नौबत हो गयी। पता नहीं, तुम कैसे यह जिस्म और जिन्दगी को पीस डालने वाला काम इतने दिनों से कर रहे हो।"

"जब मैं शुरू-शुरू में आया था," शकूर ने गम्भीर होकर कहा, "तो मेरी भी हालत तुम्हारी ही तरह हुई थी। लेकिन बाद में जब मुझे साथी अरोड़ा की सुहबत का मौका मिला, तो हफ्तों में ही मेरी हालत बदल गयी। सच पूछो तो तभी धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगा, कि मज़दूर क्या है, उसके काम की कीमत क्या है; उसका संगठन क्या है, उसके संगठन का मक़सद क्या है ? और जैसे-जैसे ये बातें मेरी समझ में आती गयीं, मुझमें एक नयी ज़िन्दगी, एक नया जोश, एक नयी हिम्मत, एक नया वलवला, एक नयी ताकत, एक नयी लड़ाई, एक नया मकसद करवटें लेने लगा। और मैंने मज़दूर होकर अपने को एक पहले से बदला हुआ नया इन्सान पाया।....आज तो मेरे जी में आता है, कि मेरे पास सौ हाथ और सौ पैर क्यों न हुए, कि मैं उनसे सौगुना काम कर सकता।" कहकर उसने मंजूर की ओर देखा, तो उसकी आँखों में एक मुस्कराती चमक झिलमिला रही थी।

मंजूर भौंहें सिकोड़े अजीब तरह से उसे देखने लगा। उसकी समझ में न आया कि शकूर क्या बक गया। उसने हैरान होकर पूछा, "यह सब तुम क्या कह रहे हो ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है।"

"तुम्हारी समझ में ये बातें आ जातीं, तो आज तुम इतने पस्त-हिम्मत अपने को न पाते। करीब-करीब हर इतवार को मैं तुम्हें अपनी यूनियन या मजदूर-सभा की किसी-न-किसी मिटिंग में आज तक बराबर ले जाता रहा हूँ कि तुम वहाँ की बाते सुनो और समझो। पर मालूम होता है कि तुमने कभी कुछ नहीं समझा।"

"वह तो मैं तुम्हारा साथ देने को जाता रहा हूँ। सच पूछो, तो मैंने कभी भी वहाँ की बातें ध्यान से न सुनीं। मुझे ता अपनी और सकीना की फिक्र ही रात-दिन खाये रहती है। कहाँ लगती है मेरी तबीयत किसी काम में ?" मंजूर ने अपने दिल की बात कही।

"ओह, तो यह मेरी गलती और कमजोरी है। मैं सोचता था, कि तुम....खैर, घबराओ नहीं। जरा धीरज से काम लो। यों पस्त हिम्मती से कुछ बनेगा नहीं। खाना खाकर हम फिर बातें करेंगे।"

बेचारी सकीना का जो उस दिन सिर झुका, वह आज तक नहीं उठा। वह अपनी नजरें हर आदमी से चुराया करती। अँधेरे कोने में लेटी या बैठी रहती। मदीना के काम में हाथ भी बँटाती, तो सिर झुकाये ही। बाहर तो बहुत ही कम निकलती। शकूर और मदीना उसे बहुत समझाते, उसे खुश करने की बहुत कोशिश करते, पर सकीना पर जैसे कुछ असर ही नहीं होता। मंजूर भला क्या कहता ?

सकीना लाख कोशिश करती कि उसके दिल की शंका मिट जाय, उसे किसी तरह इस बात का विश्वास हो जाय, कि जो जीव उसके अन्दर उसका खून पीकर बढ़ रहा है, वह उसके अलीम का ही अंश है, उसी की यादगार है, पर वह एक क्षण को भी उस विश्वास पर जम नहीं पाती। उसके अन्दर जैसे कोई चीख-चीख कर हर क्षण बोला करता, 'कौन जाने, कौन जाने, कहीं उन शैतानों....'

वह बार-बार दिन जोड़ती, बार-बार अपने अलीम की आखिरी सोहबत को याद करती, पर उसी के बाद उस भयंकर दिन और रात की याद आ जाती और उसके विश्वास की नींव ही हिलकर गिर जाती।

कभी-कभी उसके जी में आता कि वह कहीं भाग जाय या आत्म-हत्या ही कर ले कि उसे इस ज़िल्लत की ज़िन्दगी से छुटकारा मिल जाय। पर तभी मंजूर और पेट में बढ़ता वह अज्ञात सन्देहात्मक जीव ऐसे उसके सामने आ खड़े होते कि हार मान वह मन-ही-मन सिसक-सिसक उठती।

कई बार उसके जी में आया कि वह मंजूर से कहीं अलग रहने को कहे। वहाँ अकेले शायद वह इस शर्मिन्दगी से बच सके। लेकिन मदीना और शकूर का स्नेह और अपनापन उसकी जबान पकड़ लेता।

अजीब परेशानी थी सकीना की!

शकूर को उस दिन मंजूर की बात सुनकर बहुत अफसोस हुआ। उसके साथ रह कर भी मंजूर एक सच्चा मजदूर न बन सका, यह दुख की बात थी। उस दिन शाम को उसने बहुत कोशिश की कि उससे कुछ बातें करे, पर क्या बातें करे, कैसे बातें करे, कि मंजूर के दिल में एक-एक बात खुब जाय, और वह वे-सब बातें समझ ले, जो उसने समझ ली हैं। लेकिन वह समझ न सक रहा था। वह उस दिन चुप ही रहा। मंजूर ने कई बार उसे छेड़ा भी, पर शकूर कुछ बोला नहीं। आख़िर में उसने यही कहा कि वह धीरे-धीरे सब समझ जायगा। लेक्चर से ही सब काम नहीं बनते। वह कल उसे एक अख़बार और कुछ आसान किताबें पढ़ने को देगा।

लेकिन केवल यह कह देने से ही शकूर को सन्तोष नहीं हो गया। उसे अब फिक्र हो गयी, कि कैसे मंजूर को ले कर आगे बढ़ा जाय।

उसने बहुत सोचा इस विषय पर। आखिर उसने तय किया कि मंजूर को अब कहीं और रहना चाहिए। सकीना के रहते भी वह उसके घर में अकेला-अकेला-सा रहता है। एक छोटा-सा कमरा है। उसी में सर-सामान, चूल्हा-बर्तन, खाना-पकाना, सोना-बैठना सब होता है। मंजूर शर्म के मारे एक बार भी कमरे के अन्दर नहीं जाता और न सकीना से कोई बात ही कर पाता है। कहीं दूसरी जगह रहेंगे, तो साथ रहेंगे, कुछ सुख-दुख की बातें करेंगे। सकीना भी उसकी कुछ सेवा करेगी। मंजूर उसको लेकर कुछ आज़ादी, कुछ सुख महसूस करेगा। उसका दिल लगेगा, यों उचाट-उचाट-सा न लगेगा। जिस सकीना के लिए उसने इतना किया है, उसके साथ आज़ादी से रहने में कुछ नहीं तो भी उसे एक आध्यात्मिक सुख तो अवश्य मिलेगा। और बहुत सम्भव है कि नज़दीक आते आते एक दिन वे अपना सांसारिक सुख भी एक-दूसरे में ढूँढ़ निकालें।

इस तरह जब उसे कुछ दिमाग़ी और दिली सकून मिल जायगा, तो वह और बातें भी आसानी से समझ सकेगा, मन लगा कर सुन सकेगा।

कानपुर में रहने के लिए, एक कमरा ही क्यों न हो, पाना कोई आसान बात नहीं। शकूर ने अपने कई मज़दूर साथियों से बात की, पर कहीं उनके पास एक तिल रखने की भी जगह नहीं थी। एक-एक टूटे-फूटे कमरे में आठ-आठ, दस-दस मज़दूर गुज़र कर रहे थे। इधर-उधर मज़दूर-बस्तियों में भी वह दौड़ा-धूपा, पर कहीं जगह न मिल सकी। अकेले मंजूर का सवाल होता, तो सिर छिपाने की जगह किसी-न-किसी के साथ मिल जाती। पर यहाँ एक अदद औरत का भी सवाल था।

कई दिन इसी तरह बीत गये। तभी एक दिन उसके एक साथी ने कहा, "डिसूजा साहब नौकरों वाला कमरा अपने यहाँ देने को तैयार

हैं। उनके पास आज-कल कोई नौकर नहीं है। बस, जो वहाँ रहे, वह उनका कुछ इधर-उधर का काम कर दे। मंजूर को चाहो, तो वहाँ रहने को कह दो।"

डिसूज़ा साहब देशी ईसाई थे। उम्र उनकी पैंतीस के करीब थी। बिजली घर में वह आफ़िस-मैनेजर थे। एक हज़ार तनख़ाह पाते थे। शकूर को यह बात ठीक न जँची कि मंजूर को उस साहब के यहाँ रहने को कहे। साहब लोगों से उसे एक तरह से नफ़रत थी। उन्हें वह दूसरे खेमे का आदमी समझता था, जिनसे अगर, उसका कोई सम्बन्ध था तो वह दुश्मन का था। फिर भी उनसे डरने की बात तो कभी उसके दिमाग़ में ही नहीं आती थी।

कई दिन तक वह सोच-विचार में पड़ा रहा। आखिर एक दिन लाचार हो कर उसने डिसूज़ा साहब से बात की, "साहब, मेरे देखने में एक आदमी है। आप कहें, तो उसे आपके यहाँ भेज दूँ। वह यहीं काम करता है।"

साहब ने सिर हिला कर कहा, "नहीं, हम तुम्हारा माफिक आदमी नहीं माँगता।" साहब ही क्या, बिजली-घर का हर आदमी लड़ाकू शकूर को जानता था।

शकूर ने कहा, "वह हमारा माफिक नहीं, साहब। वह अभी नया-नया गाँव से आया है। उसके साथ उसकी बहन भी है।"

"तब ठीक," साहब ने एक आँख ऊपर उठा कर कहा, "उसे हमारा पास भेजो। हम देखेगा।"

मंजूर को क्या कहना था। वह जाने को तैयार हो गया। मदीना ने सकीना को गले लगा कर कहा, "बहन, आती-जाती रहना। और कोई बात हो, तो खबर देना। घबराना नहीं, समझना कि यहाँ भी तुम्हारा कोई अपना है।"

सकीना की आँखों में आँसू भर आये।

जब वे जाने लगे, तो बदरे ने सकीना की साड़ी पकड़ ली। उसने झुक कर बदरे को चूमा। फिर कहा, "हम फिर आयेंगे, बेटा।"

अब्बा ने खड़े हो कर उन्हें दुआयें दीं।

साहब मंजूर और सकीना को देख कर खुश हो गया। उसने कहा, "तुम लोग अपना आदमी है। रह सकता है। यह छोकरी मेम साहब का काम करेगा। तुम इधर-उधर का काम देगा। हम तुमको तनखा भी देगा। खाना भी देगा।" और उसने उन्हें उनका कमरा दिखा दिया।

शकूर उन्हें समझा-बुझा कर कुछ उदास हो कर लौट आया।

मंजूर आज खुश था। रहने और खाने का इन्तजाम हो जाने से अब वह अब्बा को कुछ भेज सकेगा, सकीना के लिए भी कपड़ा, बिस्तर वगैरह बनवा सकेगा। साहब के यहाँ खाना अच्छा मिलेगा। सकीना की टूटी देह सँभल जायगी।

उसने आज पहली बार अब्बा को खत लिखा। पुलीस की नौकरी छोड़ने और बिजली-घर में काम कपने का ब्योरा दे उसने लिखा कि वह जल्द ही खर्चा भेजेगा। उसने जान-बूझ कर सकीना की कोई बात नहीं लिखी।

रात को खाने-पीने के बाद मंजूर ने सकीना से कहा, "तुम दरी बिछा कर लेट रहो। मैं जरा बीड़ी खरीद लाऊँ।" उनके पास एक ही बिस्तर और ओढ़ना था। मंजूर ने सोचा कि इसी बहाने वह शकूर के यहाँ से कुछ माँग लाये। अगर वहाँ कुछ नहीं भी मिला, तो भी जब तक वह लौटेगा, सकीना सो जायगी। तब वह किसी तरह उठंग कर रात काट लेगा। यों सकीना उसे वैसा न करने देगी।

सकीना ने कहा, "जल्दी आना।"

मंजूर चला गया, तो सकीना लेट गयी। आज उसने इतने दिनों के बाद बहुत काम किया था। साहब के पूरे घर की सफाई, बिस्तरों को धूप में डालना, गमलों में पानी डालना, बर्तन साफ़ •करना, खाना बनाना, तीन-तीन लड़कों को नहलाना, सबको खिलाना, सब काम उसी के जिम्मे था। मेम साहब ने एक-एक काम उसे समझा दिया था। वह थक गयी थी। फिर भी वह कुछ खुश थी। यहाँ अपरिचितों में उसने खुल कर साँस ली थी। शकूर के घर में तो जैसे उसका दम घुटता था।

उसे नींद आ रही थी, फिर भी वह जाग कर मंजूर का इन्तजार करना चाहती थी। वह आ जाये, तो वह आज की बातें कहे। वह बहुत उदास रहता है। उसी के कारण उसकी यह हालत हुई। और वह उसके लिए कुछ नहीं करती। यह ठीक नहीं है। उसे भी कुछ करना चाहिए। उस कीचड़ में सने को उसने इस तरह गले लगाया है, तो क्या उसका भी कोई फर्ज नहीं होता? नहीं, नहीं, अब वह गुजरे को भूलने की चेष्टा करेगी। वह अब आगे देखेगी।

तभी उसे सुनायी पड़ा, "आया, आया! तुम सो गया?"

चौंककर सकीना दरवाजे पर आयी, तो देखा, साहब खड़ा था। उसने घबराकर कहा, "नहीं, साहब, क्या हुकुम है?"

"मेम साहब कहता था, तुमरा पास कपड़ा नहीं। रात को बड़ा ठण्डा होता। हमरा पास बहुत कपड़ा है। तुम आकर ले जा।" साहब कहकर बंगले की ओर चल पड़ा।

अब जाकर सकीना को ख्याल आया, कि सचमुच उसके पास एक ही ओढ़ना-बिछौना है। मंजूर आता, तो कहाँ सोता? वह साहब के पीछे-पीछे हो ली।

साहब ने उसे एक मोटा कम्बल और दरी दी। सकीना ने लाकर दरी अपने बिस्तर से थोड़ा हटाकर बिछा दी; और उसके सिरहाने कम्बल रखकर अपने बिस्तर पर फिर लेट गयी।

मंजूर अभी तक नहीं आया। बीड़ी की दूकान दूर है क्या ? या वह कहीं और चला गया ? बड़ी देर हो गयी।

वह काफी देर तक उसके बारे में ही न जाने क्या-क्या सोचती टुकुर-टुकुर दरवाजे की ओर देखती रही। कमरे में बिजली की तेज रोशनी हो रही थी। हवा धीमे-धीमे सिहर रही थी। चारों ओर सन्नाटा छाया था। सकीना ने नाक तक ओढ़ना ओढ़ रखा था। पता नहीं कब उसके किसी हाथ ने ओढ़ने से एक आँख ढँक दी, फिर थोड़ी देर बाद दूसरी आँख भी ढँक दी। रोशनी चमक रही थी। हवा ठण्डक का धीमा-धीमा झोंका दरवाजों से ला रही थी। सन्नाटा और भी गहरा होता जा रहा था। और सकीना सो गयी।

मंजूर काफी रात गये शकूर के यहाँ से चला। शकूर ने उसे आज खुश देखकर उससे बहुत-सी बातें की थीं। मंजूर उसकी बातों को खूब ध्यान से सुनकर भी कितना समझ पाया था, नहीं जानता। फिर भी उसकी बातें उसे बहुत अच्छी लगी थीं। शकूर जिस जोश, जिस विश्वास, जिस दृढ़ता और जिस शक्ति से बातें कर रहा था, उसे देखकर मंजूर को सचमुच आज मालूम हुआ कि शकूर वह नहीं है, जो उसने उसे आज तक समझा था। और आज उसे मालूम हो गया था कि शकूर क्यों अपने काम से इतना उत्साहित, इतना खुश रहता है। मंजूर के दिल और दिमाग में यह बात बार-बार उठ रही थी कि काश, वह भी उन बातों को समझ सकता; काश, उसी जोश से वह भी वे बातें कर सकता और काश, वह भी उसी की तरह अपने को एक सच्चे मानी में मज़दूर बना पाता !

मंजूर के पैर तेजी से उठ रहे थे। वह इस समय अन्दर-ही-अन्दर एक अज्ञात, फिर भी कुछ जाना-सा उत्साह, स्फूर्ति अपने में अनुभव कर रहा था। उसे लगता था, कि आज उसका हृदय मुस्कराने की

चेष्टा कर रहा है, आज उसके अन्धकारपूर्ण मस्तिष्क में कोई सुखकर प्रकाश की किरण समा गयी है, आज उसकी आत्मा में कोई नयी बात चमक गयी है। वह चल रहा था और उसके दिल और दिमाग में शकूर की बातें गूँज रही थीं। वह कभी-कभी शकूर की कही बातों के टुकड़ों को होंठों-ही-होंठों में कहने की कोशिश भी कर रहा था और मन-ही-मन मुस्कराये भी जा रहा था।

शकूर ने उसे एक किताब भी दी थी। वह उसे बगल में दबाये हुए था। कई बार रास्ते में ठिठक-ठिठककर उसने बिजली के खम्भों के पास उसे उलट-पलट कर देखा भी। पढ़ना छोड़े एक जमाना हो गया। पता नहीं इस किताब को वह पढ़ सकेगा कि नहीं। पर कोशिश जरूर करेगा। वह जरूर इस किताब को पढ़ेगा।....अगले इतवार को फिर यूनियन की मिटिंग होगी। वह जरूर जायगा और अब वहाँ की हर बात को वह गौर से सुनेगा, समझने की कोशिश करेगा। फिर शकूर से भी समझेगा।

जब वह अपने कमरे में पहुँचा, तो देखा ओढ़ना ओढ़कर सकीना सो गयी थी। उसका शरीर ढँका हुआ था। सिर के बालों के नीचे जरा-सा माथा बिजली की रोशनी में चमक रहा था, जिस पर बालों की एक लट टेढ़ी हो बैठी हुई थी। प्रसन्न मंजूर उसके माथे के उस हिस्से को घूरकर कई क्षण तक देखता रहा। सहसा उसके होंठों पर एक स्निग्ध मुस्कान फैल गयी। उसके जी में आया कि वह उस लट को अपने हाथ से ऊपर उठा दे और उस चमकते माथे को चूम ले। आह, कितना पवित्र, कितना सुन्दर लग रहा है यह चाँद का टुकड़ा!

तभी सकीना करवट ले नींद में ही बोली, "मंजूर, मंजूर, बीड़ी ले कर आ गये?" और उसका पूरा चेहरा खुल गया। मंजूर को लगा, जैसे पूर्णिमा का चाँद मुस्करा उठा हो। वह उसे जरा और भी नजदीक से देखने को बैठा, कि उसका हाथ बगल में रखे कम्बल पर

पड़ गया। उसने अकचका कर कम्बल को ऐसे देखा, जैसे वह साँप का फन हो। और अचानक बोल पड़ा, "सकीना! सकीना! यह कम्बल कहाँ से आया?"

सकीना ने अकबका कर आँखें खोल दीं। और सामने मंजूर को देख कर बोली, "तुम आ गये? कहाँ थे अब तक? यह कम्बल और दरी साहब ने दिये हैं। बहुत भले हैं ये लोग।"

"तुम्हें इस तरह उनसे कुछ नहीं लेना चाहिए," मंजूर ने धीरे से कहा।

"अच्छा, लौटा दूँगी। आज सो रहो। तुम कहाँ चले गये थे? इतनी देर ...मैं ताकते-ताकते सो गयी।" सकीना ने कह कर जम्हाई ली।

"मैं जरा शकूर के यहाँ चला गया था।"

"तो मुझे भी क्यों नहीं ले गये?"

"इतवार को ले चलूँगा। अच्छा, अब सो रहो। बहुत रात बीत गयी है। शकूर ने ऐसी प्यारी-प्यारी बातें आज छेड़ दीं कि उठने को जी ही नहीं चाहता था। ओह, कितना अच्छा आदमी है! मेरा मन तो उस पर लट्टू हो गया है। वह तुम्हारा भी बहुत आदर करता है।" कह कर, बिजली बुझा, दरवाजा उठंगा वह लेट गया।

"तुम बहुत थक गये होगे। पैर दबा दूँ?" सकीना ने कहा।

"नहीं, नहीं, तुम सोओ। रात बहुत बीत गयी है। और मुझे तो आज बिल्कुल थकावट नहीं है। सकीना, आज तो ऐसा लगता है, कि अब मैं किसी काम से कभी भी नहीं थकूँगा। शकूर कहता था कि हम पहाड़ों को तोड़ सकते हैं। हमारी ताकत के सामने हर ताकत सर झुकाती है।" मंजूर जोश में उठ कर बैठता बोला, "हमने यह दुनिया बनायी है। दुनिया की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनिया की हर चीज हमारी है। लेकिन....लेकिन दुनिया के चन्द सरमायादारों ने इन चीजों पर अपना नाजायज हक जमा रखा है

हमें बेवकूफ़ बना कर। वे हमसे गुलामों की तरह काम कराते हैं और हमारी मिहनत की कमाई पर गुलछर्रें उड़ाते हैं। पर, सकीना, सकीना, शकूर कहता था, कि अब जमाने ने करवट ली है।....वह कहता था कि एक देश है रूस....वहाँ हुआ था एक लेनिन। और उसने और....और एक स्तालिन ने अपने लाखों, करोड़ों मजदूर-किसान साथियों का पहली बार संगठन किया। दुनिया को पहली बार बताया कि ये खेत किसानों के हैं, खेतों की पैदावार किसानों की है, क्योंकि वही अपनी मिहनत से अनाज पैदा करता है, ये मिल और उसकी पैदावार मजदूर की है, क्योंकि वही मशीन बनाता है, मिल खड़ा करता है, मशीनें चलता है और सब-कुछ पैदा करता है।....और....और सकीना, शकूर कहता था कि रूस में गरीब किसानों और मजदूरों ने वहाँ के सरमायादारों की ताकत से पहली बार टक्कर ली और दुनिया में एक नये इन्कलाब को कामयाब बना दुनिया के सारे गरीबों, किसानों, मजदूरों को एक नयी राह दिखायी। आज दुनिया का मजदूर उसी राह पर आगे बढ़ रहा है। शकूर भी उसी राह पर चल रहा है और वह कहता है कि हिन्दुस्तान का हर मजदूर उसी राह पर चलेगा, और मैं....मैं सकीना, शकूर कहता था कि वह राह जिन्दगी की राह है, खुशहाली की राह है, तरक्की की राह है.... उस राह पर चलने वाला इन्सान इस्पात का बन जाता है और कभी भी हार नहीं खाता। सकीना, सकीना, सुना तुमने?" और मंजूर जोर से हँस कर कम्बल में मुँह छिपा लेट गया।

"खुदा करे, ऐसा ही हो!" सकीना ने हाथों की अँजुली बना कर कहा, "खुदा करे ऐसा ही हो!"

मेम साहब ने धीरे-धीरे सकीना को पक्की आया बना दिया। बड़े दिन और नवरोज की खुशी में उन्होंने सकीना के लिए कई जोड़े कपड़े दिये। फिर एक दिन कहा, "आया, हम तुमका खूब साफ

माँगता। गन्दा हम नहीं माँगता। हमारा साथ हमरा माफिक साफ़ माँगता। तुमका सब चीज़ देता। कपड़ा, तेल, पावडर, कंघी, साबुन, सब देता।"

और सकीना साफ रहने लगी। साफ़ धोती, साफ ब्लाउज, सँवारे बाल, सब अपनी-अपनी जगह दुरुस्त। पर उसने पावडर नहीं लगाया। उसे इसकी ज़रूरत भी नहीं थी। योंही वह सुन्दर थी। रंग भी उसका काफ़ी साफ़ था। मेम साहब साँवली थी। वह रोज़ सुबह-शाम खूब पावडर लगाती थी। फिर भी रंग और रूप में वह सकीना का मुकाबिला नहीं कर सकती थी। सकीना को उसके चेहरे पर पुता पावडर बहुत बुरा लगता था। इसीलिए वह अपने चेहरे पर पावडर नहीं लगाती थी।

इधर उसका शरीर खूब गदरा गया था। कुल्हों पर, बाजुओं पर सुन्दर ढंग से मांस चढ़ गया था। चेहरा चौड़ा होकर भी बदनुमा नहीं हुआ था। छातियाँ बड़ी हो कर भी बेडौल नहीं हुई थीं। पेट बढ़ा नहीं मालूम होता था। सारे शरीर पर एक मलाहत फैल गयी थी। आज-कल वह सचमुच बहुत सुन्दर मालूम पड़ती थी।

उस दिन सुबह पछुआ हवा खूब झकझोरकर बह रही थी। आसमान पर बादल के मोटे-मोटे टुकड़े जमे हुए थे। ठंडक बेहद बढ़ गयी थी। हाथ-पाँव गल रहे थे। सकीना काँपती हुई साहब और मेम साहब को नाश्ता करा रही थी। उसके होंठ नीले पड़ रहे थे। आँखों और नाक से बार-बार पानी बह आता था।

आज नाश्ते पर शराब भी थी। साहब और मेम साहब गरम कपड़ों में भी सर्दी को कैद करने में अपने को असमर्थ पा, आग का पानी पी रहे थे। साहब ने सुर्ख आँखों से सकीना को घूर कर कहा, "तुम यह नहीं पीता?"

सकीना ने सिर हिला दिया। वह इस वक्त पैर पर पैर रखे फुफुती में दोनों हाथ छिपाये ऐसे खड़ी थी, कि उसके शरीर की हर रेखा उभर कर

साफ हो रही थी। साहब ने उसे ऊपर से नीचे तक नशीली आँखों से देख कर कहा, "हमारा मेम साहब तो पीता है। तुमका ठंड लगता। यह पीता, तो ठंड नहीं लगता। मेम साहब, इसका एक स्वेटर देना माँगता है। बेचारा ठंड खाता।"

और सकीना ने जब कसा हुआ स्वेटर पहना, ता उसकी छाती की रेखायें और भी उभर आयीं। उसे अब आँचल की भी उतनी परवाह नहीं रही। जैसे उसके देखने में बिना आँचल के भी उसकी छातियाँ काफी ढँकी हुई हों। उसे क्या मालूम कि....

और जब वह नल से प्यालियाँ, और प्लेटें धो कर उठी, तो उन्हें उठाते वक्त उसके ठंड से सुन्न हुए हाथ से एक प्लेट गिर कर झन्न से बोल उठी। मेम साहब ने सुना, तो दौड़ी आकर सकीना के फूले गाल पर एक जोर का थप्पड़ लगा दिया—"डेविल, प्लेट तोड़ दिया!"

सकीना की आँखों से ठंडे आँसू बह चुपचाप गालों पर जम गये।

तभी साहब ने आकर कहा, "एक्स्क्यूज़ हर, डार्लिंग! शी इज वेरी इन्नसेन्ट?" फिर सकीना की ओर मुड़ कर कहा, "यह सेट मेम साहब का बहुत प्यारा है। यह मेम साहब का एक दोस्त का प्रेज़े....क्या करता है....इना....नहीं, नहीं, तोहफा....तोहफा है। हमारा मेम साहब अपना दोस्त का बहुत प्यार करता।" फिर सकीना को एक कोमल नज़र से देख वह अपनी मेम को ले कर हट गया।

सकीना किचेन में गयी, तो फूट-फूट कर रो पड़ी। उसके जी में आया कि वह उनके दिये कपड़ों को नोच-नोच कर अपने शरीर से फेंक डाले। उस वक्त उसे अपने अब्बा, अपनी अम्मा और अपने अलीम की बहुत याद आयी। क्या कभी उन्होंने उसे कभी तिनके से भी छुआ था? और आज? वह फफक कर रो पड़ी। ओह, नौकरी कितनी बुरी चीज है! वह आज मंजूर से कहेगी कि....लेकिन नहीं, नहीं, उसे नहीं कहना

चाहिए। यह सहारा पाकर ही तो....देखें, खुदा को और क्या मंजूर है? और वह खाना बनाने में जुट गयी।

कई इतवार बीत गये। पर मंजूर के साथ एक दिन भी सकीना शकूर के यहाँ न जा सकी। और किसी दिन जाने का सवाल कहाँ था? सिर्फ इतवार को मंजूर की छुट्टी होती थी। उस दिन दोपहर को वह सकीना को शकूर के यहाँ ले जाना चाहता, जब उसे काम से फुरसत रहती थी। पर इतवार को साहब के यहाँ कोई मेहमान आ जाता, या साहब और मेम लड़कों को सकीना पर छोड़ अपने किसी दोस्त के यहाँ चले जाते या सिनेमा, क्लब या पिकनिक का प्रोग्राम बना सकीना को छुट्टी न देते।

"अच्छा, अगले इतवार को चलना," कह कर मंजूर सकीना को बहला देता और खुद शकूर के यहाँ चला जाता। फिर वे दोनों यूनियन की मिटिंग, या स्टडी सर्किल या किसी दूसरे मज़दूर साथी के यहाँ जाते। मंजूर अब कुछ समझने और सोचने लगा था। वह मिटिंग या स्टडी-सर्किल में बोलने या सबक देने वालों की बातें खूब ध्यान से सुनता था। अब झिझक छोड़कर जो बात समझ में न आती, वह उसे फिर या कई-कई बार पूछकर समझ लेता था। अखबार पढ़ने का उसका अभ्यास भी अब अच्छा हो गया था। छोटी-छोटी उर्दू की किताबें, पैम्फलेट और अखबार वह सकीना के सो जाने पर बड़ी रात गये तक पढ़ता और मनन करता रहता।

अब उसे शकूर के जोश, उत्साह और कर्मशीलता पर आश्चर्य न होता। अब स्वयं भी वह अधिक-से-अधिक काम कर थकावट महसूस न करता। अब मजदूरों के साथ छुट्टी में बैठता, तो दूसरे मजदूरों की तरह वह भी पार्टी, मजदूर-राज, रूस, लड़ाई और अपने फर्जों के बारे में खुलकर बातें करता, मज़दूर-संगठन और आन्दोलन की चर्चा करत

और काग्रेस के रवय्ये और नीति की खरे शब्दो मे आलोचना करता।

अब वह पहले का पस्तहिम्मत, बेवकूफ और निराश मजदूर न रह गया था। अब उसमें बला का जोश, असीम शक्ति और बेपनाह सूझ-बूझ आ गयी थी। अब हर बात पर अपने तरीके से वह मजदूरों में तर्क करता। काम के वक्त इतना डट कर काम करता, जैसे दूसरे मजदूरों के सामने उसे एक नमूना पेश करना हो। किस्मत और खुदा के नाम पर रोना उसने बन्द कर दिया। अपनी पार्टी, अपने आन्दोलन और अपने साथी मजदूरो की शक्ति मे उसे इतना विश्वास हो गया, कि किसी दूसरी शक्ति की ओर आँख उठाने की उसे जरूरत ही नहीं रह गयी। अब उसे अपने काम से मुहब्बत हो गयी, क्योकि वह समझने लगा कि उसके काम का महत्व क्या है, उसके काम से दुनिया की उस ताकत को बल पहुँच रहा है, जो दुनिया के मजदूर-आन्दोलन का अगुआ है, जिसके साथ दुनिया के मजदूरों का भविष्य जुड़ा है, जिसकी कामयाबी में दुनिया के मजदूर-आन्दोलन की कामयाबी है, जो दुनिया के इन्सानों की तरक्की, खुशहाली और जनवाद का हिरावल दस्ता है।

उस इतवार को परेड के मैदान मे मजदूर-सभा की एक आम सभा थी। उसमें जो बोलने आये थे, वे बाहर के थे। जब वह तख़्त पर आकर बैठ गये, तो मंजूर ने उन्हें बड़े गौर से देखा, जैसे उस साधारण आदमी में भी वह कोई असाधारण बात खोजने की कोशिश कर रहा हो। पर उसे उनमें कोई भी वैसी बात न मिली। रूप-रग आकार-प्रकार, कपड़ा-लत्ता, सब-कुछ उसी के जैसा था, जैसे वह उन्हीं मे से एक मजदूर हों। हाँ, उनकी आँखों की चमक मे जरूर कुछ असाधारणता मंजूर को नजर आयी। बिजली की रोशनी मे भी जैसे वे आँखें ताराओं की तरह चमक रही थीं। मजूर मुग्ध होकर उन आँखों को बड़ी देर तक देखता रहा, जैसे उन आँखों से स्वयं उसको

एक ऐसा प्रकाश मिल रहा हो, जो अँधेरे में भी हीरों की तरह हमेशा चमकता रहे।

वह बोलने के लिए जब उठे, तो तालियों की गड़गड़ाहट से आसमान गूँज उठा। 'इन्कलाब जिन्दाबाद!' 'सोवियत रूस जिन्दाबाद!' के नारों के बाद उन्होंने बोलना शुरू किया, "साथियो!"

वह बहुत रुक-रुक कर बोल रहे थे, जैसे हर शब्द और हर बात को दिमाग और दिल में तौल-तौल कर जबान पर ला रहे हों। उनके बोलने के ढंग में प्रवाह, या क्षणिक आवेश या सस्ती भावुकता, सामयिक वलवला पैदा करने वाली कोई बात न थी। फिर भी उनके शब्द-शब्द मे वह ताकत, वह विश्वास, वह दृढ़ता और वह तर्क था, कि हर शब्द जैसे दिल में नक्श होता जा रहा हो। उनकी आवाज बहुत तेज न थी। पर आवाज में इतना असर था कि कान उसे ग्रहण करने को लालायित रहें।

वे बोल रहे थे, "रूस के मजदूरों और किसानों ने आज से करीब छब्बीस साल पहले कम्युनिस्ट पार्टी की अगुआई में पूँजीवाद और सामन्तवाद की ताक़त को खतम कर एक नयी तरह की हुकूमत, सोवियत हुकूमत की बुनियाद डाली थी। पूँजीवादी हुकूमत को तोड़ कर समाजवादी हुकूमत और पूँजीवादी जम्हूरियत को खत्म करसमाजवादी जम्हूरियत, जो कि दरअस्ल जम्हूरियत का सबसे ऊँचा, सबसे अच्छा रूप है, वहाँ कायम हुई। नवम्बर, सन् १६१७ में पहली बार, दुनिया के इतिहास में पहली बार, रूस में एक ऐसी समाजवादी जम्हूरी हुकूमत का जन्म हुआ, जिसने सही माने में मेहनतकश मजदूरों और किसानों को आजादी दी, पूँजीवाद और सामन्तवाद की जनता का खून चूसनेवाली, जनता को गुलाम बनाये रखने वाली हुकूमत को खत्म किया और आदमी-द्वारा आदमी पर किये जाने वाले हर जुल्म, हर अत्याचार, हर बदमाशी, हर शोषण को समाप्त किया। हुकूमत पर से पूँजीवाद की

इजारेदारी खत्म हो गयी और उसके मुकाबिले में एक नयी हुकूमत सामने आयी। यह हुकूमत बीस करोड़ नये समाज के आजाद नागरिकों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी और सारी दुनिया के करोड़ों मेहनतकशों की बेदारी से ताकत हासिल करती हुई दिन-ब-दिन मजबूत बनती गयी। तब से आज तक अपनी मिहनत के बल पर ज़िन्दगी बसर करनेवाली स्त्रियों और पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाला एक भी सवाल और जनता की जुझारू प्रकृति का एक भी प्रदर्शन या एक भी फैसलाकुन तारीखी संकट ऐसा नहीं गुजरा, जिसमें इस नये समाजवादी राज ने सयासी और समाजी उन्नति के जद्दोजहद में हिरावल का काम न किया हो या आज़ादी, तरक्की, अमन और मजदूरो के संघर्षों में ईमानदारी के साथ शामिल होनेवाली ताकतो की अगुआई न की हो।

"इन वर्षों में दुनिया के मजदूर वर्ग के बेहतरीन हिस्सों ने एक नयी और फैसलाकुन चीज हासिल की है। यह चीज़ बोलशेविज़म के तजुर्बे हैं, जिन्हें हमने समझना शुरू किया और जिनसे हमने विश्वास प्राप्त किया कि हमारी जीत अवश्यम्भावी है। इन तजुर्बों ने हमें कामयाबी का रास्ता दिखाया। आज दुनिया के मजदूर उसी रास्ते पर चल रहे हैं। आज दुनिया के कम्युनिस्ट आन्दोलन पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की बेड़ियों को तोड़ने के जुझारू आन्दोलन में जुटे हुए हैं।

"हमारे दुश्मनों ने भी यह बात महसूस की और उन्होंने हर मोर्चे पर कठिन लड़ाई शुरू कर दी। नये सोवियत हुकूमत के खिलाफ हथियार-बन्द दखलन्दाजी, पूँजीवादी देशों के मजदूर आन्दोलनों और औपनिवेशिक जनता के विद्रोहों का वहशियाना दमन और मजदूर वर्ग की ताकतों को बिखेर कर, उसे बरबाद करने की सोशल डेमाक्रेटों की गद्दाराना हरकतें शुरू हो गयीं। लेकिन क्रान्तिकारी विचारों और संघर्षों के दो महान नेताओं, लेनिन और स्तालिन की अगुआई में रूसी जनता ने पूँजीवादी ताकतों को कुचल कर कामयाबी हासिल कर ली। सोवियत

समाजवादी जम्हूरियतों के संघ ने अपने तमाम अन्दरूनी और बाहरी दुश्मनों को हरा दिया। इसीलिए जब पूँजीवादी देशों ने अपने-आपको आर्थिक संकट के चंगुल में फँसा पाया, जो एक अवश्यम्भावी चीज थी, तो उन्होंने अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए खुली हिंसा का राज कायम कर दिया और फासिज़म, तानाशाही को जन्म दिया। आज वही फासिस्ती ताकतें अपने खूनी पंजे बढ़ाये दुनिया के सभी मजदूरों के आशा-केन्द्र, दुनिया के सभी मजदूर-आन्दोलनों के अगुए, दुनिया की जनता की सच्ची आजादी और अमन के लिए लड़ने वाले मजदूरों के संयुक्त मोर्चे के निर्माता और संगठन-कर्ता, दुनिया की इन्सानियत को बरबादी, गुलामी और गरीबी से बचाने वाले समाजवादी देश रूस पर बढ़ रही हैं। रूस के खतरे में होने का मतलब है कि आज दुनिया की इन्सानियत खतरे में है, आज दुनिया की आजादी खतरे में है, आज दुनिया की शान्ति खतरे में है, आज दुनिया की तरक्की, खुशहाली खतरे में है, आज दुनिया के गुलाम मुल्कों की आजादी की लड़ाइयाँ खतरे में हैं, आज दुनिया में सभी मजदूरों, किसानों और गरीबों का भविष्य खतरे में है!

"इसलिए, साथियो! इस हालत में हमारा फर्ज साफ है। आज रूस की बहादुर फौजें अपने बेहतरीन बेटे, बेटियों की कुर्बानी सिर्फ अपने लिए ही, अपनी आजादी के लिए ही नहीं दे रही हैं, बल्कि वे सारी दुनिया के लिए, सारी दुनिया की आज़ादी की हिफाजत के लिए दे रही हैं। इसलिए हमारा सबसे पहला और सबसे पवित्र कर्त्तव्य आज यह है कि हम, जितना भी हमसे सम्भव हो, जैसे भी सम्भव हो, हम रूस की उन बहादुर फौजों की सहायता करें! आज ज़रूरत है कि फासिस्त बर्बरता के खिलाफ तमाम जनवादी ताकतें रूस का साथ दें, इन्सानियत के दुश्मन फासिस्ती फौजों को हमेशा के लिए संसार से मिटा दें! जब तक यह नहीं हो जाता, हमें एक मिनट के लिए भी चैन नहीं होना

चाहिए। आज जिस तरह रूस के मजदूर दिन-रात अटूट परिश्रम कर, सामान पैदा कर, अपने बहादुर फौजियों को लैस कर रहे हैं, ठीक उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए। मजदूरों को समझना चाहिए कि जो भी मजदूर, जहाँ भी, जो भी, जैसे भी काम कर रहा है, वह जितना अधिक और जितना ही अच्छा काम करेगा, रूस को वह उतनी ही मदद पहुँचा सकेगा। आज हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जब तक रूस को विजय नहीं मिल जाती, जब तक फासिस्ती ताकतें मिट नहीं जातीं, तब तक हम चैन न लेंगे !"

"फासिस्तों का नाश हो !" "रूस जिन्दाबाद !" के नारों से आकाश गूँज उठा। हजारों तनी मुट्ठियाँ हवा में लहरा उठीं। मंजूर का सीना तन गया। आँखें चमक उठीं। उसने एक बार अपनी चमकती आँखें चारों ओर घुमाकर देखा। अनगिनत मजदूरों को देखकर आज पहली बार उसने अनुभव किया कि मजदूरों की ताकत कितनी असीम है और उसे स्वयं लगा कि उसमें एक अपरिमेय, एक अपरिजेय ताकत भर गयी है। वह दुगुने उत्साह से फिर सुनने लगा। वक्ता बोल रहे थे—

"साथियो ! आज कांग्रेस इस लड़ाई का महत्व गलत समझ गुमराह हो गयी है। वह मजदूरों और जनता को गुमराह करने की हर कोशिश कर रही है। उसका ख्याल है, कि संकट में पड़े अँग्रेजों के ख़िलाफ विद्रोह कर वह देश को आजाद कर सकती है। देश की आजादी की चाह हमें भी कम नहीं है। अँग्रेजों के साम्राज्य को हम भी खत्म करना चाहते हैं। साम्राज्यवादी अँग्रेजों और अमेरिकनों के हम दोस्त नहीं हैं। फिर भी आज की जो परिस्थिति है, उससे हम आँखें नहीं मूँद सकते। आज जो जंगखोर फासिस्ती ताकतों ने दुनिया को गुलाम बनाने के लिए जंग शुरू किया है, उसके विरुद्ध जो ताकतें लड़ रही हैं, उन्हें किसी प्रकार भी कमजोर बनाना कितना खतरनाक,

कितना गलत, कितना मूर्खतापूर्ण है, वह किसी भी आजाद पसन्द, अमनपसन्द, तरक्कीपसन्द आदमी के लिए समझना मुश्किल नहीं है। आज कांग्रेस वही काम करना चाहती है। उसे नहीं मालूम कि वह इस तरह फासिस्ती ताकतों को टेढ़े तौर पर सहायता कर सारी दुनिया को गुलाम बनाने मे उनकी सहायता कर रही है। साथ ही वह साम्राज्य-वादी अंग्रेजों को, जैसा वे चाहते हैं, यह मौका देती है कि दुनिया में वे हिन्दुस्तान को यह कहकर बदनाम करें कि वह फासिस्तों का सहायक है, और उसे किसी तरह भी आजादी नहीं देनी चाहिए और अंग्रेज जो दमन कर रहे हैं, वह उचित ही है। क्या आजादी चाहनेवाला कोई भी इन्सान ऐसा होने दे सकता है ? क्या पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का दुश्मन कभी भी इस तरह का मौका उन्हें दे सकता है ?

"हमारा यह सीधा सवाल है और इसका सिर्फ़ एक उत्तर है, 'नहीं ! नहीं ! नहीं !'....साथियो ! यह याद रखो, कि रूस की विजय हमारी विजय है, हमारी आजादी की लड़ाई की विजय है ! वह फासिस्ती ताकतों को जहाँ खत्म करेगी, वहीं पूँजीवादी, साम्राज्यवादी ताकतों को भी कमज़ोर कर देगी। रूस के ताकतवर होने का यही एक मतलब है कि पूँजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतें कमजोर हो रही हैं !

"साथियो ! हमें यह पक्का विश्वास है कि रूस विजयी होगा और विजयी होकर और भी ताकतवर होगा। उस समय स्वभावतः हमारी आजादी की लड़ाई को ताक़त मिलेगी। साम्राज्यवादी इंगलैंड इतना कमजोर हो जायगा कि वह हमारी आजादी की लड़ाई का जोर न रोक सकेगा। इसलिए, साथियो ! हमारा आज का सबसे बड़ा फर्ज़ है कि हम जितना भी हो सके, रूस को इस लड़ाई में मदद पहुँचायें। रूस की रक्षा की लड़ाई हमारी लड़ाई है, इस लड़ाई की जीत रूस की जीत है, हमारी अपनी जीत है ! रूस विजयी हो !"

और एक बार फिर नारों से आकाश गरज उठा।

उत्साह से भरा हुआ मंजूर शकूर और अपने दूसरे साथियों के साथ युनियन के दफ्तर से ऊन के लच्छे लेकर वापस लौटा। यह ऊन युनियन की तरफ से मजदूरों को इसलिए दिया गया था, कि वे अपने घर की औरतों से फुरसत के समय जरसियाँ बुनवायें। ये जरसियाँ मजदूरों की ओर से रूस के लड़ाकू फौजियों को तोहफा के तौर पर भेजी जायँगी।

मंजूर को यह मालूम न था कि सकीना को बुनना आता है या नहीं। इसीलिए वह ऊन लेने में पहले झिझका। इस पर शकूर ने कहा, "सकीना को बुनना नहीं आता होगा, तो उसे सीखना होगा। जब वह समझेगी, कि उसकी बनायी जरसी कौन पहनेगा, तो देखना, वह कितनी खुशी से बुनना सीखती है, और कितनी लगन से बुनती है!"

और साथियों से अलग हो, शकूर भी आज मंजूर के साथ ही उसके डेरे पर आया। सकीना जब से यहाँ आयी थी, वह उससे न मिल सका था। मदीना ने कई बार उससे मिलने के लिए जाना चाहा था, पर बेचारी को फुरसत कहाँ। एक बूढ़े और बच्चे को सँभालना, कूटना-पीसना, बाज़ार से सौदा लाना खाना, पकाना, शकूर का सब काम करना उसी के जिम्मे तो था। शकूर और मंजूर से उसने कई बार सकीना को भी लाने को कहा था, पर गुलाम सकीना का समय अब अपना ही कहाँ था?

वे जब पहुँचे, तो रात के नौ बज चुके थे। सकीना अभी-अभी साहब से छुट्टी पा, अपने कमरे में आ, लकड़ियाँ जला हाथ-पैर सेंक रही थी। आज ठण्डक बहुत ज्यादा थी। पछुआ हवा सायँ-सायँ करती चल रही थी। आसमान पर घने बादल जमे थे।

सकीना शकूर को देख, खुश हो उठ खड़ी हुई। बोली, "कैसे आज भूल पड़े, भैया?"

जलती आग की लपटों को देखकर अब जैसे मंजूर और शकूर को अनुभव हुआ कि आज कितनी ठंड है। वे आग के पास बैठ गये। शकूर बोला, "ऐसी बात तो नहीं, सकीना। मंजूर से पूछ न कि रोज तेरे बारे में पूछता था कि नहीं। अरे, तू उधर क्यों जा ठी ? आबै, यहीं आकर तू भी बैठ न। बड़ी ठंड है आज।"

"शर्मा रही है," मंजूर ने सकीना की ओर आँख मार कर कहा, "क्यों ?"

"वाह, शर्मायेगी क्यों ? अपने भाई से भी कोई शर्माता है ? आ तो, सकीना, देख यह मंजूर तेरे लिए क्या लाया है ?"

"क्या है ?" शर्मा कर सकीना ने कहा।

"अरे, तू तो सचमुच शर्मा रही है। आ न यहाँ। ले यह।" कह कर शकूर ने ऊन के लच्छे दिखाये।

पास आ, सकीना ने ऊन को छूकर खुश हो कहा, "अरे, यह तो ऊन है। अच्छा किया। मैं तुम दोनों के लिए एक-एक स्वेटर बुन दूँगी।"

"तुम्हें स्वेटर बुनना आता है ?" खुश हो मंजूर ने पूछा।

"हाय, राम ! यह तो भूल ही गयी। मुझे तो बुनना ही नहीं आता।" होंठों पर उँगली रख सकीना उदास हो बोली।

"तो क्या हुआ ? तुम बुनना सीख लो।" शकूर ने कहा।

"कैसे सीखूँगी ?" सकीना ने कहा।

"मदीना तुम्हें सिखा देगी।"

"लेकिन मुझे फ़ुर्सत कहाँ उसके पास जाने की ? क्यों न उन्हीं से बुनवा लो ?"

"उसके लिए तो मैं इसके दूना ऊन लाया हूँ।"

"फिर ?" तनिक चुप रह, कुछ सोचकर सकीना बोली, "मेम साहब तो दिन-भर बैठी, जाने क्या-क्या बुना करती हैं। लेकिन वह चुड़ैल मुझे भला सिखायेगी ?"

"क्यों नहीं ? और अगर वह न भी सिखाना चाहे, तो क्या हुआ ? तुम सीखना चाहोगी, तो उसे बुनते देखकर भी सीख सकती हो। लगन चाहिए, लगन ! मदीना ने तो यों चुटकी बजाते सीख लिया था।" कहते हुए शकूर ने चुटकी बजा दी।

"अच्छा, कल से ही कोशिश करूँगी," कहती हुई पास ही बैठकर सकीना ऊन अपने हाथ में ले कर देखने लगी। फिर एक ओर रख कर बोली, "अच्छा, भैया, अब तुम लोग खाना खा लो। बड़ी बेर हो गयी है।" कह कर वह कोने में रखे खाने की ओर बढ़ गयी।

"मदीना मेरा इन्तजार कर रही होगी। तुम लोग खा लो।" शकूर ने कहा।

"इन्तजार करना तो हमारा रोज का धन्धा है, भैया," सकीना ने खाना उठाते मंजूर की ओर देख कर कहा, "थोड़ा यहाँ भी खा लो। मदीना बहन से कह देना कि सकीना नहीं मानी।"

रोटी-साग ला कर सकीना ने सामने रखा, तो शकूर बोला, "अरे, मैं तो सोचता था, साहब के यहाँ रह कर तुम लोग साहबी खाना खाते होगे।"

"कसम है, भैया। मुआ, हमारे लिए जौ और चना पिसवा कर रख देता है। मेम एक-एक चीज हिसाब से देती है, जैसे मैं चोर हूँ। जो उनके खाने से बच जाता है, उनका कुत्ता और बिल्ली खाते हैं। हमें तो कसम ले लो कि कभी...."

"यही होता है, सकीना," शकूर ने रोटी तोड़ते कहा, "खाओ, खाओ, मंजूर। सकीना तुम भी आओ।"

सब मिल कर खाने लगे, तो शकूर ने कहा, "जानती हो, सकीना, यह साहब एक हजार महीना पाता है, और काम....काम दो आने का भी नहीं करता। ठाठदार सूट पहन कर, मुँह में सिगार दबाये धुआँ छोड़ता इधर-उधर घूम-घूम कर सलाम लिया करता है। कभी दो छन

को अपनी कुर्सी पर बैठता भी है, तो दो-चार दस्तखत कर देता है। और हम मज़दूर हैं, कि आठ-आठ घंटे छाती फाड़ कर काम करते हैं, और....और....सकीना, तुम्हीं बताओ न कि तुम कितना काम करती हो इस साहब का और उसके बदले यह खाना....''

''जाने दो, भैया। हमारी क़िस्मत....''

सकीना को बीच ही में टोक कर शकूर बोला ''नहीं, सकीना, इसमें हमारी किस्मत का दोष नहीं है। दोष इस राज का है. जिसमें मेहनत करने वाले भूखों मरते हैं, और हुकूमत करने वाले सरमायेदार और उनके एजेन्ट बैठे-बैठे मजे उड़ाते हैं। पर, सकीना, अब जमाना करवट ले रहा है। दुनिया के मजदूर अब जाग गये हैं। उन्होंने अपना हक़ समझ लिया है। अब देश-देश में उनका संगठन हो रहा है, उनका आन्दोलन चल रहा है, सरमायादारी हुकूमत से लड़ाई हो रही है। जानती हो, हमारी इस हक की लड़ाई को घपले में डालने के लिए इन शैतानों ने क्या किया है?'' कह कर शकूर ने सकीना की ओर देखा।

''मैं औरत जात क्या जानूँ, भैया?'' सकीना ने कहा।

''अरे, तू यह नहीं जानती कि हिटलर ने जंग छेड़ दिया है?'' मंजूर ने कहा।

''हाँ, हाँ, यह तो जानती हूँ। अब्बा कहते थे कि उस देश में हिटलर का नाम सुन कर बच्चे डर जाते हैं, जैसे यहाँ हौआ और कोका का नाम सुन कर।'' सकीना ने कहा।

''बस, बस, वही हिटलर तानाशाह दुनिया के मजदूरों का सबसे बड़ा दुश्मन है। उसने मजदूरों के अगुआ देश पर हमला कर दिया है। ऐसा करके वह दुनिया के आदमियों को अपना गुलाम बना उसी तरह पीसना चाहता है, जैसे हम, मंजूर और तुम यहाँ पीसे जाते हैं।''

''राम-राम, बड़ा राछस है मुआ! तभी तो उसका नाम सुन कर बच्चे डर जाते हैं।'' सकीना ने मुँह बिगाड़ कर नफ़रत से कहा।

"हाँ, सकीना," करुणा से भीग कर शकूर ने कहा, "आज दुनिया के बच्चे उस राक्षस के अत्याचार से सहमे हुए हैं; आज दुनिया की बहनों के होंठों से उस गुंडे के कारण मुस्कान उड़ गयी है; आज दुनिया की बीवियों का प्यार उस शैतान के खूनी पंजों में पड़ कर चीख रहा है; आज दुनिया के माँ-बाप की मुहब्बत उस क़ातिल की तलवारों की धार पर खून-खून हो रही है।"

"भैया! भैया!" सकीना की आँखें भय से काँप उठीं। वह सिसक कर रो पड़ी।

"नहीं, नहीं, सकीना! हम, हम तुम्हें और तुम्हारी-जैसी बहनों को रोने नहीं देंगे! हम अपने बच्चों की हिफाजत करेंगे! हम अपने माँ-बाप और बीवियों की मुहब्बत और प्यार पर आँच न आने देंगे! हम उस शैतान को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करके ही दम लेंगे! तुम जान लो, सकीना, हमारे लाखों, करोड़ों भाई आज उस क़ातिल से हर मोर्चे पर जान अड़ा कर लड़ रहे हैं! लाखों, करोड़ों बहादुर बेटे और बेटियाँ उन लड़ने वाले अपने जाँबाजों के लिए रात-दिन सामान तैयार करने में जुटे रहते हैं।"

"खुदा इनको फतह दे!" सकीना ने ऊपर देख कर कहा।

"हाँ, सकीना, उन्हें फतह मिलेगी। दुनिया की कोई ताकत उनकी फतह को नहीं रोक सकती!....और, सकीना, जानती हो, यह ऊन हम क्यों लाये हैं?"

"यह....यह...." सकीना अकचकाकर चुप हो गयी।

"इससे तुम स्वेटर बुनोगी। और तुम्हारे हाथ के वे बुने हुए स्वेटर लड़ाई के बर्फ से ढँके मैदानों में लड़ने वाले वे हमारे बहादुर भाई पहनेंगे!"

"सच, भैया?" बच्चे की तरह खुश हो सकीना बोली, "तुमने मुझसे यह पहले क्यों न कहा? मैं बुनूँगी, रात-दिन बुनूँगी, भैया!" कह कर

सकीना मोहित-सी शकूर की ओर देखने लगी।

"मुझे अपनी बहन से यही उम्मीद थी," कह कर शकूर ने एक मुहब्बत-भरी, कोमल दृष्टि से सकीना की ओर देखा।

और मंजूर सोच रहा था, कि यह शकूर का जादू है, या उन बातों का जादू है, या आज की यह दुनिया की सबसे बड़ी हकीकत का जादू है!

सात दिन के अन्दर ही सकीना ने दोनों स्वेटर बुन डाले। उस दिन वह बहुत खुश थी। बुनना सीखने और बुनने में इधर उसने खूब मिहनत की थी। बावर्चीखाने में बैठे-बैठे, लान पर बच्चों को खेलाते समय, रात को मंजूर के सो जाने पर उसने यह काम किया था, पर थकावट उसे ज़रा भी न थी। आज जब स्वेटर बुन गये, तो वह शाम को बड़ी बेताबी से मंजूर का इन्तजार करने लगी। वह सोच रही थी कि वह जल्दी आये, तो इन स्वेटरों को भेज कर और भी ऊन मँगवाये, और भी स्वेटर बुने। मदीना बहन ने अब तक चार बुन डाले होंगे। वह भी अब तेजी से बुन सकती है। अबकी मंजूर से वह कहेगी, कि चार के लिए ऊन लाये। वह उन भाइयों के लिए अब रात-दिन यह काम करेगी। यह छोटा-सा काम भी तो उनके लिए वह कर सके। उस वक्त उसे ख्याल आया कि क्या इसके साथ-साथ उनके लिए वह और भी कोई काम नहीं कर सकती, जिससे उन्हें और भी मदद मिले। आने दो मंजूर को। वह उससे पूछेगी।

आजकल मंजूर बिजली घर के वर्कशाप में काम कर रहा था। वहाँ एक कुली की जरूरत थी, अपना नाम दे दिया था। वह वहाँ कुछ सीखना चाहता था। कुली के काम से उसे सन्तोष न था। वह अब और भी उपयोगी काम करना चाहता था। मिस्त्री पार्टी का आदमी था। मंजूर को वह लोहे के काम सिखाने लगा। मंजूर ने मेहनत कर जल्द ही कई काम सीख लिये। अब उसकी तरक्की टेकनिकल हैन्ड्स में हो

गयी थी। वह जान लड़ा कर काम करता था। मिस्त्री उससे बहुत खुश रहता था। वह चार-चार, छै-छै घंटे ओवर टाइम करता था। फिर भी थकने का कोई नाम नहीं। कितनी संजीवनी, कितनी ताक़त, कितना उत्साह और कितना जोश उसमें आ गया था, वह स्वयं यह न समझ पाता। काम, और काम, और काम ही जैसे आज-कल उसकी आत्मा की पुकार बन गयी थी।

आठ बजे रात को सकीना साहब, मेम साहब और बच्चों को मेज पर खाना खिला रही थी। अभी तक मंजूर नहीं लौटा था। सकीना बार-बार जब बावर्चीखाने में कुछ लाने जाती, तो लपक कर अपने कमरे की ओर झाँक आती, कि कहीं मंजूर आ तो नहीं गया। सवा आठ बजे मंजूर को जब उसने आते देखा, तो वह लपक कर अपने कमरे में पहुँची और स्वेटर उठा कर मंजूर के हाथ में दे बोली, "जल्दी इसे जमा कर आओ और अबकी चार के लिए लाओ! मैं दो दिन में तैयार कर दूँगी।" कह कर फिर वह बंगले की ओर भागी।

"तैयार हो गये?" मंजूर ने खुशी और आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, हाँ, फिर बातें करेंगे। साहब खाने पर बैठा है। तुम ऊन लाना न भूलना।" कहती वह बंगले में घुस गयी। और मंजूर ऐसे मुस्कराता रहा, जैसे वह उसके सामने ही खड़ी हो। कितनी अच्छी, कितनी समझदार, कितनी मेहनती है सकीना! उसने होंठों में ही बुदबुदाते, हाथ के स्वेटरों को उठा होंठों से चूम लिया और लम्बे-लम्बे कदम रखता वह यूनियन आफिस की ओर बढ़ गया।

जब वह लौटा, तो सकीना काम से छुट्टी पा आग के पास बैठी उसका इन्तजार कर रही थी। उसे देख कर बोली, "लाये?"

"हाँ, अब की आठ के लिए मिला है। तुम्हारा स्वेटर उन लोगों को बहुत पसन्द आया। वे बहुत खुश हुए देख कर। तुम्हारी बहुत तारीफ करते थे। यह लो।"

खुश हो ऊन देखती सकीना बोली, "सच ?....अबकी और भी अच्छा बनाऊँगी। अच्छा, तुम जल्दी खाना तो खा लो। खूब भूख लगी है न ?"

"हाँ ! लेकिन, सकीना आज मैं बहुत खुश हूँ। उस खुशी में ही जाने भूख कहाँ चली गयी।" कह कर मंजूर ने मुस्कराती आँखों से सकीना की ओर देखा। आग की लपटों में उसकी आँखों की पुतलियाँ नाच रही थीं।

"अच्छा ! लेकिन यह कहने से काम नहीं चलेगा। तुम जल्दी खा लो, तो मैं एक स्वेटर का फन्दा डाल दूँ।" खाना उसके सामने रखती सकीना बोली।

"खाना तो मैं खा ही लूँगा। लेकिन, सकीना, आज तुमसे कुछ मीठी-मीठी बातें करने को बहुत जी चाहता है। खुश हूँ न !" एक कौर मुँह में डाल चबाता हुआ मंजूर बोला।

"वाह ! तो तुम्हें रोकता कौन है ? तुम्हारी खुशी ही तो अब मेरी खुशी है। इसमें इतना सोच-विचार क्यों ?" पानी उसके पास रख सकीना बोली।

"जानता हूँ, तभी तो कुछ नहीं कहता। अरे, तो तुम वहाँ क्यों बैठ गयीं। आज खाने का इरादा नहीं है क्या ?"

"नहीं। आज मैं बहुत खुश हूँ ! उस खुशी में ही जाने भूख कहाँ चली गयी है !" कह कर सकीना ने आँखें झुकाये ही नजरें ऊपर उठा कर कहा।

"अच्छा !" और मंजूर ऐसे हँस पड़ा कि उसे खाँसी आ गयी।

"पानी पी कर हँसो !" कह कर सकीना भी हँस पड़ी।

दोनों खा चुके, तो बीड़ी जला कर मंजूर लेट गया और सकीना ऊन और कोरशिये ले उसके सिर के पास ही बैठ गयी।

मंजूर ने कई कश ज़ोर से खींच कर कहा, "मुँह से कुछ बोलती भी जाओ, सकीना।"

"हाँ," नजर फन्दे पर गड़ाये ही सकीना बोली, "मैं सोच रही थी कि क्या मुझे और कोई काम करने को नहीं मिल सकता?"

"क्यों, एक काम तो कर ही रही हो," सकीना का मतलब न समझ मंजूर ने कहा।

"मेरा मन इस साहब के काम से घबरा गया है। सुबह से लेकर रात गये तक पीसती हूँ, मेम के थप्पड़ और गालियाँ सुनती हूँ, और मिलता क्या है? सूखी रोटियाँ और दस रुपल्ली। और यह जो साहब है, मेरी ओर ऐसे घूरता रहता है, कि जी में आता है, कि उसका मुँह नोच लूँ। नहीं, मैं अब यहाँ काम नहीं करना चाहती। मेरा मतलब यह है, कि क्या कोई ऐसा काम मुझे भी नहीं मिल सकता, जिससे मैं अपने उन लड़ने वाले भाइयों को और मदद पहुँचा सकूँ?" सकीना ने कह कर, आँखें उठा मंजूर की ओर देखा।

"काम तो बहुत हैं, सकीना। लेकिन इस हालत में...."

"नहीं, अभी महीनों तक मैं काम कर सकती हूँ। उस तरह का कोई काम करूँगी, तो तबीयत भी लगेगी और खुश भी रहूँगी। तुम शकूर भाई से इस बारे में कहना। इस कमीने साहब के यहाँ अब मैं एक मिनट भी अपना वक्त बरबाद नहीं करना चाहती। मुझे डर है कि कहीं किसी दिन...."

"सकीना!" मंजूर ने दाँत पीस कर कहा, "मेरा ख्याल है कि साहब की शामत नहीं आयी है। तुम्हें घबराने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। मैं कल ही शकूर भाई से कहूँगा।"

"हाँ, जरूर कहना !" सकीना ने धीमे से 'जरूर' शब्द पर जोर देकर कहा।

"अरे, हाँ, कल रात को शकूर भाई फिर आयगा। बिजली घर के और भी कुछ साथी आयेंगे। दस बजे तक साहब सो जाता है न ?"

"हाँ, शराब पीकर साहब-मेम दोनों बेखबर हो सो जाते हैं। उन्हें कुछ नहीं मालूम होगा। तुम उन्हें आने को कहना। यों ही आयेंगे या...."

"हमारे यहाँ के मजदूरों में आजकल फूट डालने की कुछ लोग कोशिश कर रहे हैं। उसी बात पर विचार करेंगे। मुझसे शकूर ने कहा, तो मैंने कह दिया कि हमारे वहाँ जमा हो सकते हैं रात को।"

"ठीक किया," कह कह सकीना तेजी से फन्दे डालने लगी।

"अभी सोओगी नहीं ?" मंजूर ने करवट ले कर कहा।

"थोड़ी देर तक अभी बुनूँगी। तुम सो जाओ।"

दूसरी रात को जो सकीना को अनुभव हुआ, उसे वह जिन्दगी-भर न भूल सकेगी। उसने उस दिन पहली बार बीस लड़ाकू मजदूरों और तीन नेताओं को एक साथ देखा। उसने एक-एक को खूब गौर से देखा, और एक कोने में दुबकी बैठी स्वेटर बुनती उनमें से एक-एक की बात कान लगा कर सुनी। मजदूरों की बातें उसकी समझ में काफी आ रही थीं, किन्तु नेताओं की बातें उसकी समझ में न आ रही थीं। उसने उन बातों को समझने की कोशिश की। उनमें एक युवती भी थी। जब वह बोलने लगती, तो कई मिनट तक ऐसे बोलती, जैसे उसकी जबान पर ही सब-कुछ धरा हो। रह-रह कर उसकी आँखों में बिजली-सी कुछ कौंध जाती। सकीना उस वक्त उसकी बातों को ऐसे मुग्ध हो सुनती, कि उसके हाथ रुक जाते। इस तरह की युवती को उसने आज पहली बार देखा था। उसे बोलते देख पहले उसे आश्चर्य

हुआ था, फिर खुशी हुई थी, कि एक औरत हो कर भी वह कैसे मर्दों की तरह बात करती है, न डर, न झिझक, न शंका।

उन मजदूरों का आपस में खुल कर बातें करना, एक-दूसरे के हाथ से जलती बीड़ी ले कर पीना, एक-दूसरे की बातों को ध्यान से सुन कर समझने की कोशिश करना, सब-कुछ सकीना को ऐसा लगा, जैसे एक ही घर के आपस में मुहब्बत करने वाले भाई किसी समस्या पर विचार करने बैठे हों, जिनमें न कोई बड़ा हो, न छोटा। न शोर, न गुस्सा, न चिड़चिड़ापन। सब की बातों से एक समझ, एक स्नेह, एक हल की तलाश की जैसे बेचैनी टपक रही हो।

उस वक्त सकीना को अपने अलीम की याद आ गयी। शायद वह भी कुछ इसी तरह का काम करता था, उसके वहाँ भी कभी-कभी कुछ लोग किसी बात पर मशविरा करने के लिए आकर बैठते थे। पर सकीना को कभी उनके बीच बैठने का मौका न मिलता था। वह ताक-झाँक कर ही कभी-कभी उन्हें देखती थी। बातें वे इस तरह करते, जैसे आपस में कोई बात ले लड़ रहे हों। उनमें तरह-तरह के लोग होते, तरह-तरह के कपड़े नजर आते। वे तरह-तरह की बातें कहते, जैसे किसी बात पर वे एक न हों। सकीना को याद आयी, कि उनमें एक मोटा पंडित था। ज्यादातर वही बोलता था और उसकी जबान ऐसी होती थी, कि सकीना की समझ में कुछ भी न आता था। जब बोलता था, तो मालूम होता कि लोगों को गुस्सा हो कर हुकुम देता हो। वह अक्सर चीख-चीख कर बोलता था और धमकियाँ भी देता था। कभी-कभी सकीना उसकी बातें सुन कर सहम जाती थी। जब मिटिंग ख़त्म हो जाती, तो सकीना अलीम से कुछ जानना चाहती, पर अलीम उसे टाल जाता, जैसे उसे उन बातों से कोई मतलब ही न हो। तब वह पूछती, "वह क्यों चीख रहे थे, क्यों तुम लोगों को धमकियाँ दे रहे थे?" इस पर अलीम कहता, "वह हमारे मण्डल का सदर है। बहुत बड़ा जमींदार है।

डिक्टेटर की तरह बातें करता है।" उस वक्त डिक्टेटर का मतलब सकीना न जानती थी। पर अब हिटलर के बारे में कुछ जान कर डिक्टेटर का मतलब भी समझ गयी थी। वह सोच रही थी कि वह जमींदार भी शायद हिटलर का ही कोई बच्चा हो।

अलीम और उसके साथियों की तुलना उस वक्त सकीना इन मजदूरों, इनकी बातों से करती, तो वह कोई मेल न बैठा पाती। उसे लगता कि वे लोग ऐसे थे, जिनसे उनका कोई सम्बन्ध न हो, और ये लोग ऐसे हैं, जो उसके अपने से भी बढ़ कर हैं। न कोई दुराव, न छिपाव, मुहब्बत-भरी, सीधी-सादी बातें, मिल कर कोई बात तै करने के आदी, न झगड़ा, न झंझट। बस काम, काम की बातें, जैसे एक ही उद्गम से कई धारायें निकल कर फिर एक धार हो आगे बहें।

आखीर में जब वे एक निश्चय पर पहुँच गये, तो सब को सुना-सुना उस युवती ने, जिसका नाम प्रभा था, अपनी नोटबुक पर वह निर्णय लिख लिया। और तै हुआ कि अगले इतवार की शाम को सभा-आफिस में फिर एक बैठक होगी, जिसमें और भी पदाधिकारियों के सामने यह बातें रखी जायँगी और उनकी राय से आगे का कदम ठीक किया जायगा। इस बीच बहके हुए मजदूरों को हर तरह प्रेम से समझाने की कोशिश की जाय।

प्रभा और एक और साथी को छोड़ जब सब चले गये, तो सकीना के पास बैठ कर प्रभा ने काफी देर तक बड़ी मीठी-मीठी बातें कीं। सकीना को उससे मिलकर वैसे ही खुशी हुई, जैसे एक सालों की बिछुड़ी, सगी बहन से मिल कर एक बहन को हो।

प्रभा ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "बहन, तू किसी बात की कभी चिन्ता न करना। साथी शकूर और मंजूर से तुम्हारी सब बातें मुझे मालूम हो गयी हैं। तुमने वे स्वेटर बहुत अच्छे बुने थे। तुम यह न

समझो, कि जो यह मामूली-सा काम कर रही हो, उसकी कोई कीमत नहीं। हमारा तो कहना यह है, कि जो जिस लायक हो, जितना काम कर सके; करे, ताकि जल्द-से-जल्द इन्सानियत के उन तीन जल्लादों, हिटलर, मुसोलनी और तोजो को हमारे बहादुर साथी हरा सकें। फिर भी हम चाहते हैं, कि तुम्हें तुम्हारी ख्वाहिश के मुताबिक कोई और भी काम दिया जाय।....हाँ, तुम कुछ पढ़ना-लिखना जानती हो?"

सकीना ने सिर हिला दिया। उसकी जबान न हिली, क्योंकि वह प्रभा की बातें सुनने में ही मुग्ध थी।

"तो यह भी एक बहुत जरूरी काम है। कल शाम को मैं साथी मंजूर के हाथ पहली उर्दू की किताब, एक स्लेट और पेंसिल भेजूँगी। तुम मंजूर से कुछ मदद लेकर कुछ पढ़ना-लिखना सीखना शुरू करो। मैं बीच-बीच में आऊँगी। एँ?" कहकर प्रभा ने स्नेह से सकीना का कन्धा थपथपाया।

सकीना की आँखें खुशी और स्नेह से भर गयीं। वह कुछ बोल न सकी।

सबके बाद जब शकूर चला गया, तो मंजूर ने कहा—"मेरे ये साथी तुम्हें अच्छे लगे न?"

"बहुत अच्छे! मैं खुदा से दुआ करती हूँ कि ये हमेशा खुश रहें! खुदा इनको कामयाब करे!" सकीना ने आँखें मूँद कर कहा।

"प्रभा तो आग की पुतली है। सुनीं न तुमने उसकी बातें। ओह, कितनी ताकत है उसकी रूह में!" मंजूर ने जैसे उससे इर्ष्या करते कहा।

"फिर भी कितना नरम, कितना स्नेही है उसका दिल! मेरे जी में तो आया कि उसके गले लिपट जाऊँ।"

"फिर लिपट क्यों न गयीं?" मंजूर ने हँस कर कहा।

"होश ही न रहा मुझे उस वक्त," शर्माकर सकीना ने कहा।

"पगली !" कहकर मंजूर एक बीड़ी जला अखबार ले लेट गया।

सकीना पास बैठ स्वेटर बुनती बोली, "रात बहुत चली गयी है न ?"

"हाँ, फिर भी अभी बहुत देर नहीं हुई," कहकर मंजूर ने अखबार · मन लगाया।

"इतवार को किताब लाना न भूलना !" सकीना ने उसकी ओर देखकर कहा।

"मैं भूल भी जाऊँ, तो क्या तुम समझती हो कि प्रभा भी भूल जायगी।" कहकर वह ज़रा हँसा।

"तुम्हें अब सो जाना चाहिए। सुबह उठना पड़ता है।"

"और तुम तो जैसे दिन-भर सोती रहती हो।....थोड़ी देर पढ़ने के बाद मैं आप ही सो जाऊँगा।....कल तनखाह मिलेगी। थोड़ा ऊन अपने लिए भी खरीदूँगा।"

"जाड़ा लगता हो तो मेरा स्वेटर क्यों नहीं पहनते ?"

"अपने लिए नहीं बनवाऊँगा।"

"फिर ?"

"अपने आने वाले मुन्ने...." कहकर मंजूर ने आँखें झपकायीं।

सकीना शर्मा गयी। फिर बोली, "उससे जरूरी अभी उन भाइयों के लिए बुनना है, जो बर्फ के मैदानों में...."

"शकूर की बात तुम्हें याद हो गयी मालूम होती है !"

"नहीं, यह मेरी बात है। तुम क्या समझते हो, कि मैं कुछ समझती ही नहीं ?"

"देखता हूँ. थोड़े दिनों में तुमसे भी प्रभा की ही तरह मुझे ईर्ष्या करनी पड़ेगी। तुम औरतें हर काम में बड़ी तेज होती हो।"

"तारीफ करके मुझे सुस्त बनाना चाहते हो क्या ?"

"बाप रे, तुमसे तो इसी वक्त बात करना मुझे मुश्किल हो रहा है !"

"च-च, यह फन्दा गलत पड़ गया। तुम लोगों की बातें ऐसी बझाने वाली होती हैं कि...." कहकर आँखों की कोर से सकीना ने मंजूर की ओर देखा।

और मंजूर उन नजरों को दबी आँखों से ही देखकर मुस्कराते-मुस्कराते रह गया।

इतवार की शाम को मंजूर अपनी मिटिंग में जाने लगा, तो सकीना ने फिर याद दिलायी, "किताब जरूर लेते आना!"

"भाई, इसकी फिक्र प्रभा को तुमसे ज्यादा होगी।....अच्छा, लौटते वक्त ड्यूटी के पड़ाव पर जाऊँगा। वहाँ एक घर खाली है। मिल जायगा, तो ठीक कर लूँगा न?"

"हाँ, हाँ, मुआ साहब का तो मुँह भी देखना मुझे अच्छा नहीं लगता। जैसा भी हो तुम ठीक कर लेना। अपनी सूखी रोटी भी मीठी होती है।" सकीना ने जोर देकर कहा।

मंजूर चला गया, तो सकीना फिर दौड़ी-दौड़ी बावर्चीखाने में चली गयी।

थोड़ी देर पहले मेम अपने एक दोस्त के साथ सिनेमा देखने चली गयी थी। साहब क्लब गया था। उदास बच्चे अपने बिस्तरों पर पड़े अपनी ममी और पापा को याद कर रहे थे, जिन्होंने उनके रोने-धोने पर भी अपने साथ उन्हें ले जा अपनी मौज में खलल मोल लेना पसन्द न किया था।

सात बजते-बजते सकीना ने बावर्चीखाने का काम खतम कर लिया। तब तक तीनों बच्चे सो गये थे। सकीना ने चाहा, कि उन्हें उठाकर खिला दे, पर वे न उठे। मेम दस बजे तक सिनेमा से लौटेगी या और भी देर से। साहब का कोई ठीक नहीं। साहब जब भी क्लब जाता है, खूब पीकर लौटता है। और घर आकर पागल कुत्तों की तरह चीखता-

चिल्लाता है और जो भी सामने पड़ जाता है, उसे काट खाने को दौड़ता है। मेम से खूब झगड़ा करता है और न जाने कैसी-कैसी बे-मतलब की बातें करता है।

सकीना अधबुना स्वेटर लेकर बरामदे में रोशनी के नीचे बैठ गयी। दरवाज़े की बगल में कुर्सी के पास कुत्ता टाँगो में मुँह छिपाये पड़ा था। बाहर कुहरे में भींगा हुआ घना अन्धकार फैला हुआ था। हवा बन्द थी। फिर भी आसमान से जैसे चुपचाप ठंड की वर्षा हो रही थी। बाहर सामने की सड़क से कभी-कभी दौड़ते हुए एक्कों और कारों की आवाज आ जाती थी। दूर सड़क के खम्भों पर बिजली की रोशनी अन्धकार, कुहरे और धुएँ से ढँक कर बल्बो के पास ही सिमट-सिमट कर जैसे घुट रही थी।

सकीना तेजी से स्वेटर बुन रही थी। और रह-रह कर फाटक की ओर देख लेती थी। ठंड लगते पैरों को बार-बार वह साड़ी में छिपाती, पर अब साड़ी भी ठंडी पड़ रही थी। हाथ की उँगलियाँ भी गलने लगी थीं। वह चाहती थी, कि चूल्हे के पास जाकर बैठे। पर मेम का ऐसा हुक्म नहीं था। मेम का हुक्म था, कि जब वह काम से फुरसत पा जाय, तो बरामदे में बैठकर चौकीदार का काम किया करे। कोई आये, तो झट उसे खबर दे कि साहब या मेम घर में हैं या नहीं। मेम को किसी का पुकारना या दरवाजा खटखटाना बहुत बुरा लगता।

इस घर में सकीना के लिए बावर्चीखाने और बरामदे को छोड़कर और कहीं बैठने की जगह नहीं है, और न हुक्म ही है। नहीं तो कमरे में ही जाकर वह बैठ जाती। पता नहीं, ये मुए कब तक लौटेंगे? पता नहीं कब तक सकीना को इस तरह ठंड खाते बरामदे में बैठकर उनका इन्तजार करना पड़ेगा? पता नहीं कब सकीना को इस कमीनी नौकरी से छुट्टी मिलेगी?

उसने साड़ी से फिर से एक बार अपने शरीर को अच्छी तरह ढँका और हाथ और भी तेजी से चलाने लगी। इस वक्त उसका दिमाग भी तेजी से चल रहा था। वह मंजूर, शकूर और उसके साथियों और उनके कामों के बारे में सोचने लगी। वह प्रभा के बारे में सोचने लगी। और उसे लगा, कि ठंडक दूर भाग गयी है। और वह और तेज़ी से फन्दे डालने लगी। काम और ख्याल में एक तारतम्य बँध गया और दोनों 'जैसे एक-दूसरे को ताकत देने लगे। सकीना अपने ख्यालों और काम में डूब गयी।

पता नहीं कितनी देर बाद सकीना अकचका कर उठ खड़ी हुई। उसके कानों में अचानक साहब की लड़खड़ाती आवाज़ पड़ी थी, "डार्लिङ्ग, तुम क्या करता है? मेम साब आया?"

"नहीं, साहब, मेम साहब अभी नहीं आयीं।" सकीना कहती पीछे हट गयी। सामने खड़े साहब के मुँह से भक-भक ऐसी गन्ध आ रही थी, कि सकीना का दिमाग भन्ना उठा।

साहब हिचकियाँ लेता अन्दर जाते बोला, "हम तुमका अन्दर माँगता है।"

नफरत से भरी सकीना उसके पीछे हो ली। साहब आरामकुर्सी पर बैठकर हत्थों पर टाँगें फैलाकर बोला, "हमारा जूता खोलना माँगता।"

सकीना सहमी खड़ी रही। उसने आज तक यह काम न किया था। साहब का दिमाग सातवें आसमान पर था। फिर भी जैसे वह होश में आ बोला, "ओ, हम जूता खोल लेगा।" और जूता खोलकर किसी तरह अपने डगमगाते पैरों पर वह काबू पा अपने बिस्तर की ओर बढ़ा, कहता, "ठंडा पानी माँगता। खाना नईं माँगता।"

सकीना पानी लेकर पहुँची, तो बिस्तर पर दोनों हाथ पीछे टेके बैठा साहब लाल-लाल गुरेरती आँखों से ऐसे घूरने लगा, कि वह थथम कर खड़ी हो गयी।

साहब ओंठों पर लाल जीभ फेरता, पाटी पर अच्छी तरह बैठ, हाथ फैलाकर बोला, "तुम क्यों खड़ा हो गया?"

सकीना ने दूर से ही पानी का गिलास उसे थमा दिया। साहब पानी पीने लगा, आधा मुँह में गया और आधा उसका कोट भिगोता पैंट पर फैल गया। गिलास पास की तिपायी पर रखकर बोला, "हम तुमका यहाँ बैठना माँगता, डार्लिंग। हम तुमका लव करता। मेम साब बूढ़ा हो गया।" कहकर वह फिर सकीना को घूरने लगा।

सकीना के रोंगटे खड़े हो गये। भूखे भेड़िये की तरह लाल-लाल उसकी आँखें देख वह सहमी हुई ही पीछे हटी। कौन जाने यह शैतान क्या कर बैठे? पिये हुए है।

तभी लपक कर साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया। फिर हँसकर बोला, "हम जानता है, मंजूर नई। मेम साब सिनेमा देखने गया है; तुमका इधर माँगता।" कहकर वह उसका हाथ खींचने लगा।

उसकी यह शैतानी हरकत देख एक क्षण के लिए सकीना सक्ते में आ गयी। पर दूसरे ही क्षण सँभल कर, नफरत और गुस्से में बेकाबू हो उसने जोर का एक थप्पड़ साहब के गाल पर जड़ दिया। फिर अपना हाथ झटके से छुड़ा वहाँ से भागी।

अब क्या करे सकीना? उसका रोम-रोम काँप रहा था। वह अपने कमरे की ओर भागी कि साहब उसके पीछे दौड़ता चीखा, "गोली मार देगा! तुम हमका क्या समझता?"

सकीना ने पीछे मुड़कर देखा, साहब के हाथ में बन्दूक थी। वह बिना कुछ सोचे बेतहाशा भाग कर फाटक के बाहर आ सड़क पर भागने लगी।

यह घटना ऐसे अचानक हुई, कि सकीना बावली हो गयी। उसे यह भी ख्याल न रहा कि वह भागकर कहाँ जा रही है।

भागते-भागते आखिर थक गयी, तब उसे कुछ होश आया। वह ज़ोर-ज़ोर से हाँफती, आँखों में खौफ की बेचैनी लिये एक क्षण को खड़ी हो पीछे मुड़कर देखने लगी। तभी एक ओर से अचानक आवाज आयी, "बहन, इस तरह तू क्यों भागी जा रही है?"

सकीना ने सुनकर फिर भागना चाहा, पर दो-चार कदम के बाद ही वह एक पीपे से ठोकर खाकर गिर पड़ी। आगे सड़क मरम्मत के लिए बन्द थी। बीच सड़क पर कई पीपे रखे हुए थे।

"तुम किसी की सतायी हुई मालूम पड़ती हो," फिर आवाज आयी।

सकीना ने बैठते हुए देखा, एक आदमी काला, लम्बा कोट पहने सामने खड़ा था। उसका मुँह अँधेरे में दिखायी न दे रहा था।

"यह कानपुर शहर है। कहाँ-कहाँ इस जाड़े की रात में अकेली घूमती फिरोगी? मुझे कोई पता-ठिकाना बताओ। मैं पहुँचा दूँगा। तुम घबराओ नहीं।" उस आदमी ने कहा।

सकीना किसी तरह उठकर खड़ी हो गयी। और कुछ सोच कर हाँफती हुई ही बोली, "मैं चमनगंज जाऊँगी। वहाँ मेरा भाई शकूर रहता है। आप रास्ता बता दीजिये!"

"शकूर को तो मैं जानता हूँ। वह तो मेरे घर के बिल्कुल पास ही रहता है। आओ, घर ही चल रहा हूँ। घबराओ नहीं।" कहकर वह आगे बढ़ा।

सकीना खुदा का नाम लेती सिसकती हुई उसके पीछे हो ली।

थोड़ी ही दूर पर एक्के का अड्डा था। उस आदमी ने पुकारा, "अरे, रम्मन है?"

"हाँ, हाँ," कहता हुआ एक एक्केवान एक्का बढ़ा लाया।

उस आदमी ने कहा, "बहन, तुमसे चला नहीं जा रहा है। एक्के पर बैठ जाओ।"

सकीना हिचकी। तभी बूढ़ा एक्केवान एक गहरी नजर उस पर डाल कर बोला, "बैठ जाओ, बेटी ! यह झम्मन बेटा है। बड़ा नेक, मेहरबान आदमी है। भूली-भटकी औरतों की खिदमत करना ही इसकी ज़िन्दगी का मक़सद है। हम-सब इसको जानते हैं। हाँ, बेटा झम्मन, इन्हें कहाँ पहुँचाना होगा ?"

"यहीं, चमनगंज, शकूर भाई के यहाँ," वह आदमी बोला।

सकीना घबराती-घबराती ही जब बैठ गयी, तो एक्का चल पड़ा।

सकीना को बड़े जोर से रुलाई आ रही थी। फिर भी शंका के मारे वह रो न पा रही थी। वह सिर झुकाये बैठी काँपती रही।

एक्का एक अँधेरे मोड़ पर मुड़ा, तो वह आदमी अपना ओवर-कोट उतार कर, सकीना की ओर बढ़ाकर बोला, "तुम इसको ओढ़ लो। बड़ी ठंडक है।"

सकीना ने बिना कुछ कहे ही कोट को उसकी तरफ किया कि उस आदमी ने सहसा हाथ बढ़ा सकीना के मुँह को ढँक दिया।

सकीना ने अपनी नाक पर एक रूमाल का दबाव महसूस ही किया था, कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह बेहोश हो गयी।

सकीना को फिर उन सब जुल्मों की याद आयी, जो झम्मन, उसके हंटर और उस बूढ़ी ने उस पर तोड़े थे। छै महीने तक वह एक अँधेरे कमरे में हवालाती कैदी की तरह बन्द रही। झम्मन हाथ में हंटर लिये हमेशा उसके सिर पर मँडराया किया। बूढ़ी एक राक्षसी की तरह रात-दिन उसका मांस और खून खाती-पीती रही। उसका नाम बदल कर बेला कर दिया गया।

उसी हवालात में बुलबुल पैदा हुआ। न जाने कैसी किस्मत लेकर वह उसके पेट में आया था कि जन्म लेकर ही दम लिया, सारे काले, भयंकर जुल्मों को झेल कर भी ज़िन्दा बचा रहा। सकीना ने जन्मते ही

उसे मार डालना चाहा था, पर उस बच्चे में अलीम की परछाईं देखकर उसके हाथ रुक गये थे। सचमुच बुलबुल उसकी और अलीम की आखिरी मुलाकात की ही यादगार था। उस दिन -छनभर को वह खुश भी हुई थी, पर दूसरे ही छन नरक की धधकती आग में उसकी खुशी जल कर भस्म हो गयी थी।

और आज उस बात को जैसे एक जमाना गुजर गया। उसे आशा थी, कि एक-न-एक दिन मंजूर या शकूर या कोई और जान-पहिचान का उस अँधेरी गली में आता-जाता दिखायी पड़ जायगा। पर कहाँ?

सकीना उन्हें याद कर किस दिन न रोयी थी? वह आज भी उन्हें याद कर रो पड़ी। ओह, अगर इस नरक में आकर वह न पड़ी होती, तो अब तक....वह प्रभा....और सकीना और भी फफक कर रो पड़ी। क्या उसकी ज़िन्दगी....अब क्या भरोसा....उसका खुदा भी पता नहीं कहाँ सोया पड़ा है?....अगर एक बार भी उसे इस कोठे से उतर जाने का मौका मिल पाता....आह! आह! हाय री तकदीर....

सकीना बुलबुल के गाल पर मुँह रखकर तड़प-तड़प कर रोने लगी। इस समय उसकी रूह तक रो रही थी। काश, उसके वश में होता....

तभी दूर सड़क से आवाज आयी, ' रूसियों ने बर्लिन पर अधिकार कर लिया....हिटलर लापता....जर्मन हार गये....दैनिक अखबार.... प्रताप खरीदिये....प्रताप....हिटलर हार गया...."

हिटलर हार गया! सकीना उचक कर उठी और बारजे की ओर भागी, कि बन्द दरवाजे से टकरा गयी। उसमें ताला लगा था। वह ताले को झकझोरने लगी कि बूढ़ी की आवाज आयी, "झम्मन! झम्मन! जरा देख तो कौन है?"

सकीना हताश लपक कर फिर अपनी चारपायी पर आ गयी। आवाज आ रही थी, "हिटलर हार गया...."

सच, वह कह रहा है, हिटलर हार गया! हिटलर हार गया! वह

शैतान, वह जालिम हार गया ! वह इन्सानों का खून पीने वाला हार गया ! वह मजदूरों का दुश्मन हार गया !

सकीना का हृदय खुशी से उछलने लगा । वह उस वक्त सब-कुछ भूल गयी । उसने सोये बुलबुल को उठाकर अपनी गोद में कस लिया और हर्ष के मारे विक्षिप्त-सी हो चीख-चीख पड़ी, "मेरे बेटे ! मेरे लाल ! तेरा दुश्मन हार गया ! तेरे बहादुर मामाओं की जीत हो गयी, बेटा ! तू खुश हो, खुश हो, बेटे ! मेरे बहादुर भाइयों की जीत मेरी जीत है, मेरी ज़िन्दगी है ! इन्सानों का दुश्मन मौत के घाट उतार दिया गया ! आज दुनिया के इन्सानों को एक नयी ज़िन्दगी मिल गयी ! अब मुझे एक नयी ज़िन्दगी मिलेगी, तुझे एक नयी ज़िन्दगी मिलेगी ! हर मजदूर को एक नयी ज़िन्दगी मिलेगी, हर मजदूर के बेटे को एक नयी ज़िन्दगी मिलेगी ! खुशहाली, तरक्की, अमन ! दुनिया के कातिल खतम हो गये ! अब खुशहाली, तरक्की, अमन ! दुनिया को गुलाम बनाने वाले गारत हो गये ! दुनिया ने एक नयी आजादी हासिल की ! बेटा, बेटा...."

"क्या शामत आयी है तेरे बेटे की ?" बूढ़ी चीखती हुई तभी सकीना के पास आ धमकी और उसकी असाधारण रूप से खुशी से नाचती आँखें, तमतमाया चेहरा देख चीख कर बोली, "तू पागल हो गयी है क्या ?" और जोर से एक तमाचा उसके मुँह पर दे मारा !

सकीना जैसे खुशियों के आसमान से गिर कर नरक की आग में आ पड़ी । वह ऐसे चुप हो गयी, जैसे उसकी जबान, उसके प्राणों और उसकी आत्मा की खुशी की चीखों को किसी हिटलर की नानी ने एक क्षण के लिए अपनी मुट्ठी में दबा लिया हो ।

पर हिटलर हार गया ! यह नानी भी एक दिन....मंजूर, शकूर, प्रभा, मजदूर भाइयो ! तुम इस वक्त कहाँ हो, कहाँ हो ? और सकीना गोद में सोये बुलबुल को लिये ही चारपायी पर सिर पटक कर सिसक-सिसक कर रो पड़ी ।

तीसरा भाग

"कामरेड ! कामरेड !" सूखे गले से पुकारकर मंजूर सूखे होंठों पर अपनी सूखी जीभ बार-बार फेरने लगा। उसका सारा शरीर फटा जा रहा था। हाथ-पैर अकड़ कर निर्जीव से हो गये थे। सिर ऐसे दुख रहा था, जैसे उसमें कई-कई चीरे लगे हों। आँखों की पलकें बहुत कोशिश करने पर भी उठने का नाम न लेती थीं। शरीर के किसी अंग में जैसे हरकत करने की ताकत ही न रह गयी हो। सूखे गले से बहुत कष्ट से वह यह शब्द निकाल पा रहा था। प्यास के मारे उसका दम ऐसे घुट रहा था, कि वह किसी कामरेड को पुकारने से लिए सीमा से अधिक मजबूर था।

कई-कई मिनट के विलम्ब से कई बार उसने उसी तरह पुकारा। लेकिन एक बार भी उसे कहीं से कोई जवाब न मिला। कुछ समझने और सोचने की उसमें शक्ति होती, तो इस वक्त शायद उसे बहुत आश्चर्य होता। क्या यह किसी भी हालत में सम्भव था, कि वह इस हालत में पड़ा हो, और प्यास से तड़प कर अपने कामरेडों को पुकारे और कोई जवाब न आये ? नहीं, अपने साथियों के बीच कभी भी उसे इस तरह का आश्चर्य करने का मौका कहाँ मिला था। अगर उसमें सोचने-समझने की शक्ति होती, तो भी वह इस तरह की बात मन में कैसे

ला सकता था ? उस वक्त वह यही सोचता, कि शायद उसकी पुकार कामरेडों तक नहीं पहुँच रही है। वर्ना क्या ऐसा संभव होता ?

और धीरे-धीरे जब यह परिस्थिति असह्य हो उठी और उसका दम घुटने लगा और गले में काँटों की फाँस पड़ने लगी, तो अन्धक.र में गुम अपनी आत्मा को उसने बची-खुची पूरी शक्ति लगाकर झकझोरना शुरू किया। नहीं, नही, ऐसे नहीं चल सकता! उसे अब स्वयं ही कुछ करना पड़ेगा!

जाग्रत आत्मा ने अपना चमत्कार दिखाना शुरू किया। एक ऐसी शक्ति का फव्वारा उसके अन्तर से छूटने लगा, कि शरीर की विवशता की जंजीरें पट-पट टूट-टूटकर गिरने लगीं। उसने जोर लगाकर आँखें खोल दीं। अन्धकार ने जैसे चारों ओर से उस पर हमला बोल दिया। पलकें झपकने लगीं और दूसरे ही क्षण जैसे उसकी आत्मा के प्रकाश ने उस अन्धकार की सेना को पीछे ढकेल दिया। उसने चारों ओर अपनी मजबूत नजरें घुमा कर देखना शुरू किया। उत्तर की दीवार के पास एक धुँधली, घुटी-घुटी शिखा लौ दे रही थी। उस मुर्दा रोशनी के कारण ही जैसे चारों ओर का अन्धकार और भी गाढ़ा हो गया था। फिर उसने कान से अन्धकार में से जैसे कुछ सुनने की कोशिश की। सिर्फ एक धीमी-धीमी साँस लेने की आवाज़ उसे सुनायी पड़ी। उसने साँस आने की दिशा में घूरकर देखने की कोशिश की, लेकिन कुछ दिखायी न पड़ा। तब उसने उठने की चेष्टा की। लेकिन वह उठ न सका। हाथों पर ज़रा भी जोर देना असम्भव मालूम पड़ा। पैरों में बहुत कोशिश करने पर भी हरकत न हुई। क्या करता, पेट के बल ही वह रोशनी की ओर खिसकने लगा। रोशनी के पास पहुँचते-पहुँचते उसका शरीर फिर जवाब देने लगा। पसीने की धारें चेहरे से बरसने लगीं। आँखों की पलकों से टप-टप पसीने की बूँदों ने चू-चू कर आँखों को बन्द कर देने के लिए विवश कर दिया। उसने कई बार हाथ उठाकर आँखों को पोंछना

चाहा, लेकिन हाथ उठ न सके। अजीब मजबूरी थी। वह शान्त पड़ा रह कर सुस्ताने लगा।

काफ़ी देर के बाद वह फिर सँभला। मुँह के पास ही लालटेन रोशनी से ज्यादा धुआँ उगल रही थी। साँस लेना मुश्किल हो रहा था। सीड़न और धुएँ से भरी गन्दी हवा को नाक इनकार कर रही थी, लेकिन फेफड़ों की माँग पूरी करने को वह मजबूर थी। कान के चारों ओर भन-भन की आवाजें गूँज रही थीं। बड़े-बड़े मच्छर उसे जैसे मजबूर समझ कर ही पूरी आज़ादी से हमला कर रहे थे। नम फर्श से चढ़ कर न जाने कैसे-कैसे कीड़े उसके शरीर पर रेंग रहे थे और काट रहे थे। उसे लगता था, जैसे खटमलों से भरी नंगी चारपाई पर उसे नंगा कर, उसके हाथ-पाँव बाँध कर लेटा दिया गया हो और भूखे मच्छरों की एक फौज को उस पर छोड़ दिया गया हो। अन्दर प्यास की आग तप रही थी और ऊपर से जैसे जहर में भीगी सूइयाँ रोम-रोम में चुभायी जा रही हों। उफ़!

हाथों की मजबूरी से बेखबर उसने लालटेन की बत्ती उकसाने के लिए दाहिना हाथ उठाया कि उसे लगा, जैसे उसके प्राण ही निकल गये हों। उसके मुँह से एक चीख निकल गयी और जैसे एक गहरा ज़ोफ़ आ गया।

होश लौटा, तो पसीने से सारा शरीर शल हो रहा था और उससे हजारों मच्छर चिपक गये थे। उसने शरीर को इधर-उधर हिलाकर एक पूँछकटे बैल की तरह उन्हें उड़ाना चाहा। लेकिन कदाचित मच्छरों को यह ज्ञात था, कि उन्हें उड़ाने का हथियार उसके पास नहीं है। वे वैसे ही चिपके रहे और सूई चुभोते रहे। उसके शरीर का कण-कण झँझाहट से जल रहा था।

उसने एक बार फिर उस गहरे अन्धकार में घूर कर देखा, लेकिन अन्धकार के सिवा कुछ दिखायी न पड़ा। तब वह लालटेन की बत्ती

उकसाने की तरकीब सोचने लगा। बेहाथ-पाँव के-से आदमी के लिए यह काम असम्भव नहीं, तो बेहद कठिन जरूर था। उसे ज़रा भी किसी पहलू चैन रहता, तो किसी तरह भी पड़ कर वह काट लेता। लेकिन यहाँ तो यातनायें भी भयंकर से भी भयंकर हो रही थीं। वह क्या करता? किसी तरह उसने दाँतों से हाथ का काम लिया। मुँह मिट्टी के तेल की गर्द भरी बदबू और किनकिनाहट से भर गया। उसने थूकने के लिए मुँह उठाया, तो पास ही पड़े दूध-भरे तसले पर नजर पड़ गयी। मुँह का थूक मुँह में ही रह गया। उसने एक भूखे बाघ की तरह तसले में मुँह लगा दिया और गट-गट पीने लगा।

तभी उसे एक मरी-मरी, धीमी-धीमी आवाज सुनायी पड़ी, "काम-रेड!"

मंजूर ने मुँह उठा कर आवाज़ की ओर देखा। उस कोने में काला-काला कुछ हिल रहा था। उसने पुकारा, "कामरेड!"

जवाब में फिर वही कराह-भरी धीमी आवाज आयी।

मंजूर उस हालत में भी जैसे उछल पड़ा। उसके शरीर का पोर-पोर पीड़ा से तड़प गया। उसने फिर पुकारा, "कामरेड नरेन?"

"पानी!" उधर से डूबती हुई-सी आवाज़ आयी।

मंजूर की हालत उस समय वही हुई, जो हाथ-पाँव बँधी उस माँ की होती है, जिसका लाड़ला बेटा दूर से दम तोड़ता उसे पुकारता है। मजूर बेखुद हो कर उठा कि धड़ाम से गिर पड़ा। उसे लगा, जैसे दम निकल गया हो। एक प्राणलेवा चीख उसके मुँह से निकलते-निकलते रह गयी।

"क्या हुआ, कामरेड?" गले की फाँस से किसी तरह लड़कर आवाज आयी।

प्राणों का जोर लगा कर अपने को सँभालते मंजूर बोला, "कुछ

नहीं ।....इधर देखो, कामरेड....इधर लालटेन की ओर । आ सकते हो यहाँ तक ? मैं....मैं...."

"पानी...."

"पानी नहीं, दूध है । आओ, कामरेड !" मंजूर के प्राणों का सारा प्यार और चिन्ता जैसे उसके गले में उमड़ी पड़ रही थी । उसकी उस कम्बल की गठरी की ओर उठी आँखों में एक ऐसा दर्दनाक सवाल था, जिसके उत्तर में ही जैसे उसकी जिन्दगी और मौत का निबटारा हो ।

कम्बल हिला । मंजूर की आँखें चमकीं । और दूसरे क्षण लड़खड़ाता हुआ नरेन उसके पास गिर पड़ा । मंजूर जैसे उसे गोद में उठा लेने को तड़प उठा । उसके टूटे-सूजे हाथ-पाँव काँप कर रह गये । उसने बेताबी से अपना शरीर घसीट कर, अपना मुँह उसके पट्टी बँधे सिर पर रख दिया और बोला, "नरेन ! कामरेड...."

कोई जवाब नहीं । जोर-जोर की घर्र-घर्र साँसों की आवाजें सुन मंजूर छटपटा उठा । वह नरेन की गर्दन पर मुँह रख चीखा, "कामरेड ! कामरेड !"

नरेन जैसे पानी में चुभुकता बोला, "पानी ।"

"यह लो, यह दूध रखा है । पी तो लो ।"

नरेन ने मुँह खोला । मंजूर की आत्मा तड़पी और उसने अपने दाँतों से तसले को उठा कर उसके मुँह से सटा दिया । गले में दूध की धारा गिरते ही नरेन के हाथों ने जैसे अनजाने ही उठ कर तसले को पकड़ लिया ।

कई घूँट पीने के बाद नरेन ने कहा, "तुम...."

"मैं....मैं पी चुका हूँ । तुम सब पी जाओ । मुझे बिल्कुल प्यास नहीं है ।" और उसकी आँखें मुस्कराने लगीं ।

नरेन ने तसला खाली कर एक लम्बी आराम की साँस ली । मंजूर की आत्मा को जैसे बसन्त की हवा छू गयी । वह सिहर कर होंठों में ही

बोला, "कामरेड, यह आत्मा भी क्या चीज है ? जल्लादों ने जुल्म के हजारों तरीके निकाले, लेकिन इसे जरा भी ज़रब न पहुँचा सके। शरीर छलनी हो जाने पर भी आत्मा कैसे मुस्करा सकती है, यह आज मैंने देख लिया !"

"हाँ," नरेन ने मुस्करा कर कहा, "इतिहास बताता है, कि पहले जमाने में ऐसी आत्मा चन्द लोगों को ही मिली थी। सुकरात, ईसा, जोन वगैरा। बाद मे इनकी संख्या दिन-दिन बढ़ती गयी। हमारे यहाँ के क्रान्तिकारियो, भगत सिंह, आजाद, बिस्मिल वगैरा की संख्या बढ़ती ही नजर आती है। और...." तनिक रुक कर बोला, "अब तो लगता है, जैसे हर इन्सान की आत्मा उस इस्पाती, अमर, बलिदानी मुस्कान को प्राप्त करके ही दम लेगी। यह लेनिन...."

"मुझे तो लगता है," बीच ही में मंजूर बोल पड़ा, "कि लेनिन की महान आत्मा हर इन्सान की आत्मा में मुस्करा उठेगी। तुमने लेनिन की वज्र आत्मा की मुस्कान की कभी कल्पना की है ?"

"हाँ, अपनी आत्मा की नन्हीं मुस्कान का अनुभव करके ही मैं कल्पना कर लेता हूँ। यदि ऐसा न होता, तो मेरी आँखों के सामने इस अँधेरे में भी यह जगमग-जगमग ज्योति कैसे जलती दिखायी पड़ती ?"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे, जैसे किसी गम्भीर बात को बड़ी गहरायी से सोचने में मगन हो गये हों।

मच्छरों की दुन्दुभी बजती रही। कीड़ों का हमला होता रहा। सीलन और बदबूदार धुएँ से नाक भरती रही। लेकिन जैसे वे इनसे बेखबर हो गये हों। आत्मा में डूब कर सच्चाई से आँख मिलाने में इन्सान शायद इसी तरह शारीरिक पीड़ाओं से बेखबर हो जाता है।

नरेन ने धीमे से मंजूर के सिर की पट्टी पर हाथ रख कर कहा, "जालिमों ने सोचा होगा, कि सुबह में हमारी लाश ही रह जायगी।"

"नहीं," मंजूर ने मुस्करा कर कहा, "वे यह अच्छी तरह जान गये हैं कि हमारा मरना आसान नहीं। फिर हमारी मौत से भी उन्हें हमारी जिन्दगी से कम डर नहीं लगता। वे जानते हैं कि जेलों की दीवारों के बाहर एक ऐसी जन-शक्ति है, जो हमारी पूरी खबर रखती है, जो हमारी मौत और जिन्दगी का पूरा-पूरा हिसाब इनसे लेने के लिए संघर्ष चला रही है। ये जालिम जितना इस शक्ति से डरते हैं, उतना किसी से नहीं।"

"और शायद इसीलिए ये हिटलरी शैतान हमें जिन्दगी और मौत के बीच लटकाये रखने की साजिशें करते हैं।" कह कर नरेन हँसने को हुआ, तो लगा, जैसे उसका सिर फट जायगा।

"हाँ, यह दूध शायद इसीलिए यहाँ रख छोड़ा था।....तुम्हें बहुत चोट लगी है न ?" मंजूर ने सहानुभूति से भर कर पूछा।

"नहीं, तुमसे तो कम ही मालूम होती है। तुम तो शायद उठ-बैठ भी नहीं सकते ?" नरेन का स्वर चिन्तापूर्ण था, "जब हमें पुलीसवान में बोरों की तरह उठा-उठा कर फेंका गया, तो मुझे कुछ-कुछ होश था। मैंने देखा था कि तुम्हारे हाथ, पैर, सिर....हम बीसियों आदमी लादे गये थे। शायद सब बेहोश थे, सभी एक ही तरह घायल। मुझमें भी ज्यादा हूब न थी। फिर भी कुछ देखने-सुनने लायक होश ज़रूर था।" नरेन ने कह कर मंजूर के चेहरे पर हाथ फेरा।

"लेकिन यहाँ तो हम दो ही हैं। बाकी साथी...."

"मुझे पता नहीं। रास्ते में ही मैं भी बेहोश हो गया था। हो सकता है, वे कहीं और जगह हमारी ही तरह पड़े हों !....तुम्हारा जी कैसा है ?"

"अच्छा ही है। जिस्म की पीड़ा से ज्यादा तकलीफदेह यह मच्छरों

और पिस्सुओं का दुहरा हमला हो रहा है !" मंजूर ने बात का विषय बदलना चाहा।

"उत्तराधिकार की अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के साथ हमारी सरकार को ये दो चीजें भी अंग्रेजों से मिली हैं। तुम्हें मानना पड़ेगा, कि जेल-मैनुअल के बाहर जेलरों के हाथ में ये दो ऐसे हथियार हैं, जिस पर किसी का बस नहीं और न इनकी मार की शिकायत की किसी अदालत में सुनवायी ही हो सकती है।" मुस्करा कर नरेन ने कहा, "कहो तो तुम्हें कम्बल ओढ़ा दूँ ?"

"इस तीसरी बेशकीमत चीज का नाम गिनाना शायद तुम भूल गये थे। इन्हें जहाँ गर्मी में ओढ़ने-बिछाने से रहे, वहीं अगर जाड़े में बिछाया-ओढ़ा, तो ऐसा लगे, जैसे पिस्सुओं की माँद में कोई घिर गया हो।"

"हमारी अहिंसावादी सरकार को इन जीवों की भी चिन्ता करनी पड़ती है ! आराम से इनके रहने-सहने, खाने-पीने का प्रबन्ध करना भी तो परम धर्म है ! फिर भी तुम...."

"मैं क्या कह रहा हूँ ? मेरे शरीर का अंग-अंग तो उनकी अहिंसा को आज दाद दे रहा है !" कह कर मंजूर धीमे से हँसा।

"मालूम होता है, तुम्हें चोटें गहरी लगी हैं।"

"मारने वाले जब अन्धे हो जाते हैं, तो चोटों की कोई हद नहीं होती। फिर भी मैं मँरूगा नहीं। चोटों की सेज पर ही आत्मा की शक्ति निखरती है। आत्मा की शक्ति को चोट पहुँचाने वाले हथियार की ईजाद अभी ये जल्लाद नहीं कर पाये हैं !"

नरेन ने उसकी आवाज ध्यान से सुनी, तो उसे यह मालूम होते देर न लगी, कि यह मजबूत आवाज़ कहाँ से, कैसे और किन परिस्थितियों में आ रही है। वह कुछ सोच कर अपने पर जोर दे, उठ बैठा और मंजूर के शरीर पर प्यार के हाथ फेर कर महसूस किया कि उसके हाथ-पाँव

काफी सूज गये हैं। मन-ही-मन एक व्यथा से भर कर वह थोड़ी देर तक वैसे ही हाथ फेरता रहा। मंजूर के सिर की पट्टी पर जब उसका हाथ पहुँचा, तो वह जैसे घबरा गया। पट्टी भींगी हुई थी। खून का बहना अब तक बन्द न हुआ था या जोर लगने से शायद फिर बहने लगा हो। उसने अपने स्वर को स्वाभाविक करके कहा, "कामरेड, अब जरा आराम किया जाय, तो कैसा ?"

"आराम ?" मंजूर एक नफरत-भरी हल्की हँसी हँस कर बोला, "जब तक हमारे आराम के डाकू जिन्दा हैं, हमें आराम कहाँ से मिलेगा, कामरेड ?"

नरेन समझ गया, कि इस बात को आगे बढ़ाने का मतलब मंजूर की उत्तेजना को और भी बढ़ाते जाना है। वह मंजूर के गुस्से और नफरत की भावना को खूब समझता है। जानता है कि उसके अन्तर में वह जलती हुई आग क्षण-क्षण बढ़ना ही जानती है, घटना नहीं। नरेन के मन में खुद कम गुस्सा और नफरत न थी। फिर भी वह काबू रखने की कोशिश कर लेता था। उसने बिना कुछ कहे लालटेन की ओर हाथ बढ़ा बत्ती बिल्कुल कम कर दी और मंजूर के सिर के पास की दीवार से पीठ टेक कर दोनों पैर फैला, धीरे से उसका सिर अपनी गोद में ले, उसके चेहरे पर हाथ फेरते एक गहरी जंभुआई ली, जैसे उसे जोर की नींद आ रही हो।

मंजूर मन-ही-मन मुस्कराया। इधर महीनों से वह देखता आ रहा है, कि जब भी वह जोश में आ कर कुछ बोलने लगता है, तो नरेन उसके जोश, गुस्से और नफरत के उबाल को अपने स्नेह से ढँकने की कोशिश करने लगता है। तब वह जैसे उसके सच्चे स्नेह के भार से दब-सा जाता है और उसे अपने को शान्त कर लेने के सिवा कोई राह नहीं रह जाती। उसे कई बार ऐसा लगा है, जैसे नरेन उसकी माँ हो। ऐसा अनुभव कर वह झुँझला उठता है। क्या वह अब भी कोई बच्चा

है, जो यह नरेन माँ बनकर उसे फुसलाने की कोशिश करता है ? फिर भी वह न कुछ बोल पाता है और न कर पाता है। नरेन के इस स्नेह के बल के सामने वह सचमुच बच्चा ही बन जाता है। जैसे उसे उसके अनजाने ही नरेन के स्नेह के प्रति लोभ हो उठता हो। इसमें झुँझलाहट के ऊपर जैसे उसे एक आध्यात्मिक मजा भी मिल रहा हो। वह जानता है कि जिस तरह माँ अपने बच्चे का सब-कुछ खूब अच्छी तरह जानती है, उसी तरह यह नरेन भी उसे खूब अच्छी तरह जानता है। जानने वाले से कोई रूठ ले, मचल ले, अपनी नाराजी दिखा ले, लेकिन लड़ नहीं सकता। और उसका स्नेह—वह स्नेह कोई आवेश-जनित या भावुकता का तो फल नहीं होता, वह तो जैसे उसके पूरे चरित्र के ज्ञान, उसके पूरे अस्तित्व के प्रति अगाध प्यार, उसके विचारों के प्रति पूर्ण सहानुभूति का हार्दिक उद्‌गार होता है। उसके विरुद्ध खड़ा कोई कैसे हो सकता है ?

नरेन उसके चेहरे पर हाथ फेरता रहा, मच्छरों को हाँकता रहा। और मंजूर सोचता रहा, सोचता रहा। और सोचते-सोचते ही उसे ऐसे नींद आ गयी, जैसे बीमार बच्चा अपनी माँ की गोद में सब दुख-दर्द भूल सो जाये।

नरेन की भी यही कोशिश रही कि मंजूर निर्विघ्न सोता रहे। वह उसी तरह उसके चेहरे को सहलाता रहा और मच्छरों को हाँकता रहा।

भन-भन की दुन्दुभी बजती रही। पिस्सुओं का हमला होता रहा। दुर्गन्धपूर्ण हवा में साँस घुटती रही। दर्द से देह फटती रही। और नरेन वैसे ही दम साधे पड़ा रहा। उसके हाथ अपना काम करते रहे। और उसके कानों मे मंजूर की गहरी साँसें एक रागिनी की तरह बजती रहीं।

तभी घंटे की आवाज हुई। अन्धकारपूर्ण सन्नाटे की निर्जीव छाती

पर जैसे घन की चोटें पड़ती जा रही हों। नरेन ने होंठो में ही गिनना शुरू किया—एक, दो, तीन, चार....

बारह बज गये। घंटे की आवाज अन्धकार के सोये तारों को झन-झनाती हुई धीरे-धीरे गुम हो गयी। फिर बूटों की ठक-ठक आवाजें आयीं। फिर कोई पंछी अचानक ऐसे चीख पड़ा, जैसे साँप ने उस पर हमला बोल दिया हो। उसकी चीख सुन कर जैसे हजारों पंछी चीख उठे। उनकी दर्दनाक चीखों से जैसे अन्धकार का कलेजा दहल गया। उनके हजारों पंखों की ऐसी आवाजें होने लगीं, जैसे खच-खच तलवारें चोट कर रही हों।

हजारों पंछी और एक साँप! नरेन को लग रहा था, जैसे एक तुमुल युद्ध छिड़ा हो। वह ध्यान से उन चीखों और पंखों की खच-खच को सुनता रहा। और कल्पना की आँखों से देखता रहा कि एक साँप फूँ-फूँ कर रहा है और हजारों पंछी उस पर ठोरों और पंखों की मार कर रहे हैं और ऐसे चीखे जा रहे हैं, जैसे अपने दूसरे भाइयों को भी इस खतरे से आगाह कर रहे हों और दुश्मन के खिलाफ लड़ने क न्हें पुकार रहे हों।

और थोड़ी ही देर में जैसे वह चीखों की आवाज़ खुशियों के शोर में बदलने लगी। मन-ही-मन खुश होते नरेन ने अपनी कल्पना की आँखों से देखा, कि साँप भाग रहा है और जीत के नारे लगाते पंछी उसका पीछा कर रहे हैं।

फिर धीरे-धीरे शोर शान्त होने लगा। अन्धकार अपने में पड़ी दरारों को जोड़ने लगा और सन्नाटा, जो आकाश में बहुत दूर ऊपर भाग गया था, फिर नीचे उतर अन्धकार की छाती पर अपने पाँव जमाने लगा। अचानक लोहे की झनझनाती एक खड़खड़ाहट सुन नरेन चौंक पड़ा। यह वार्डर उसके कमरे का ताला खटखटा कर देख रहा होगा कि कहीं खुला

ता नहीं है। नरेन के होंठों पर एक मुस्कान उभर आयी। 'ये कम्बख्त समझते हैं कि हमारे पास कोई जादू की शक्ति है कि हाथ-पाँव तोड़ कर डाल दो, तो भी हम निकल कर भाग सकते हैं। और फिर ये ताले ? इन्हें भला अन्दर का कोई कैदी खोल ही कैसे सकता है ? यह नौकरशाही विश्वास में भी विश्वास नहीं करती। अविश्वास इसकी रग-रग में समायी रहती है। जेलर डिप्टी जेलर पर विश्वास नहीं करता, डिप्टी जेलर वार्डर पर विश्वास नहीं करता, वार्डर नम्बरदार पर विश्वास नहीं करता और नम्बरदार नम्बरदार पर विश्वास नहीं रखता। जैसे सब एक-दूसरे से डर रहे हों, कि न जाने कब कौन धोखा दे दे और उसकी जान पर बन आये।' नरेन सोचे जा रहा था, कि मद्धिम रोशनी का एक जालीदार टुकड़ा उसकी आँखों के सामने आ पड़ा। यह वार्डर अन्दर देखने की कोशिश कर रहा है। ताले पर हाथ को विश्वास नहीं। हाथों पर आँखों को विश्वास नहीं। यह अविश्वास की नींव पर खड़ा नौकरशाही का महल है, जिसके अन्दर सोये 'राजा' को अपनी नींद पर भी विश्वास नहीं होता। यह महल कै घड़ी खड़ा रह सकता है ? जिस हाथ को अपने हथियार पर विश्वास न हो, वह अपनी रक्षा कब तक किये रख सकता है ?

नरेन सोचता रहा और मुस्कराता रहा। और न जाने सोच की किन-किन कड़ियों से होता वह जंगल के उस जापानी कैदखाने में पहुँच गया, जहाँ उसने पिछले महायुद्ध में यातना के कुछ दिन काटे थे। उसने उस यातना और इस यातना का मुकाबिला किया, तो उसे लगा कि शायद सब फासिस्ती हुकूमतें एक-सी ही होती हैं, उनके यातना के तरीके भी एक-से ही होते हैं। फिर उसे हिन्द फौज की ज़िन्दगी याद आयी और फिर जैसे यादों के एक रेले ने अपनी तेज धारा में उसे बहाना शुरू कर दिया—

माँ के चिर-वियोग और भाभी के लापता और बरबाद होने के

समाचार से नरेन की ज़िन्दगी के बचे-खुचे दो खम्भे भी भहरा कर गिर पड़े। ज़िन्दगी वीरान, बेसहारा और निरर्थक हो उठी। मन जैसे सदा के लिए उदास हो गया, हृदय टूक टूक हो गया, मस्तिष्क में कुछ समझने-सोचने की ताक़त ही न रह गयी। जड़ से उखड़ कर ज़मीन पर गिर जाने वाले पेड़ की जो हालत होती है, वही उसकी हलत हुई। जिन्दगी में कोई रस ही नहीं रह गया, न आशा, न निराशा; न दुख, न सुख; न लालसा, न लोभ; न इच्छा, न अनिच्छा; न प्रेरणा, न शक्ति; वीरान, विस्तृत रेगीस्तान की तरह।

चाचा, चाची ने समझा, दिल पर चोट लगी है, धीरे-धीरे सँभल जायगा। चाची को अपनी कोंख से अब कोई उम्मीद न रह गयी थी। इसीलिए नरेन के प्रति वह ईर्ष्या और दुर्भावना उनमें न रह गयी थी। वह अब उसे मानने लगी थीं और उसे लेकर मन्सूबें भी बाँधने लगी थीं—नरेन का ब्याह करेंगी, घर में बहू आयेगी, सब-कुछ गुलज़ार हो उठेगा....

चाचा नरेन पर छिपे-छिपे निगाह रखते थे, लेकिन खुलकर उसे छेड़ने या समझाने-बुझाने की हिम्मत न करते थे। एक बार उसे छेड़ कर वह समझ चुके थे कि नरेन किस पानी का आदमी है। यह गलती वह फिर दुहराना नहीं चाहते थे। वे उसके आने के पहले अपने जीवन और संसार से बिल्कुल उदासीन हो गये थे। 'नये मुसलमान' का वह जोश-खरोश और अन्धता न रह गयी थी। नरेन के लौट आने के बाद फिर जैसे ठूँठ में कोंपलें फूटने लगीं। वह नरेन के साथ बड़े स्नेह और आदर से पेश आते और कभी-कभी उसके कान में बड़ी होशियारी से यह बात भी डाल देते कि 'बेटा, अब हमी तो तुम्हारे माँ-बाप हैं। जो-कुछ यहाँ है, सब तुम्हारा ही है। अब तुम्हीं सँभालो यह, ताकि मुझे सन्ध्या-पूजा के लिए छुट्टी मिले। उमर ढल गयी। पके आम का क्या भरोसा?'

लेकिन उखड़े पेड़ की जड़ मे गगरों पानी भी गिराना बेकार था। नरेन का उचटा मन रोज-रोज और भी उचटता गया। कभी-कभी उसका जी होता, कि वह आत्महत्या कर ले। क्या रह गया है अब ज़िन्दगी मे ? अब उसे अफसोस होता, कि क्यों नहीं वह लड़ाई में ही मार डाला गया ? क्यों उसे छुड़ाने का वह आन्दोलन हुआ ? क्यों वह लाल किले से मुक्त किया गया ? ओह ! अगर वह जानता कि जिनकी यादों को हृदय के कोनों मे छिपाये इतनी-इतनी मशक्कतें सहता रहा, वही नहीं रहे, तो....तो....और नरेन छटपटा कर चीख पड़ता, "ओह, मै मर क्यों नहीं जाता ?"

इस बीच वह कई बार अलीम के अब्बा से मिल चुका था। वह उसे देखते ही फूट फूट कर रो पड़ते थे। नरेन उनसे बहुत-कुछ पूछना चाहता था, लेकिन वह कुछ भी जैसे न समझते हों। वह सूख कर काँटा हो गये थे। सिर और दाढ़ी के बड़े-बड़े लटे पके बाल उनके शरीर पर बोझ-से मालूम पड़ते थे, उनकी आँखें गढ़ो मे धँस गयी थीं और हमेशा कीचड़ में लटी रहती थीं, उनसे सदा आँसू ऐसे बहते रहते थे. जैसे किसी बेजबान की अन्धी आँखों से। उन्हे देखकर नरेन का दिल रो पड़ता। उसे उस वक्त सब याद आता—वह रंग-बिरंगी लपटें, वह सोने-चाँदी की चमकें, वह बेरें, वह दरवाजें से झाँकती दो मुस्कराती, प्यार से लबालब-भरी आँखें, वह....वह....और नरेन आँखों से ढुलकती आँसू की बूँदों को कुहनियों से पोंछ लेता। उसका दिल सिसक उठता। ओह, क्या से क्या हो गया ?

वह अलीम के अब्बा को कई बार अपने घर ले आया। कई बार कुछ खाने को दिया। लेकिन वह आँसू बरसाते उसकी ओर देखते भर रहे। उन्होंने कुछ न खाया, कुछ न पिया।

एक दित नरेन अपनी वर्दी पहन कर थाने पर गया कि शायद वहाँ भाभी का कुछ पता लग जाय। सभी से पूछा, लेकिन कोई कुछ न बता

सका। ज्यादातर नये लोग वहाँ आ गये थे। पुरानों में भी जो थे, उनसे भी कुछ मालूम न हो सका। उनका कहना था कि एक-आध ऐसी औरतें यहाँ आयी होतीं, तो उन्हें ख्याल भी होता। उस जमाने में तो रोज दर्जनों लायी जाती थीं। उनमें कितनों की लाशें ही सुबह में मिलतीं और कितनी ही भगा दी जाती थीं। कौन जाने फिर वह किस घाट लगीं? गोरों और बड़े-बड़े अफसरों की अमलदारी थी। किसी को चूँ तक करने की हिम्मत कहाँ थी? गोली, शराब, औरत और खून के सिवा यहाँ कुछ भी दिखायी न पड़ता था। दिन-रात यहाँ औरतों की चीखें गूँजा करती थीं। एक भयानक आतंक से हवा लरजती रहती थी।

नरेन वापस लौटा, तो उसकी आत्मा उसकी मलामतें कर रही थी। ओह, जिस वक्त वह अंग्रेजी हुकूमत उसकी भाभी पर ये सितम तोड़ रही थी, उस वक्त वह अंग्रेजों की तरफ से लड़ रहा था। उसे लगा, इस अत्याचार में जैसे उसका अपना भी हाथ हो। वह एक धिक्कार की आग में उसी वक्त से जलने लगा। उसकी समझ में न आता था, कि इस हालत में उसकी भाभी उसे मिल भी जाती, तो वह कैसे उसे अपना मुँह दिखाता?

भाभी के मर जाने की खबर उसे मिल गयी होती, तो कदाचित उसके दिल में यह भाव न उठे होते, जो उसके बारे में एक अनिश्चित-सी बात सुनकर उठे। न जाने कहाँ, किस हालत में होगी उसकी भाभी? अब उसे एक चिन्ता ने घेर लिया। उसकी आत्मा पर छायी वह गहरी उदासीनता अपना खोल उतारने लगी। जीवन में एक उद्देश्य सिर उठाने लगा, एक आशा आँखें झपकाने लगी, शायद ढूँढने पर भाभी कहीं मिल जाय।

और वह हफ्ते भर आस-पास चक्कर लगाता रहा। अपने थाने के पुराने दारोगा से उसके थाने पर जाकर मिला, शहर-कस्बों में खोज की, उसके रिश्तों की जगहों पर गया। लेकिन कहीं कुछ पता न चला।

हर तरह से निराश हो जब वह घर पर लौटा, तो उसके चाचा ने मुलायमियत से उसे समझाया कि वह अपनी जिन्दगी इस तरह बरबाद क्यों कर रहा है ? क्यों नहीं वह अब किसी काम-धाम में मन लगाता ? बेकार आदमी की तबीयत यो भी बहका करती है । उसे अपने को किसी काम मे उलझाना चाहिए । फिर वह देखेगा कि जिन्दगी की एक नयी राह आप ही खुल जाती है कि नहीं ? उसे अपने चाचा की बात माननी चाहिए । वह उसकी ही भलाई के लिए यह सब-कुछ कह रहे हैं ।

लेकिन नरेन की समझ मे जैसे कुछ आ ही न रहा हो । अब उसके दिमाग मे सिर्फ भाभी चक्कर लगा रही थी । उसे लगता था कि उसके अन्धकारपूर्ण जीवन में जैसे एक प्रकाश-स्तम्भ फिर उभर रहा हो । जो जिन्दगी निरावलम्ब हो चुकी थी, उसे जैसे एक जबरदस्त अवलम्ब मिलने की धुँधली आशा की झलक दिखायी देने लगी । उसे फिर एक बार पूरी गहराई से वे यादें आने लगीं—वह भाभी, उसके हृदय की पहली और आखिरी स्नेह-मूर्त्ति—वे बेरें, वे अबोध स्नेह की बातें, वे आँखों की बढ़ती हुई चमकें और उनको गहराई में काँपती हुई प्रेम की तरलता, वे आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें, वह गीत और वे प्यार के उलहने और....और....

और नरेन की आँखें बरस पड़ीं । हृदय में सोयी व्यथा तड़प-तड़प उठी । और उसकी आँसू बरसाती आँखों के सामने एक-एक दृश्य आता-जाता रहा । उसे बहुत अफसोस हुआ कि आखिरी बार वह उससे मिल भी न पाया । न जाने कहाँ वह बदकिस्मती की ठोकरें खाती पड़ी होगी । कौन जाने वह....

गाँव अपनी पुरानी रफ्तार से चला जा रहा था । शुरू-शुरू में नरेन के वापस आने पर सबने उससे सहानुभूति दिखायी थी, दिलचस्पी जाहिर की थी । फिर जब काफी दिन बीत गये और नरेन के रवय्ये में कोई फर्क

न आया, तो उनकी दिलचस्पी धीरे-धीरे कम होने लगी। उन्हें अपनी-अपनी परेशानियों से ही कहाँ फ़ुरसत थी कि एक बेकार आदमी के पीछे अपना दिमाग खराब करते। रात-दिन काम में फँसे रहने वाले आदमी सिर्फ़ काम करने वालों की ही इज्जत और मदद करते हैं। चाम उन्हें प्यारा नहीं होता, काम प्यारा होता है। यह क्या कि माँ मर गयी, तो हमेशा के लिए दिमाग ही खराब कर लिया। अरे भाई, किसके माँ-बाप नहीं मरते? आखिर हमारे माँ-बाप भी तो कभी मरे थे। दो-चार दिन गम मनाना अच्छा लगता है। वह सदमा भी क्या, जो आदमी अपने को बेकार कर बैठे?

गाँव एक ऐसी मशीन है, जो काम करने वाले को ही अपने पास रखती है। जो काम करना नहीं चाहता, उसे वह कुजात करके बाहर फेंक देती है, उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती।

लड़कपन के सभी दोस्त शुरू में नरेन के पास आये, उसे समझाया-बुझाया, कुछ करने की सलाह दी, मदद का वादा किया। लेकिन जब उन्होंने देख लिया, कि नरेन कुछ भी करने-धरने का नहीं, तो उन्होंने आप ही क़िनाराकशी अख्तियार कर ली। किसी पागल के पीछे पड़े रहने की उन्हें फ़ुरसत कहाँ थी। काम, काम, बस काम! काम नहीं, तो खाना नहीं, जिन्दगी नहीं। कलेजा फाड़कर काम करके रूखी-सूखी कमा लेने वाले एक मिनट भी बेकारी में गुजारने की हिमाकत हो कैसे कर सकते हैं?

जो गाँव नरेन के हृदय में एक खुशनुमा फूलों की क्यारी की तरह विदेश में रहते समय आबाद था, अब वही जैसे रेगिस्तान का एक टुकड़ा बन गया, जहाँ जैसे आठों पहर एक वीरानगी छायी रहती, जहाँ जैसे एक आदमी भी न बसता हो, जहाँ जैसे हँसी की एक ध्वनि भी कभी न उठती हो, जहाँ जैसे जिन्दगी का कोई निशान न रह गया हो।

नरेन को क्या मालूम कि वह गाँव उसके लिए अब वैसा क्यों हो

गया था ? नरेन को क्या मालूम कि लड़कपन और जवानी में क्या फर्क है? नरेन को क्या मालूम कि गाँव जहाँ लड़कपन में कुछ खेल-कूद लेने की इजाजत दे देता है, वहीं वह चाहता है कि हाथ पाँव सँभालते ही अपने काम में जुट जाओ, खेत-खलिहान की फिक्र करो, कुएँ-नहर की सोचो, दुकान-दौरी की बातें करो, काम-काज की चिंता करो, दुखड़े धन्धे में लग जाओ। वर्ना तुम्हारे लिए यह जिन्दगी न रह जायगी, मौत, केवल मौत रह जायगी; ये हरे-भरे खेत न रह जायेंगे, एक श्मशान का सन्नाटा छा जायगा; यह गुलजार बस्ती न रह जायगी, एक वीरान रेगिस्तान बन जायगा, जहाँ तुम्हारी पूछ एक मिट्टी के ढेले के बराबर भी न होगी। यही यहाँ की जिन्दगी है। काम के सिवा भी कुछ संसार में है, इन्हें जिन्दगी के आखिरी क्षण तक नहीं मालूम हो पाता। होश सँभालते ही पेट इन्हें अपने में इस तरह उलझा लेता है, कि फिर एक क्षण की भी कभी फुरसत नहीं देता। इनकी जिन्दगी एक मुसलसल थकान है, जिसे आराम मौत की गोद में ही मिलता है। इनकी आयु काम की एक ऐसी शिफ्ट है, जो मृत्यु की घंटी के साथ ही खत्म होने का नाम लेती है। इनके रात-दिन चिन्ता, मशक्कत और दुखड़े का वह काला सागर हैं, जिसका किनारा सिर्फ वैतरणी तट पर ही देखने में आता है। यही गाँव की जिन्दगी है, यही गाँव के गीतों की रागिनी है, यही गाँव की हँसी-खुशी, तर-त्यौहार, मेले-ठेले का शोर है। इस जिन्दगी, इस रागिनी, इस शोर में अगर तुम्हारा हिस्सा नहीं, तो तुम यहाँ जिन्दा नहीं रह सकते ! यहाँ बेकारों, बूढ़ों, बीमारों, अपाहिजों, कामचोरों और सुस्त लोगों का गुजर नहीं। यहाँ का जर्रा-जर्रा उनसे नफरत करता है और जल्द-से-जल्द एक मुर्दे की तरह निकाल फेंकता है।

आखिर चाचा कब तक बर्दाश्त करते? नरेन उन्हें प्यारा था, उसकी उन्हें जरूरत भी थी, उसे वह रख लेना भी चाहते थे। लेकिन इस तरह वह उसे कब तक रख सकते थे ? वह सब-कुछ समझा-बुझा कर देख

चुके थे, उसकी काफी नाजबरदारियाँ भी कर चुके थे, अच्छे-से-अच्छा खिलाया-पिलाया भी था, हर आराम की चिन्ता भी की थी। आखिर यह सब क्यों? इसीलिए न कि वह उनका हाथ बँटायेगा, उनका काम का भार हल्का करेगा और एक दिन उनके गुजारे का साधन बनेगा। एक शौक की इतनी बेकार चीज पाल रखने की तो उनमें ताकत न थी। सब-कुछ सोच-समझ कर, देख-सुन कर उन्होंने एक दिन यह तै कर लिया कि अब की खुल कर नरेन से वह कह देंगे कि....

लेकिन उन्हें कुछ कहने की जरूरत न पड़ी। एक दिन शाम के वक्त नरेन के नाम पर एक लिफाफा आया। नरेन ने उसे खोला, तो मालूम हुआ कि चिट्ठी जिला-कांग्रेस-कमेटी की तरफ से भेजी गयी थी। लिखा थाः

'प्रिय महाशय,

जय हिन्द!

आपने हिन्द फौज में शामिल हो कर देश के स्वतन्त्रता-युद्ध में जो महत्त्वपूर्ण योग दिया था, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। पूरा देश आपकी उस सेवा, त्याग तथा वीरोचित कार्य को प्रतिष्ठा तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। हम जिला-कांग्रेस कमिटी की ओर से आपको इस सराहनीय काम के लिए बधाई देते हैं तथा जिले की जनता की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हमें पूर्ण रूप से विश्वास है कि स्वतन्त्रता-युद्ध का इतिहास जब लिखा जायगा, तो उसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय हिन्द फौज का होगा, जिसमें आप-जैसे हिन्द फौज के वीरों के त्यागमय युद्ध का वर्णन निस्सन्देह स्वर्णाक्षरों में किया जायगा।

आपको ज्ञात होगा कि हिन्द फौज के वीरों को मुक्त करने का अन्दोलन कांग्रेस का अपना अन्दोलन था। कांग्रेस ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर अपने वीरों को मुक्त किया तथा उनकी सेवाओं के उपलक्ष में यह निश्चित प्रतिज्ञा भी की कि स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र सेना में हमारे हिन्द फौज के वीरों को उचित तथा सम्मानप्रद पद दिये जायेंगे।

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी, कि हमारे संघर्ष का एक नया दौर अब प्रारम्भ हो गया है। यह दौर पिछले सभी दौरों से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अब कांग्रेस को केवल अंग्रेजी सरकार से ही लोहा नहीं लेना है, बल्कि देश को दो टुकड़े करने पर उतारू होने वाली मुस्लिम लीग से भी मुकाबिला करना है। नेता जी ने हिन्द फौज का संयुक्त मोर्चा बना कर यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू-मुसलमान एक ही माँ के दो लाल हैं, और स्वतन्त्रता के युद्ध में वे दोनों कन्धे से कन्धा मिला कर अपना खून एक ही धारा में बहा सकते हैं। हिन्द फौज की इस शानदार परम्परा को आगे बढ़ाना उसके वीरों का सब से पवित्र और महान कर्त्तव्य है। इसके पथ में आने वाले हर रोड़े को हटाना हम-सब के लिए कितना आवश्यक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

अब चुनाव में अधिक विलम्ब नहीं है। यही अवसर है, जब हम यह दिखा सकते हैं कि देश के मुसलमान भी हमारे साथ हैं और कोई भी देश का विभाजन सहन नहीं कर सकता।

आप कृपा कर हमारे इस पवित्र महान् कार्य में हमें सहयोग दें। देश की सेवा का भार पुनः अपने कन्धों पर लेने को तैयार हो जायँ। हमें विश्वास है कि भारत-माता की यह पुकार कोई भी हिन्द फौज का वीर अनसुनी न करेगा।

आप कृपा कर शीघ्रातिशीघ्र इस कार्यालय में आ कर मिलें। अपनी वर्दी अपने साथ लाने की कृपा करें। बाकी सब प्रवन्ध हम कर लेंगे। भोजन, यात्रा तथा प्रचार-सम्बन्धी सभी खर्चे हम बर्दाश्त करेंगे। आप शीघ्र आ ही जाइये।

हिन्द फौज जिन्दाबाद! नेता जी जिन्दाबाद!

आपका,
टी० एन० पांडे,
मंत्री, जि० का० क०।'

यह चिट्ठी पढ़ कर नरेन के हृदय में एक बार फिर देश-प्रेम लहरें मारने लगा। उसे हिन्द फौज का वह जीवन याद आ गया। उसे वह दिन भी याद आ गया, जब उसने अपने खून से स्वतन्त्रता की शपथ पर हस्ताक्षर किये थे तथा प्रतिज्ञा की थी कि देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में वह अपने शरीर के खून की आखिरी बूँद तक अर्पण कर देगा। उसकी आँखों के सामने नेता जी का वह रूप और कानों में उनके वे अमर बलिदानी सन्देश गूँजने लगे। उसकी उदास आँखों में फिर जोश की लाली दौड़ गयी, उसके ढीले-ढाले अंगों में फिर जैसे बिजली की शक्ति तथा स्फूर्ति दौड़ गयी।

घर के अन्दर घुसने के लिए जब उसके कदम उठे, तो वे कदम एक फौजी के थे। उसने एक फौजी की ही तरह अपनी वर्दी डाँटी, बूट पहने, टोपी लगायी और सूटकेस हाथ में लटका चल पड़ा।

चाचा-चाची ने पूछा, बार-बार पूछा; लेकिन उसने कोई जवाब न दिया। उसके बूटों की आवाज ठक-ठक होती रही। जिस पगडंडी से वह गुजरा, लोग चिहा-चिहा कर उसकी ओर देखने लगे। उसके सधे हुए हाथ-पाँव एक बँधी हुई गति से हिल और चल रहे थे और उसके बूटों की आवाज भी एक ही गति से हो रही थी—ठक,ठक....

यह गाँव का स्कूल है। और वह भाभी का घर है। एक दिन गाँव छोड़ते समय वहाँ एक कोमल प्राण रहती थी, जिससे मिलने के लिए वह उस दरवाजे तक गया था और सिर फोड़ कर वापस लौट आया था। उसे सब याद है, सब। ये बातें भी कभी भूल पाती हैं ? नरेन ने उधर आँखें घुमा कर देखा। एक जला हुआ खँडहर जैसे अपना बेदाँत का मुँह खोल कर उसकी ओर देखता एक भयानक अट्टहास कर रहा था और कह रहा था, 'यहाँ अब कोई नहीं, कोई नहीं! क्या देखता है इधर....'

नरेन ने आँखें फेर लीं। उस वक्त वे आँखें फौजी की न रह गयी

थीं, एक वियोग-पीड़ित प्रेमी की थीं। उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। बूटों की आवाज मे कोमलता और लड़खड़ाहट घुस गयी।

तभी अपने चारों ओर उसे घूरती हुई आँखें नजर पड़ गयीं और उसके कानों को सुनायी पड़ा, "यह नरेन जा रहा है जाने कहाँ...."

एक दिन गाँव छोड़ने के लिए सबकी निगाहें बचाने की उसे जरूरत पड़ी थी और आज वह सबकी निगाहों के सामने से चला जा रहा है। उस दिन उसे रोकने वाले बहुत-से थे, माँ, भाभी....और आज कोई नहीं, कोई नहीं....

यह पोखरा है। यहाँ एक दिन छपाक की आवाज हुई थी। आवाज नहीं हुई थी, उसे किसी की याद दिलायी गयी थी और वह उससे मिलने को मचल उठा था। लेकिन आज—आज कोई आवाज नहीं, सब-कुछ शान्त है, सब-कुछ स्थिर है। कौन है, जिसकी याद दिलायी जाय ?

खेतों से आँखें घूर रही हैं। होंठ हिल रहे हैं, 'नरेन जा रहा है, नरेन जा रहा....'

हाँ, नरेन जा रहा है, एक फौजी की तरह नहीं, जिस तरह एक दिन वह आया था, बल्कि एक उदास, दुखी प्रेमी की तरह, जैसे उसका दिल रो रहा हो, उसकी आत्मा सिसक रही हो, उसके प्राण आहें भर रहे हों। सिर झुका है। आँखों में आँसू हिलोरे ले रहे हैं। हाथ बेजान हो झूल रहे हैं। पाँव लड़खड़ा रहे हैं। वर्दी ढीली-ढीली लग रही है। और बूट फिस-फिस आवाज कर रहे हैं, जैसे धरती की छाती के फोड़े फूटते जा रहे हों।....

अचानक घंटे की एक टन की आवाज हुई। लगा, जैसे सोयी रात कोई भयंकर स्वप्न देख कर चिहुँक गयी हो। नरेन ने चौंक कर सिर उठाया। एक बज गया।

मंजूर बेहोशी की नींद सो रहा था। मच्छरों की भनभनाहट कम हो गयी थी, जैसे भर-भर पेट खून पी कर उन्हें भी नींद आ रही हो, जैसे पेट भारी हो जाने से उनके पंख भी भारी पड़ गये हों। पिस्सुओं का उत्पात भी कम हो गया था। पेट भर जाने पर उत्पात करना कौन पसन्द करेगा ? लालटेन की बत्ती एक तार चुपचाप जली जा रही थी। हवा की ठंडक और दुर्गन्ध से शायद शरीर ने समझौता कर लिया था।

नरेन ने एक बार गौर से मंजूर के फूले चेहरे को देखा। और फिर उसके माथे को हाथ से सहलाता दीवार से सिर टिका दिया। आँखें भारी होकर मुँद गयीं। याद ं फिर अपनी कड़ी जोड़ी—

शहर के चौक के पास सड़क के किनारे ऊपर की मंजिल का एक बड़ा कमरा। नरेन पहुँचा, तो वहाँ बड़ी भीड़ थी। खद्दर के मामूली कपड़े पहने वे लोग बड़ी सरगर्मी से दो-दो, चार-चार की टोली में बातें कर रहे थे। नरेन वहाँ किसी को पहचानता न था। वह दरवाजे पर खड़ा-खड़ा अन्दर का तमाशा देखता रहा। बातों की भनभनाहटें गूँज रही थीं। सब के चेहरे पर एक अजीब तरह की परेशानी और व्यस्तता दिखायी दे रही थी। इधर-से-उधर लोग लपक-झपक के आते-जाते, और वे चेहरे ऐसे बनाये हुए थे, जैसे हर आदमी का अपना एक महत्व हो, जैसे उसके बिना कोई काम ही न हो सके। एक ओर दीवार से लग कर एक बड़े गद्दे पर खादी की सफेद चादर बिछी थी। दीवार से सटे गाव तकिये पर कुहनी टिकाये एक युवक बैठा था। उसका कुर्ता, धोती और टोपी काफी अच्छे खद्दर के मालूम पड़ते थे। चमचम चमक रहे थे। वह गोरा था। चेहरा भरा-भरा और रोबीला था। पतली टोपी के नीचे उसका उन्नत ललाट प्रतिभा की चमक बिखेर रहा था। काली-काली घनी भौंहों के नीचे उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में ऐसी चमक और कोमलता थी, जो हर प्रकार से तृप्त और सन्तुष्ट आत्माओं में हुआ

करती है। उसकी मुद्रा और अंग-संचालन में एक लापरवाही थी। वह कभी यह कुहनी तकिये पर टेक लेता था, तो कभी दूसरी। उसके पास सबसे ज्यादा भीड़ थी। लेकिन उसकी आँखों में कोई परेशानी या व्यस्तता न थी। कई-कई आदमी एक साथ ही उससे बातें कर रहे थे। और वह ऐसा दिखाने की कोशिश कर रहा था, जैसे सब की बातें वह बड़े ध्यान से सुन रहा है, और समझ रहा है। लेकिन उसके हाव-भाव से यह मालूम हो रहा था, कि वह कोई बात नहीं सुन रहा है, या ऐसा कि बिना सुने भी वह सब-कुछ समझ लेने की योग्यता रखता है। रह-रह कर वह अपनी टोपी उठा-उठा कर फिर लगा लेता था, और मुँह से 'फू-फू' की आवाज़ करता रहता था, जैसे सामने के गर्द-गुबार को फूँक मार कर उड़ा रहा हो।

नरेन को वह आदमी बड़ा अजीब लग रहा था। उसकी तरफ देखने से जैसे उसकी दिलचस्पी बढ़ती जा रही हो। वह काफी देर तक टकटकी लगाये उसे देखता रहा। तभी एक स्वयंसेवक ने आकर उसे टोका, "आप क्या चाहते हैं?"

नरेन ने अकचका कर उसकी ओर देखा और उसकी खद्दर की लाल टोपी, लाल कमीज, लाल नीकर और नंगे पाँव देख कर, कुछ समझ कर ही जैसे बोला, "मैं मन्त्री जी से मिलना चाहता हूँ।"

"उन्हें इस वक्त फ़ुरसत नहीं है। देख रहे हैं, न कि कितने लोग उन्हें घेरे हुए हैं।" कहकर स्वयंसेवक ने मन्त्री जी की ओर इशारा किया।

तो यही मन्त्री जी हैं! नरेन को सहसा ही लगा, कि उस अजीब आदमी से कैसे वह बातें करेगा? वह तो बहुत ही बड़ा आदमी मालूम होता है। फिर भी उसने जेब से चिट्ठी निकाल कर स्वयंसेवक को दिखाते कहा, "उन्होंने यह चिट्ठी मुझे भेजी थी।"

स्वयंसेवक ने चिट्ठी उसके हाथ से लेकर, पढ़ कर कहा, "अच्छा रुकिए। मैं उनसे पूछता हूँ।"

स्वयंसेवक ने निहायत अदब से तकिये के पास झुक कर मन्त्री जी से कुछ कहा और फिर लपक कर नरेन के पास आ बोला, "आइये, मेरे साथ आप आइये।"

नरेन एक छोटे कमरे में पहुँचा। वहाँ दरी पर दस-बारह युवक बैठे हुए थे। सभी हिन्द फौज की वर्दी पहने हुए थे। नरेन की आँखें उन्हें देखकर चमक उठीं। अपने इतने वीर साथियों को एक जगह ही देखकर, जैसे वे पुरानी बातें याद आ गयीं। वह भी वहीं बैठ गया और एक-एक को गौर से देख-देख कर पहचानने लगा। उसकी खुशी छलकाती नजरें एक छोर से दूसरे छोर तक घूम गयीं। लेकिन एक भी पहचान में न आया। तब उसकी आँखें आश्चर्य से भर गयीं। क्या बात है कि इनमें से एक भी उसकी जान-पहचान का नहीं निकला ?

तभी सब-के सब उठ खड़े हुए। नरेन ने देखा, दरवाजे पर मन्त्री जी खड़े थे। वह भी उठने लगा, तो मन्त्री जी बोले, "बैठिये, बैठिये आप लोग।"

सब उनकी ओर देखते ही बैठ गये।

मन्त्री जी ने कन्धे की चादर ठीक कर कहा, "देखिये, आप लोग मेरी बातें ज़रा ध्यान से सुनें ?....आप लोग जानते हैं कि कैसे महत्त्वपूर्ण काम के लिए आप लोग यहाँ बुलाये गये हैं। चुनाव हमारे आन्दोलन का सबसे बड़ा काम रहा है और इस दौर में इसका महत्त्व और भी कई गुना बढ़ गया है, इसे आप भी समझते हैं।....पिछले चुनाव से सबसे बड़ा सबक जो हमने सीखा, वह यह था कि हिन्दू-चुनाव-क्षेत्रों में यदि हम प्रचार न भी करें, तो भी शत-प्रति-शत सीटें जीत लेना कोई असम्भव बात नहीं। लेकिन मुस्लिम क्षेत्रों के विषय में जो हमारे अनुभव हैं, वे बहुत ही कड़वे हैं। आपको मालूम होगा कि इस क्षेत्र में हमारी सफलता नाममात्र को भी नहीं हुई। इस चुनाव में भी अगर वही हाल रहा, तो पाकिस्तान के निर्माण को कोई भी ताकत नहीं रोक सकती।

पाकिस्तान बनकर ही रहेगा। इसीलिए इस बार हमें अपनी पूरी ताकत लगाकर इसे रोक देना है। मुस्लिम सीटों में अगर हम आधा भी जीत लेते हैं, तो हमारे अखण्ड भारत के नारे को काफी बल मिलेगा।....

"आप लोगों ने नेताजी के नेतृत्व में जिस तरह देश की आजादी की लड़ाई लड़ी है, वह सबके लिए आदर्श है। हिन्दू-मुस्लिम का भेद आप लोगों के बीच जिस तरह समाप्त हो गया था, वह अनुकरणीय है। हम चाहते हैं कि देश के कोने-कोने में नेताजी की वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की पुकार इस तरह गूँज उठे कि यह भेद-भाव हमेशा के लिए समाप्त हो जाय।

"आप लोगों के अनुभव से इस आन्दोलन को बहुत लाभ पहुँचेगा। साथ ही हमारे चुनाव का रास्ता भी साफ़ होगा। जैसे मैंने कहा, हमारा मुख्य कार्य मुस्लिम क्षेत्रों में है। आप लोगों को मुसलमानों के सामने हिन्द-फौज का आदर्श उतार कर रख देना है और उनके दिलों में यह बात बैठा देना है, कि नेताजी के इस उद्देश्य को पूरा करने का बीड़ा उठाने वाली देश की सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस को ही वोट देना उनका एक धार्मिक पवित्र कार्य है तथा केवल इसी में उनकी भलाई है। मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता के जहर का प्रचार कर रही है। वह जहर जहाँ देश का नाश कर देगा, वहीं मुसलमानों को भी नष्ट कर देगा। मुसलमानों की भलाई कांग्रेस की ताकत बढ़ा कर ही की जा सकती है, क्योंकि कांग्रेस सबके लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहती है। उसके सामने हिन्दू-मुसलमान बड़े और छोटे भाई की तरह हैं। इन्हें बड़े भाई और छोटे भाई की ही तरह रहना चाहिए। इसी में देश का और हिन्दू-मुसलमान दोनों का कल्याण है।....

"आपको बताना चाहिए कि हिन्दुस्तान हिन्दू-मुसलमान दोनों का मादरे-वतन है। माता के गले पर छुरी चलाना बेटे के लिए सबसे

बड़ा पाप है ! हिन्दुओं की तरह मुसलमानों को भी मुस्लिम लीग की इस पाकिस्तानी छुरी को पकड़ कर तोड़ डालना चाहिए। और यह तभी होगा, जब मुसलमान भी हिन्दुओं के साथ मिलकर कांग्रेस के इस काम में मदद दें। और यह मदद कांग्रेस को वोट देकर ही दी जा सकती है।

"हिन्दू-क्षेत्रों में, जैसा मैंने कहा, हमें कोई डर नहीं, क्योंकि हिन्दू जनमत करीब-करीब पूरा-पूरा कांग्रेस के साथ है। और चूँकि कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है, इसलिए निस्सन्देह यह बात कही जा सकती है, कि हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता नहीं है। उनका हृदय आज राष्ट्रीयता से लबालब भरा हुआ है। हम चाहते हैं कि इसी प्रकार देश के मुसलमान भी राष्ट्रीयता को अपने संकीर्ण धार्मिक विचारों से अलग रखें। हमारे साथ लाखों राष्ट्रीय मुसलमान हैं। हम सभी मुसलमानों को इस संस्था में शामिल होने की दावत देते हैं।

"आप मौलाना अबुलकलाम आजाद, मौलाना अहमद हुसेन मदनी-जैसे धर्म के पेशवाओं का नाम लें और बताएँ कि क्या सूट-बूट में रहने वाला जिन्ना पक्का मुसलमान है या ये मौलाना-आलिम-फाजिल, पाँचों वक्त नमाज पढ़ने वाले ?

"आप लोग उन्हें बतायें कि कैसे हिन्द फौज ने हिन्दू-मुसलमान के बीच की दीवार को तोड़कर उन्हें देश-प्रेम के मजहब के रंग से रंग कर एक साथ, कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई लड़ने का सबक़ दिया, किस तरह भारत माता के हिन्दू-मुसलमान लाड़लों ने एक साथ इम्फाल के मैदान में अपना खून मादरे वतन की खिदमत में बहाया, किस प्रकार कैप्टेन शहनवाज और ढिल्लन एक साथ अपने-अपने धर्म की बात भूल कर देश के दुश्मन अंग्रेजों की फौजों से मोर्चा लिया। इत्यादि-इत्यादि और भी इस तरह की अपने अनुभव की बातें बतायें और उनसे हिन्द फौज, मुल्क, आजादी, नेताजी और शहनवाज के नाम

पर कांग्रेस को वोट देने की अपील करें और मुसलमानों से इसकी भीख माँगें।

"मेरा ख्याल है कि आपकी इस टुकड़ी के नेता नरेन जी रहें। यह प्रचार कार्य करने का हमारा बना-बनाया प्रोग्राम है। एक्का, टाँगा, मोटर आप जो चाहेंगे, आपको मिलेगा। खाने-पीने की कोई भी तकलीफ न करें, क्योंकि यह दौड़-धूप का कड़ा काम काफी अच्छा खाना खाये बिना नहीं चल सकता। हमने इसके बारे में काफी साहित्य भी छपवा रखा है। इसे आफिस से ले लें। आप जिन राष्ट्रीय मुस्लिम नेताओं को बुलाना चाहें, हम बुला देंगे। उनका प्रोग्राम आप बाकायदे मुस्लिम क्षेत्रों में रखिये और बड़ी-बड़ी सभायें कीजिये और भी लाउड स्पीकर वगैरा सब-कुछ आप लोगों को मिलेगा। रुपये की कोई कमी हम आपको न होने देंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य में जितना रुपया खर्च होगा, हम वह देंगे। और आप विश्वास कीजिये कि आप लोगों की मिहनत से अगर हमें कुछ भी फायदा होगा, तो हम लोग आपको खुश कर देंगे। पुरस्कार तो मिलेगा ही, साथ ही अपनी सरकार कायम होने पर हम लोग आप लोगों का पूरा-पूरा ख्याल रखेंगे।

"एक बात खास तौर पर मुझे नरेन साहब से कहनी है। वह यह कि अगर हो सके तो आप कोई मुसलमान नाम अपने लिए चुन लें। पालिसी से मजबूर होकर कभी-कभी हमें ऐसा काम करना पड़ता है। खास तौर पर इस मौके पर ऐसा करने की जरूरत है, क्योंकि मुसलमान मुसलमान की बात आसानी से मान लेता है और हिन्दू की बात को शुबहे की नजर से देखता है।

"क्यों, नरेन साहब, आपको कोई आपत्ति तो नहीं ?" कह कर मन्त्री जी ने नरेन की ओर मुस्कराते हुए देखा।

नरेन का तो जैसे होश ही उड़ गया। वह क्या जवाब देता ? वह

सिर झुकाये नाखून से दरी खुरचने लगा। दूसरे सब युवक उसकी ओर घूर-घूर कर देखने लगे।

"देखिये, एक बडे काम के लिए एक छोटा झूठ बोलना कोई पाप नहीं है। ऐसा करने की आज्ञा हमारी धर्म-नीति में भी है। फिर आप तो अपने स्वार्थ के लिए झूठ नहीं बोल रहे हैं। यह तो देश और आजादी के महान उद्देश्य को सामने रख कर मैं आप से निवेदन कर रहा हूँ। इसमें सोचने की क्या बात है? देश के लिए आदमी क्या-क्या नहीं करता? मुझे विश्वास है, आप मेरी यह बात जरूर मान जायेंगे।

"हाँ, इस समय आप लोग स्वयंसेवक के साथ जा कर होटल में खाना खा आइये। फिर आज ही अपने कार्य को आरम्भ कर दें। तब तक मैं एक जीप सजवा रखता हूँ। बाकी सब सामान और रुपये हमारे पास से नरेन साहब आ कर ले लेंगे। और कोई जरूरी बात होगी, तो मैं उसी समय बता दूँगा।"

कह कर वह फिर अपने कमरे में चले गये।

नरेन अभी सिर उठाने वाला ही था कि स्वयंसेवक ने आ कर कहा, "चलिये, जल्दी उठिये आप लोग।"

दूसरे युवक उठ खड़े हुए, तो अनमना-सा नरेन भी उठ कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उसका मन जाने कैसा हो रहा था। उसे लग रहा था, जैसे गले में कुछ ऐसा जा अटका है, जो न नीचे उतर रहा है और न ऊपर आ रहा है। उसके पाँव चल रहे थे और मस्तिष्क में एक बवण्डर उठ रहा था।

एक मुस्लिम होटल के सामने खड़े हो, उनमें से एक युवक ने कहा, "हम तो यहीं खायेंगे।" फिर उसने स्वयंसेवक की ओर मुड़ कर कहा, "नरेन साहब को किसी हिन्दू होटल से खिला लाओ।"

"मुझे भूख नहीं लगी है," नरेन ने उदास हो कर कहा, "मैं कुछ

न खाऊँगा।" उसकी समझ में न आ रहा था कि ये हिन्दू-मुस्लिम होटल वाले हिन्द फौज के वीर कैसे हैं ?

"तब तो हमारे साथ बैठिये। खाते भी रहेंगे और आप से कुछ जरूरी बातें भी कर लेंगे।" उसमें से एक युवक ने कहा।

अन्दर जाकर सब बैठ गये और अपने-अपने खाने का आर्डर दे दिया। नरेन भी चुपचाप बैठ गया।

एक बोला, "देखिये, नरेन साहब, आप हमारे लीडर हैं। जरा मेहरबानी रखियेगा।"

"हाँ, साहब, अब तो आप ही पर सब निर्भर है," दूसरा युवक बोला।

"देखिये, आप काफी रुपया उनसे लीजियेगा। और यहाँ से चलने के पहले ही हमारा कुछ इन्तजाम हो जाय, तो अच्छा।" तीसरा युवक बोला।

"और नहीं तो क्या घर वाले भूना फाँकेंगे ?" चौथा युवक बोला।

"नहीं, नहीं, भाई, नरेन साहब सब इन्तजाम कर देंगे। भले आदमी मालूम होते हैं।" पाँचवाँ बोला।

"भाई, कम-से-कम सौ-सौ रुपये तो दिलवा दें...."

"और सिग्रेट वगैरा काफी ले लें, वर्ना देहातों में कहाँ कुछ मिलने का...."

"हाँ, भाई, सब इन्तजाम मुकम्मल होना चाहिए। जिन्दगी-भर तो तकलीफ उठाना किस्मत में लिखा ही है। ये आराम के चन्द दिन तो चुनाव के रुपये से गुलछर्रे उड़ा लें...."

"और नहीं तो क्या यह वक्त बार-बार आता है...."

"सुना है, बड़े-बड़े सेठों ने अब की चुनाव लड़ने के लिए रुपये दिये हैं। बड़ी-बड़ी रकमें....

"तभी तो कह रहे हैं, नरेन साहब....कुछ बना लेना...."

"बाद के वादों का क्या भरोसा ? यह मन्त्री जी जो सब्ज बाग दिखा रहे हैं, यह वक्त की बात है और फिर...."

"और क्या, हमारे कहने से कोई मुसलमान...."

नरेन का सिर चकराने लगा। यह-सब क्या देख-सुन रहा है वह ? नहीं, नहीं, नेता जी की हिन्द फौज के ये सिपाही नहीं हो सकते ! उसने पूछा, "आप लोग हिन्द फौज के किस रेजीमेंट में थे ?

सुन कर सब-के-सब ठठा कर हँस पड़े। सारा होटल गूँज उठा। आस-पास बैठे दूसरे मुसाफिर चिहा-चिहा कर उनकी ओर देखने लगे। पास के नीम के पेड़ पर से कौओं का झुण्ड काँव-काँव करता उड़ गया।

नरेन हक्का-बक्का हो उनकी ओर अभी देख ही रहा था कि एक बोला, "अरे साहब, हम क्या जानें कि हिन्द फौज किस चिड़िया का नाम है ?"

नरेन जैसे आसमान से जमीन पर आ रहा। फैली आँखों से उनकी ओर देख कर बोला, "फिर ये वर्दियाँ...."

एक ठहाका और लगा। नरेन बेवकूफ़ की तरह उनकी ओर ताकता रहा।

तब एक ने कहा, "ये वर्दियाँ हमें यहीं मिली है। और जिस तरह आप को मुसलमान-नाम दे दिया गया, उसी तरह हमें भी हिन्द फौजी बना दिया गया। बड़े काम के लिए एक छोटा झूठ बोलना पाप नहीं ! हें-हें-हें...."

"ओह !" नरेन के मुँह से निकल गया। उसका सिर झुक गया। चेहरे पर न जाने कैसे-कैसे भाव बनने-बिगड़ने लगे। उन भावो में गुस्सा भी था, नफरत भी थी, दुख भी था और असीम व्याकुलता भी थी !

और सब न जाने कब के भूखों की तरह खाने पर टूट रहे थे, 'यह लाओ, वह लाओ',...'अरे भाई, खूब खा लो',....'किस्मत में ऐसे दिन

क्या बार-बार आते हैं,'....'कोई जीते, कोई हारे, हमें क्या मिलना है,' 'जो ही चन्द रोज रूह को आराम पहुँचे'....'सेठों के रुपये हैं....'

नरेन से अब वहाँ एक क्षण भी न बैठा रहा गया। वह उठ कर बाहर आ गया। पैर के पास ही नाबदान के सड़े कीचड़ में कीड़े बिलबिला रहे थे और दुर्गन्ध का भभका उठ रहा था। लेकिन नरेन का दिमाग जिस दुर्गन्ध से भन्ना रहा था, वह उस नाबदान की दुर्गन्ध से कहीं तेज थी, कहीं ज्यादा सड़ी थी। नरेन को लगा कि जब तक वह इस वातावरण से कहीं दूर न भाग जायगा, इस दुर्गन्ध से छुटकारा न मिलेगा। वह भागा-भागा कांग्रेस कमिटी के दफ्तर में पहुँचा और अपना सूटकेस उठा कर सड़क पर आ गया। यह काम उसने वैसे ही जल्दी में किया, जैसे कोई आदमी शहर की सड़क के पिछवाड़े से नाक दबा कर भागता है।

सड़क पर जीप खड़ी थी। स्वयंसेवक उसे सजा रहे थे। ऊपर गाँधी जी के बड़े चित्र की बगल में नेता जी का एक बड़ा चित्र लगा था। इन चित्रों पर नरेन की नज़र पड़ी, तो उसके जी में आया वह उन्हें उस जीप से नोच कर अलग कर दे और जीप को ठोकरों से मार कर तोड़-फोड़ दे। वह एक क्षण को ठिठक गया। पर दूसरे ही क्षण मुँह फेर कर फिर सड़क पर भागने लगा। उस समय उसके दिमाग में गाँधी जी, कांग्रेस, नेताजी, आजाद हिन्द फौज की कितनी ही बातें चक्कर लगा रही थीं। उस वक्त यह समझते भी देर न लगी, कि जिस कांग्रेस ने नेता जी को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका था, उसी कांग्रेस ने नेता जी की आज़ाद हिन्द फौज के वीरों को छुड़ाने के आन्दोलन को किस उद्देश्य से अपना सहयोग दिया। आज लाल किला में सुनी जवाहर लाल नेहरू की बात भी उसे याद आयी और वे सब नारे भी याद आये। उनका इस चुनाव से जब उसने मन-ही-मन सम्बन्ध क़ायम किया, तो सब-कुछ साफ हो गया। ओह, किस कुएँ में वह ढकेला

जा रहा था। यह कांग्रेस, यह सत्य, यह अहिंसा का ढोंग! नफरत और गुस्से से बौखलाया नरेन भागता गया, भागता गया।....

कानों के पर्दों पर टन-टन की ऐसी भयंकर चोटें लगीं कि नरेन चिहुक गया। मंजूर अनजाने में करवट बदलता आह-आह कर उठा। नरेन ने फूल की तरह उसका सिर हाथों में ले ठीक कर दिया। फिर धीरे-धीरे उसके चेहरे पर हाथ फेरने लगा। लालटेन बुझ गयी थी। अन्धकार में कुछ भी दिखायी न देता था। मच्छरों की दुन्दुभी बन्द हो चुकी थी। कभी-कभी इक्के-दुक्के मच्छर जैसे बेमतलब भन-भन करते कानों के पास से गुज़र जाते। पिस्सू भी कभी-ही-कभी एकाध सुई चुभो कर जैसे अपनी उपस्थिति जता देते थे। हवा की ठंडक जम कर गीली हो गयी थी। शरीर के कपड़े ठंड से पल्ला होकर छन-छन लग रहे थे।

मंजूर बेहोशी की नींद में डूब कर कराह-भरी साँसें खीचने लगा। नरेन ने हाथ से मुँह की गन्दी, जमी हुई ठंड पोंछी, तो होंठ नमकीन-से हो गये, मुँह थूक से भर गया। खून और धूल के कणों से दाँत किनकिना उठे। जी एक बार जोर से सिहर उठा और सारे शरीर में जैसे कुछ सन्-सा कर गया।

अब उस तरह बैठे रहना मुश्किल हो रहा था। रीढ़ की हड्डी बुरी तरह दुख रही थी। उसने फैले पाँव धीरे-धीरे और आगे बढ़ा कर कुहनियों का टेक लगा लिया और मंजूर को जरा भी छेड़े बिना लेट-सा गया। भारी पलकें झुकने लगीं, तो दिमाग स्मृतिओं की राह पर आप ही फिर बहक गया—

टीसन के प्लेटफार्म पर पानी की टंकी के पास ठेला गाड़ी पर एकतां में बैठा नरेन सोच रहा था। घर से वह यह सोच कर चला था कि फिर देश-सेवा करने का एक मौका मिला। आजाद हिन्द फौज में रह

कर देश-प्रेम का स्वाद जो उसने चखा था, वह अपूर्व था। देश के लिए वह सहज ही सर्वस्व बलिदान करना सीख गया था। उसे आशा थी कि उस बलिदान का अवसर कांग्रेस से फिर उसे प्राप्त हो जायगा। किन्तु आज जिस 'देश-सेवा' से उसका साक्षात्कार हुआ, वह इतना घिनौना था कि उसका रोम-रोम घृणा से भर गया था। उसने जिस देश-प्रेम के आलोक में पहली बार साधारण राजनीतिक चेतना की जो झलक देखी थी, उसमें छल, कपट, झूठ, धोखे का कोई स्थान नहीं था। वहाँ तो बलिदान के खून और देश की आज़ादी का इतना सीधा और सच्चा सम्बन्ध देखा था, कि उसकी आत्मा चमत्कृत हो गयी थी, उसका रोम-रोम बलिदान की उमंग से कंटकित हो गया था और प्राणों मे देश-प्रेम का एक नशा-सा छा गया था। किन्तु यहाँ....

अब वह क्या करे, उसकी समझ में न आ रहा था। यों भी अब वह अपने को बिल्कुल व्यर्थ समझ बैठा था। कांग्रेस और देश-सेवा को लेकर कभी-कभी जो उसके मन मे एक काम की बात उठ जाती थी, अब वह भी खत्म हो गयी। अब ?

उसने मुँह उठा कर सामने देखा। नल के पास बैठा एक आदमी मैले अंगौछे में सत्तू सान कर खा रहा था। पास ही एक खौरहा, घिनौना कुत्ता बैठा अपनी कुचकुचही आँखों से सत्तू की ओर तक रहा था और अपनी बेरोयें की पूँछ हिलाये जा रहा था। नरेन ने उस आदमी को फिर देखा, तो उसे पहचान गया। वह उसके गाँव का रंगवा धेनुक था। उसे खाते देख अचानक नरेन को भूख लग गयी। उसने रात को रास्ते में कुछ भी न खाया था। खाने के लिए उसके पास कुछ था भी नहीं। पैसे भी न थे। अभी थोड़ी देर पहले उसे खाना मिल रहा था। लेकिन उसने खाया न था। वैसा हराम का खाना, झूठ, धोखे, मक्कारी और पाप का खाना गले से नीचे उतरता कैसे ? उसे उस समय की बात सहसा याद आ गयी, जब पहली दफा भाग कर वह टीसन पर पड़ा था।

उस वक्त भी वह आज ही की तरह भूखा और खाली था। उस समय जो सहारा उसे अचानक मिल गया था, उसे उसने भाग्य का वरदान समझा था। लेकिन आज वह उस समय की तरह भोला, नासमझ और नादान न था कि किसी भी सहारे को लपक कर पकड़ लेता। आज़ाद हिन्द फौज ने जहाँ उसमें एक आत्म-सम्मान की भावना भर दी थी, वहीं देश-प्रेम और सेवा की महान महात्वाकांक्षाओं से भी उसे ओत-प्रोत कर दिया था। निस्सन्देह जिस तरह उसने एक मिला हुआ बुरा सहारा ठुकरा दिया, उसी तरह आज तीन उँगलियों पर गिना कर एक सुखी जावन का जादू चलाने वाले के सहारे को भी ठुकरा देता, क्योंकि वह समझ गया था, कि अंग्रेजी फौज में शामिल होने से बढ़ कर देश के प्रति कोई गद्दारी नहीं हो सकती। भले ही वह भूखों मर जाता, लेकिन यह ज़लालत कबूल न करता। आज़ाद हिन्द फौज में रह कर आन, सम्मान, उद्देश्य और प्रतिज्ञा पर मर मिटना उसने सीख लिया था। देश-प्रेम के मतवाले एक फौजी की वह अकड़ उसमें आ गयी थी, जो इन्सान को टूट जाना तो सिखा देती है, लेकिन झुकना नहीं।

धेनुक की नज़र जब नरेन पर पड़ी, तो एक क्षण तक तो वह मुँह चलाना बन्द कर, पलकें मलकाता उसे देखता रहा। फिर मुँह का कौर निगल कर बोला, "अरे नरेन, तू कहाँ?"

नरेन सूटकेस उठा, उसके पास आ कर, ज़मीन पर बैठता बोला, "यहीं आया था।"

हाथ रोक कर धेनुक ने कहा, "गाँव में मालूम तो हुआ था, कि कल शाम को तू बिना किसी से कुछ कहे चला गया। अब यहाँ से कहाँ जाने का इरादा है? गाड़ी का इन्तज़ार है का?"

"नहीं, अभी कुछ सोचा नहीं है," मुँह लटका कर नरेन ने कहा।

"अरे ई कैसी बात ? बिना कुछ सोचे चल पड़ा ?" घेनुक ने अचरज से कहा, "उस दफे भी तू ऐसे ही निकल गया था। अब की फिर...."

नरेन के होंठों पर एक उदास मुस्कान उभर आयी। उसने कहा, "क्या बतायें, है कुछ ऐसा ही।"

"ई तो बढ़िया नहीं है।....अच्छा, कुछ खाया-पिया है ? मुँह तो झुराया है।" घेनुक ने कह कर उसकी ओर गौर से देखा।

नरेन ने सिर झुका लिया। बोला नहीं। तब घेनुक ने कहा, "कह, तो थोड़ा सतुआ तेरे लिए भी सानूँ ?"

नरेन से कोई दूसरा इस तरह की बातें करता, तो शायद वह मना कर देता। लेकिन अपने गाँव के घेनुक से वह वैसा कुछ न कर सका। अपने गाँव के एक कुत्ते से भी आदमी को एक कुदरती मुहब्बत होती है। यह तो आदमी था। वह भी नरेन से बड़ा। रंगवा हुआ, तो क्या ? गाँव का बड़ी उम्र का कोई भी आदमी बड़ा ही है। बनिया हो कर भी नरेन खुद गाँव के बड़े लोगों को 'कोईरी चाचा', 'भर काका', 'चमरा दादा', 'रंगवा भैया', 'धुनिया बाबा', 'जोलहा आजा' वगैरा कह चुका था; गोदी में खेल चुका था और उनके हाथ का बहुत-कुछ खा-पी चुका था। वह संकोच से कुछ बोला नहीं।

तब घेनुक ने अपना अंगौछा वैसे ही रख, नल पर हाथ धो, गठरी खोली और अंगौछे के दूसरे कोने में थोड़ा सत्तू निकाल नमक मिलाया। फिर लोटा माँज कर पानी ला सत्तू सानता बोला, "हाथ-मुँह धो ले।"

नरेन ने उठ कर हाथ-मुँह धोया और घेनुक के पास पैरों पर बैठ गया, तो घेनुक ने अंगौछे का वह कोना उसे पकड़ा दिया और एक भरा हुआ बड़ा मिर्चा भी थमा दिया। फिर दोनों अपना-अपना खाने लगे। नरेन को उस सत्तू में जो मज़ा आया, वह ज़िन्दगी की एक याद बन

गयी। वह स्वाद, मिठास और सोंधापन आज भी आत्मा में बसा है। उस दिन के बाद भी कितनी बार उसने घेनुक के हाथ का सत्तू खाया, लेकिन वह मजा....

नरेन की जीभ आप ही होंठों पर फिर गयी, उसकी आँखें खुल गयीं। न जाने घेनुक इस वक्त कहाँ, किस हालत में पड़ा हो। चोट तो उसे भी लगी होगी, या कौन जाने....

और नरेन आज की सोचते-सोचते फिर उस दिन के घेनुक के पास प्लेटफार्म पर जा बैठा—

घेनुक ने आखिरी कौर की पिंडी कुत्ते के सामने लोका दी। बेजान कुत्ते में बिजली की ताकत आ गयी। उसने उछल कर हवा में ही उसे लोक लिया और गप्प से गले के नीचे उतार कर पूँछ हिलाता खड़ा हो गया।

कुत्त की लालच और भूख-भरी आँखों को देखकर नरेन से और अधिक न खाया गया। उसने बचे सत्तू की एक बड़ी पिंडी बना कुत्ते के सामने फेंक दी। कुत्ते ने उसी तरह उसे लपक कर हबक लिया।

पानी पीकर, हाथ-मुँह धो जब वे फिर इकट्ठे बैठे, तो घेनुक बोला, "तो तू ने कुछ बताया नहीं। भाई, इन्सान को कभी बेकार न बैठना चाहिए। मौजूदा हालत में काम करते, उसे सुधारने के संघर्ष में जुटे रहना ही इन्सान का फर्ज है।"

नरेन उसकी बात सुनकर भौंचक-सा उसका मुँह ताकने लगा। अभी-अभी बात करते घेनुक और यह बात कहने वाले घेनुक में ऐसा अन्तर अचानक कैसे आ गया ? अपढ़, गँवार और देहाती घेनुक यह कैसे बातें कर रहा है ?

घेनुक उसकी ओर देखकर मुस्कराया। और उसके मन की बात समझ कर ही बोला, "तूने तो कुछ पढ़ा-लिखा भी। फिर देस-बिदेस

देखने-सुनने का भी मोका मिला। मैं तो जनम से ही गँवार-गामड़ू बना रहा। न जाने कितने जनम से घर के मेरे लोग गाँव में ही कमाते-खाते, मरते-जनमते रहे। इन चार बातों के सिवा भी दुनिया में कुछ है, कभी जानने, सुनने-देखने का उन्हें मोका न मिला। शादी-ब्याह तर-त्योहार के दिन मुस्कान की एक कुचली हुई आभा होंठों पर आ गयी, तो आ गयी; वर्ना जिन्दगी-भर वही दुखड़ा-धन्धा, मेहनत मसक्कत, रूखा-सूखा, दुख-गम चलता रहता था। न कुछ समझ, न बूझ; न ज्ञान, न जानकारी। जुए में जूते बैलों की जिन्दगी, दिन-भर काम में जुते रहना, फिर रूखे-सूखे को पेट में डाल रात को सो जाना। जिन्दगी का क्या इससे भी छोटा कोई घिरौंदा हो सकता है ? नरेन, तुझे इस जिन्दगी का अनुभव नहीं है, वर्ना तू समझता कि तेली के बैल की जिन्दगी से भी यह जिन्दगी बदतर होती है। तेली के बैल की फिकर तो कोई करने वाला भी होता है, यहाँ तो खुद ही सब फिकर भी।....इसी घिरौंदे में मेरी भी जिन्दगी खत्म होने वाली थी, अन्धकार के गढ़े में एक कीड़े की तरह बिलबिला कर मर जाने के सिवा चारा ही क्या था ? लेकिन वह तो संयोग कहो, कि मैं घर में ज्यादा हो गया। घर में एक ही करगह था। बूढ़े बाबू जी ने उस पर बड़े भैया को बैठा दिया। माई बैठी-बैठी नारी भर लेती थी, बाबूजी बारी में ताना-पाई कर लेते थे और भाई मशीन पर कपड़ा बुनते थे। जब तक मैं छोटा रहा, इसी में कुछ छोटा-मोटा काम कर लेता था, लेकिन जब बड़ा हुआ, शादी हुई, तो बाबूजी ने बहुत कोशिश की कि मेरे लिए भी एक करगह बैठा दें। लेकिन वह कामयाब न हुए। न घर में दूसरी करगह बैठाने की जगह थी, और न पल्ले इतना पैसा ही था। क्या करते ? कुछ दिन बेकार पड़ा रहा या जमींदार या महाजन के यहाँ कुछ रोजी-मजदूरी करता रहा। लेकिन इस मजदूरी से अपनी गुजर भी मुश्किल होती, किसी की सहायता तो दूर की बात। आखिर एक दिन बाबूजी ने मुझे लखन के साथ लगा

दिया। वह कानपुर में काम करता था। उसके साथ मैं कानपुर चला गया। वहाँ उसकी कोशिश से मुझे विक्टोरिया मिल में काम मिल गया। उस बात को आज आठ साल हो गये।" कह कर घेनुक अचानक रुक गया।

नरेन बड़े ध्यान से उसकी बात सुन रहा था और उसके भोले चेहरे को देख रहा था। उसकी मूँछों के बालों में सफेद, अटपटे तार दिखायी दे रहे थे, आँखों के नीचे उसके साँवले पक्के रंग से भी अधिक गहरे निशान थे। नाक के अगल-बगल दो गहरी रेखायें मूँछों और काले होंठों के किनारों से होते ठुड्डी तक चली गई थीं। दाढ़ी के खिचड़ी बाल भद्दे तरीके से बढ़े हुए थे। दाँत खैनी और बीड़ी से गन्दे दिखायी देते थे। फिर भी उसकी छोटी-छोटी आँखों में एक ऐसी चमक उसके बोलते समय झलक-झलक जाती थी, जो उसके पूरे मुखड़े को आकर्षण बना देती थी। गाँव के किसी भी आदमी से नरेन ने उस तरह की बातें कभी न सुनी थीं। उसे उसकी बातों में सहज ही दिलचस्पी हो चली थी। उसने कहा, "फिर क्या हुआ?"

"वहाँ अपनी ही तरह बहुत-से साथी मिले," घेनुक ने अपनी बात की कड़ी जोड़ी, "हमारी तरफ के भी बहुत से साथी वहाँ थे। वहाँ उनके साथ रहना-सहना शुरू हुआ, तो जैसे एक नयी जिन्दगी का ज्ञान हुआ। एक साल में मैंने थोड़ा-बहुत साथियों की मदद से लिखना-पढ़ना सीखा। उनके साथ मिटिंगों में आने जाने, बात-चीत करने, अखबार वगैरा सुनने-समझने से कुछ-कुछ ज्ञान बढ़ा। अपनी जिन्दगी, गरीबी और मजदूरी की कुछ-कुछ बातें मालूम हुईं। और दिन-दिन इन बातों में दिलचस्पी बढ़ती गयी, तो जिन्दगी में एक मकसद भी आया और अब तो मुझे यह जिन्दगी बेकार और भारी नहीं लगती। लाख तकलीफों के होते हुए भी संघर्ष में जुटे रहने में एक मजा आता है, अपने में ताकत बढ़ती है, दिल और दिमाग मजबूत होता है। और

और भी जानने की प्यास दिन-दिन बढ़ती जाती है।" कह कर घेनुक मुस्कराया, तो उसके चेहरे पर एक आभा आ गयी।

नरेन ने उस मुस्कान में जिन्दगी की जो चमक देखी, तो आश्चर्य में पड़ गया। ऐसे गये-बीते आदमी में जिन्दगी? वह बेसमझ-सा ही बोला, "किस संघर्ष की बात कर रहे थे?"

"यही अपनी रोजी का संघर्ष," घेनुक ने कहा, "जिससे भर पेट रोटी मिले, तन ढँकने को कपड़े मिले और...."

"लेकिन इसके लिए तो काम की जरूरत है। यह संघर्ष क्या बला है?" नरेन ने कुछ भी न समझ कर कहा।

"हाँ, काम पाने का संघर्ष और काम पा कर अपनी मेहनत के पूरे मुआवजे का संघर्ष। हम आठ घंटे रोज़ छाती फाड़ कर काम करते हैं और जानते हो, क्या मिलता है? सवा-डेढ़ रुपये रोज। इस मंहगी के जमाने में इससे दो जून भर पेट रोटी चलाना और एक जोड़े कपड़े बनाना और घर का किराया चुकाना क्या मुमकिन है? गाँव में देखते हो न कि किसान-मजूर कितना काम करते हैं, लेकिन किसी को दो जून भर पेट मयस्सर होता है, किसी के तन पर कभी साबित कपड़े देखने को मिलते हैं? कभी सोचा है तुमने कि ऐसा क्यों होता है? कभी सोचा है तुमने कि गाँव के जमींदार और महाजन और शहरों के सेठ दिन-भर आराम से बैठे रहने पर भी कैसे चुपड़ी खाते हैं और गुलछर्रें उड़ाते हैं?"

तभी गाड़ी आने की घंटी टुनटुना उठी। घेनुक व्यस्त-सा हो उठ खड़ा हुआ और बोला, "गाड़ी आ रही है। टिकट ले आऊ। हाँ, तुझे कहाँ जाना है?"

नरेन ने सिर झुकाये ही कहा, "कहीं नहीं।"

"अरे, तो फिर आया क्यों यहाँ? भाई, न हो कानपुर ही चले चल। कुछ पढ़ा-लिखा है? कोई-न-कोई काम तो ढूँढ ही निकाला जायगा। या फिर फौज में ही...."

"दुत, हमारी अब फौज कहाँ है ? इन कमीनों की फौज में...."

"आखिर कुछ तो सोचा ही होगा।"

"कुछ नहीं। पास में पैसे होते, तो साथ ही चल पड़ता।" नरेन ने शर्मा कर कहा।

धेनुक मुस्करा कर बोला, "मेरे पल्ले इतने तो पैसे हैं, कि तेरा टिकट कटा लूँ, लेकिन....कोई बात नहीं, वहीं चल कर देखेंगे। चल तू भी।....यह गठरी देखता रह। मैं टिकट ले आऊँ। और वह टिकट-घर की ओर बढ़ गया।

खों-खों की कई मिनट तक लगातार आवाज़ सुन कर मंजूर की नींद टूट गयी। उसने कसमसा कर सूखे गले से कहा, "ओह, क्या आफ़त है ? यह कौन खों-खों करने लगा ?"

"वार्डर होगा," नरेन ने पीठ सीधी करते हुए कहा, "बूढ़ा मालूम होता है। मालिक के कैदियों की रक्षा करते-करते कैद में खुद अपनी ज़िन्दगी फोड़े की तरह पका ली है। कैसे खाँस रहा है, जैसे सब खाया-पिया ढकच देगा। बेचारा !"

"कामरेड, बड़ी प्यास लगी है। ज़रा पानी...."

पानी कहाँ था ? नरेन सशोपंज में कुछ क्षण तक चुप रहा। फिर बोला, "देखूँ, शायद वार्डर से कुछ मदद मिल सके। तुम ज़रा अपना सिर तो सँभालो।" कह कर उसने धीरे से मंजूर का सिर अपनी गोद से उठा कर फर्श पर कर दिया। और दीवार का सहारा ले धीरे-धीरे दरवाजे की ओर पैरों से टो-टो कर बढ़ा। दरवाजे के पास अन्दर धुँधली रोशनी का टुकड़ा पड़ रहा था। वार्डर उसी तरह भयंकर रूप से खाँसे जा रहा था।

नरेन को लगा, जैसे वह भहरा कर गिर पड़ेगा। सारे शरीर में दर्द ऐसे जाग पड़ा कि खड़ा रहना मुश्किल हो गया। वह दीवार का सहारा

लिये ही बैठ गया। रीढ़ की हड्डी चिल्हक उठी। मुँह से एक कराह-भरी चीख निकलते-निकलते रह गयी। पसीने से थक-बक हो गया।

कई मिनट सुस्ताने के बाद वह धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर खिसकने लगा।

वार्डर वैसे ही खाँसे जा रहा था। लगता था, जैसे उसका कलेजा ही मुँह से निकल कर गिर पड़ेगा। दरवाज़े के पास पहुँच कर नरेन ने देखा, धुँधली लालटेन के पास बैठा वार्डर सिर थामे खाँस रहा था, और बलगम ढकच रहा था। नरेन उसकी खाँसी थमने का इन्तज़ार करने लगा।

काफी देर के बाद वार्डर धीरे-धीरे सँभला। घर्र-घर्र करती उसकी साँस साधारण होने लगी। उसने आस्तीन से आँखों और मुँह को कई बार पोंछा और थूक-थूक कर गला साफ किया। फिर अच्छी तरह थिरा कर, लालटेन पकड़ कर उठा, कि नरेन बोला, "दादा! ओ दादा!"

वार्डर ने सिर घुमा कर, दरवाज़े की ओर लालटेन उठा कर देखा। फिर बोला, "कौन?" और आगे बढ़ कर बिल्कुल दरवाज़े से सट कर खड़ा हो गया।

"प्यास के मारे दम निकल रहा है, दादा! ज़रा थोड़ा पानी अगर आप दे देते!" नरेन ने विनती के स्वर में कहा।

"पानी अन्दर रखा तो होगा। खतम कर दिया क्या?" फटे बाँस की तरह वार्डर बोला।

"नहीं, दादा, पानी-वानी कुछ नहीं है। लालटेन भी कभी की बुझी पड़ी है, आप ज़रा मेहरबानी करें। मेरा साथी बहुत बुरी तरह घायल है। उसे पानी न मिला...."

"मुझे सब मालूम है। मेरे पहले का दो बजे वाला वार्डर सब-मुझे बता चुका है। कसाइयों ने पानी भी नहीं रखा...."

"हाँ, दादा, ये हमें मार डालना चाहते हैं। हमारी हालत आप अगर देख पाते।"

एक खटके की आवाज़ सुनकर वार्डर साँस की आवाज़ में बोल पड़ा, "सब मालूम है, सब। चुप रहिये आप। कोई बरतन है?"

"एक बरतन तो है, दादा। लेकिन इस अँधेरे में....और चलना भी बड़ा मुश्किल है मेरे लिए। किसी तरह खिसक कर यहाँ तक आया हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, आप रुकिये। मैं देखता हूँ।" कहकर वार्डर एक ओर खट-खट करता चला गया।

"कामरेड!" मंजूर ने सूखे गले से पुकारा।

"लाने गया है। ज़रा देर थमो।" नरेन ने उसे सान्त्वना दी।

बैठा-बैठा नरेन ऊब गया। सियारों के हुआँ-हुआँ की तरह पहरुओं की चीखें शान्त वातावरण में चीरे लगातीं रहीं। 'ठीक है! ठीक है!' की वार्डरों की यान्त्रिक पुकारें उनकी 'चौकसी' का ढिंढोरा पिटती रहीं। और नरेन झींकता रहा।

काफी देर के बाद रोशनी की चमक देख नरेन के दम में दम आया। यह वार्डर ही था। कटोरे में पानी लाया था। बोला, "पानी तो ले आया, लेकिन कोई छोटा बर्तन नहीं मिला। यह भी स्पेशल वार्ड के बरामदे में मिल गया, वर्ना आप लोगों को प्यासे ही रात-भर तड़पना पड़ता। अन्दर का बर्तन लाइये, तो पानी उड़ेल दूँ।"

कोई चारा न था। किसी तरह खिसकता-खिसकता नरेन अन्दाज़ से बर्तन की ओर बढ़ा। मंजूर के पैर पर उसका हाथ पड़ा, तो वह बोला, "लाये, कामरेड?"

"बर्तन ढूँढ लूँ। वार्डर पानी लाया है।" कहकर नरेन इधर-उधर हाथ बढ़ा कर ढूँढने लगा। लालटेन हाथ से लगकर गिर पड़ी। तसला झन्न से बज उठा। नरेन उसे उठा कर फिर खिसकते-खिसकते दरवाजे

तक आया। इतने में ही उसकी तेरहों नौबत हो गयी, ग़ाफ़-सा आ गया।

ज़रा थिरा कर उसने तसला छड़ों से लगा दिया। वार्डर ने धीरे-धीरे उसमें सारा पानी ढाल दिया। फिर बोला, "आप दो ही इसमें हैं, या...."

"हाँ, यहाँ तो हम दो ही हैं। दूसरे कहीं और रखे गये होंगे।"

तभी पहरुए की करख्त आवाज़ सुनकर वार्डर बोला, "अच्छा, आप पानी ले जाइये।" और खिसकने लगा।

नरेन बहुत सँभाल कर पानी लिये खिसक-खिसक कर अपनी जगह पर आ बोला, "कामरेड !"

कोई जवाब न पा कर उसने टटोल कर, मंजूर के सिर पर हाथ रख कर फिर कहा, "कामरेड !"

मंजूर ने कसमसा कर आँखें खोलते कहा, "ओह, आँख नहीं खुलती। लाये ?"

"हाँ," उसका सिर अपनी गोद में उठा कर नरेन ने कहा, "लो, मुँह तो खोलो।" और दूसरे हाथ से उसका मुँह टटोल कर, तसला उसके होंठों से लगा दिया।

कई घूँट पानी पी कर मंजूर ने एक लम्बी साँस ले कर कहा, "बस।"

नरेन ने तसला बगल में रख कर उसका मुँह हथेली से पोंछ कर कहा, "अब सो जाओ।"

"कै बजे होंगे ?" मंजूर ने पूछा।

"तीन बज रहे होंगे," कह कर नरेन ने अच्छी तरह उसे अपनी गोद में लिटा लिया और उसके चेहरे पर हाथ फेरने लगा।

तभी टन-टन कर तीन का घड़ियाल बज उठा। नरेन थोड़ा पानी पी, दीवार से टेक लगा, उठंग गया। ठंडक कुछ बढ़ गयी थी। मच्छरों

और पिस्सुओं का उत्पात बिल्कुल नहीं के बराबर रह गया था। उसकी निंदासी आँखें झपकने को हुई कि दिमाग ने फिर चौकड़ी लगानी शुरू कर दी—

वहाँ नरेन की तबीयत न लग रही थी। मजदूरों के साथ तबीयत लगने की बात ही क्या थी ? नरेन इस तरह के वातावरण से बिल्कुल अपरिचित था। उसे तो यह भी मालूम न था कि इस तरह जिन्दगी बसर करने वाले लोग भी दुनिया में हैं। गाँव की जिन्दगी का उसे कुछ अनुभव था। लेकिन उस अबतर जिन्दगी से भी इस जिन्दगी का कोई मुकाबिला न था।

जिस दिन वे पहुँचे थे, उसी शाम को घेनुक उसे 'साहब' के यहाँ ले गया। मजदूरों की उस बस्ती में उसे 'साहब' का घर ही जरा एक मामूली-से-मामूली घर की तरह दिखायी पड़ा। उसके ओसारे में एक नंगी चौकी भी पड़ी थी और एक-दो टूटी-फूटी कुर्सियाँ भी। घेनुक ने बताया था कि वह जे० के० आयरन मिल में एक सुपरवायजर है। उसे वे सब 'साहब' कहते हैं। वह बहुत मेहरबान है। उसने उनमें से कई आदमियों को अपने यहाँ काम दिलवाया है। वह उनकी मदद करने को हमेशा तैयार रहता है। भला आदमी है। अपने को भी वह एक मजदूर ही समझता है और उनके संघर्ष में हमेशा हिस्सा लेता है।

साहब मिला, तो बताया कि आजकल भर्ती बहुत मुश्किल हो गयी है। जो काम कर रहे हैं, उन्हीं की गर्दन पर छँटनी की तलवार लटक रही है। फिर भी वह कोशिश करेगा और देख-सुनकर कल शाम को बतायेगा कि वह कुछ कर सकता है या नहीं।

घेनुक लौटकर चूल्हा जलाने लगा और नरेन कोने में उदास हो बैठा रहा एक बोरे के चीथड़े पर। धीरे-धीरे अँधेरा होते-होते उस टूटे-फूटे ओसारे में एक-एक कर कई चूल्हे जल उठे। उनके धुएँ से हवा

भर गयी। घने धुओं के बीच चूल्हों की लपटों और ढिबरियों की बुझा-बुझी रोशनी के सिवा कुछ दिखायी न पड़ता था। कभी-कभी खों-खों खाँसने, कोई गीत गाने या किसी को जोर से पुकारने की आवाज से ही मालूम होता था कि वहाँ आदमी भी हैं। धीरे-धीरे धुआँ छट गया, तो हर चूल्हे के सामने एक-एक या दो-दो या तीन-तीन काली-काली सूरतें भी दिखायी देने लगीं। उनके मुँहों में रह-रह कर बीड़ियाँ फक-फक जल रही थीं और वे जोर-जोर से खाँस रहे थे। कोई पीतल की थाली में आटा गूँथ रहा था, कोई सरकारी काट रहा था और कोई बर्तन साफ कर रहा था। ये काम बहुत तेजी से चल रहे थे, जैसे वे-सब बहुत भूखे हों और चाहते हों, कि जल्द-से-जल्द रोटी बन जाय, तो अपना पेट भर लें। इन कामों के अलावा उस वक्त उन्हें जैसे और किसी बात का होश ही न हो।

थोड़ी देर के बाद मोटी-मोटी रोटियाँ और गुड़ नरेन के सामने रख कर घेनुक ने कहा, "ले, खा ले। तुझे भूख लगी होगी।" और वह भी उसके पास ही बैठकर खाने लगा।

नरेन उदास और चिन्तित था। उसे भूख नहीं लगी थी। फिर भी मिचरा-मिचरा कर खाने लगा।

घेनुक ने उसे वैसे खाते देखा, तो कहा, "कल तरकारी बनाऊँगा। आज तो कुछ भी बनाने का मन न था। तू न रहता, तो घर से लाया चना-चबेना फाँक कर ही सो रहता।"

खाने के बाद घेनुक ने कहा, "कल तू दिन में यह रोटियाँ खा लेना, मैं तो छै बजे ही मिल चला जाऊँगा।"

तभी एक आदमी ने आकर कहा, "कामरेड शिवशर्मा आये हुए हैं। चुनाव के बारे में साहब के सहन में बस्ती की मिटिंग होगी। जल्दी आप लोग पहुँचिये।"

बेजान मजदूरों में सहसा जैसे एक जान आ गयी। जल्दी-जल्दी खाकर वह उठें और साहब के घर की ओर भाग चले।

घेनुक ने उठते हुए कहा, "तू भी चलेगा?"

"यह किसकी ओर से मिटिंग है? कांग्रेस...." नरेन ने अपने अनुभव की बात कहनी चाही।

"अरे नहीं, कांग्रेस का तो हमें विरोध करना है। हम में से ज्यादा-तर मजदूर-सभा के मेम्बर हैं। मजदूर सीट के लिए हमारी ओर से यहाँ मौलाना युसूफ उठ रहे हैं। तू तो उन्हें नहीं जानता होगा?" घेनुक ने कहा।

"मैं तो नेता जी और गाँधी जी के सिवा किसी को नहीं जानता। खैर, चलो। मैं भी मिटिंग में चलूँगा। कांग्रेस से मुझे नफरत हो गयी है। तुम्हें नहीं मालूम कि जिले पर मैं कांग्रेस की ओर से चुनाव में काम करने आया था। लेकिन जो मुझे वहाँ अनुभव हुआ....मौका मिला, तो मैं तुम्हें फिर कभी बतलाऊँगा।" कहता नरेन भी उठ खड़ा हुआ।

घेनुक ने चलते-चलते कहा, "तू पढ़ा-लिखा है। इसी उमर में एक बड़ी दुनिया भी देख चुका है। देश के लिए लड़ाई भी लड़ चुका है। मेरा ख्याल है...."

सहन में करीब सौ मजदूर अँधेरे में बैठे थे। कामरेड शिवशर्मा ने थोड़े शब्दों में चुनाव की लड़ाई पर रोशनी डाल चन्दे और प्रचार करने के लिए मजदूरों में से नाम माँगे। मजदूर नाम लिखाने लगे।

तभी घेनुक ने उठकर नरेन का परिचय दिया और उससे कुछ बोलने के लिए कहा। सबको यह बात पसन्द आयी। सब 'हाँ, हाँ', बोल पड़े।

नरेन सकपका गया। लेकिन घेनुक ने जबरदस्ती उसे खड़ा कर दिया, तो उसे बोलना ही पड़ा। थोड़ी देर तक उसकी जबान लड़-

खड़ाती रही। फिर वह धड़ल्ले से अपना नया अनुभव सुना गया। सुन कर सब-के-सब जोरों से हँस पड़े, फिर खाँसने लगे, तो बड़ी देर तक रुकने का नाम ही न लिया।

कामरेड शिवशर्मा और कई साथियों ने उसे शाबाशी दी। और चुनाव के कामों मे हिस्सा लेने के लिए भी कहा। उसका नाम भी लिख लिया गया।

लौट कर जब नरेन धेनुक की बगल में चटाई पर लेटा, तो एक आदमी उनके पास आ बैठता बोला, "सो गये क्या, धेनुक भाई?"

"कौन? मंजूर भाई?" कहता धेनुक उठ कर बैठने लगा।

"नहीं, नहीं, तुम सोओ। कब लौटे? घर पर सब खैरियत है न?" व्यस्त-सा हो मंजूर बोला।

"सब चल रहा है। तुम अपनी कहो। शकूर भाई तो अच्छे हैं?" बैठ कर धेनुक बोला।

"हाँ, सब खैरियत ही है। तुम लेटो। मैं तो जरा नरेन साहब से मिलने चला आया।" कह कर मजूर ने नरेन की ओर देखा।

नरेन के कान उधर खड़े हो गये। धेनुक ने कहा, "हाँ, हाँ, अरे नरेन, यह मंजूर है, बड़ा तेज-तर्रार आदमी है। बिजली घर में काम करता है। इससे बातें कर।"

नरेन उठ कर बैठ गया। मंजूर उठकर उसकी तरफ जा बैठा और धेनुक से कहा, "तुम सो जाओ। हम एक-दूसरे को समझ लेंगे।"

"अच्छा, भाई," कहता धेनुक लेट गया।

नरेन कुछ अकचकाया-सा शान्त बना रहा।

थोड़ी देर मंजूर भी जैसे सोचता रहा कि कैसे बात शुरू करे। फिर सीधे ही बोला, "अभी सभा में आपका नाम-गाँव सुन कर आपसे मिलने चला आया....सकीना ने एकाध बार आपका जिक्र किया था...."

सकीना! नरेन के दिमाग में जैसे सूरज चमक उठा। उसके हाथ

ऐसे उठ गये, जैसे अभी वह मंजूर से लिपट जायगा और रोकर बोल पड़ेगा, 'हाँ, हाँ, कहो, कहो, सकीना के बारे में और कुछ कहो! वह मेरी भा....' लेकिन वैसा वह न कर सका। वह कुछ देर तक अपनी व्याकुलता को रोकने की चेष्टा कर, उमड़ती रुलाई को रोकता, आँखें नीची कर बोला, "वह कहाँ है?"

मंजूर ने एक उबलती व्यथा को गले में ही रोककर कहा, "आपको कुछ नहीं मालूम?"

"मुझे क्या मालूम होता? सात साल बाद जब लौट कर आया, तो इतना ही मालूम हुआ कि पुलीस उसे पकड़ ले गयी। उसके बाद उसका क्या हुआ, किसी को कुछ पता नहीं। मैंने इधर-उधर बहुत पता लगाया, लेकिन...." कहते-कहते नरेन का गला फँस गया।

"ओह!" आँसू-भरे स्वर में मंजूर बोला, "उसके बाद....उसके बाद...."

"आपको मालूम है, उसके बाद क्या हुआ?" अपने को और अधिक दबा पाने में असमर्थ हो नरेन फट पड़ा, "बताइये, वह आपको कहाँ मिली? वह कहाँ है?" कह कर नरेन ने दोनों हाथों से मंजूर के कन्धे झकझोर डाले।

मंजूर ने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में दबा कर कहना शुरू किया....

मंजूर ने नींद में करवट बदलनी चाही, तो आह-आह कर उठा। उसे सँभालते नरेन चौंक कर बोल पड़ा, "क्या हुआ?"

"यों पड़े-पड़े देह अकड़ गयी है। लेकिन तुम्हारी आवाज़ ऐसी क्यों हो गयी है? रो रहे थे क्या? पागल! नींद नहीं आ रही?" मंजूर ने सिर उठाते कहा, "भाभी की याद आ रही है? दिल की मुहब्बत आदमी को भोला बच्चा बना देती है। है न? वर्ना लपटों से जूझने का साहस रखने वाला इंसान यों बच्चों की तरह नहीं रो पड़ता।"

"तुम ठीक कह रहे हो," मंजूर का सिर अपनी गोद में ठीक से रखता नरेन बोला, "लेकिन तुम ज्यादा न बोलो। अब रात बहुत नहीं है। थोड़ी देर और यह तकलीफ़...."

"सुबह होते ही यह तकलीफ छूमन्तर हो जायगी क्या?" मंजूर ने हँसना चाहा, लेकिन उसकी हँसी विवशता की पीड़ा की एक कराह बन कर रह गयी। अन्दर-ही-अन्दर जैसे तड़पता वह बोला, "मैं चाहूँ भी, तो क्या बोल सकता हूँ? ज़ालिमों ने...." और अचानक वह चुप हो गया।

नरेन उसके चेहरे को सहलाता चुप बना रहा, गोकि मंजूर के उस एक वाक्य से ही उसकी आत्मा तड़प उठी। एक क्षण को उसके जी में यह जरूर आया कि वह उसे अपने कलेजे से ऐसे चिपका ले और अपनी सारी शक्ति का अमृत उस पर ऐसे छिड़क दे, कि उसकी विवशता के विष का प्रभाव नष्ट हो जाय और वह पहले ही की तरह अपने स्वस्थ और आजाद कहकहों से सारा जेल गुँजा दे और अपने नारों की दहाड़ से आसमान को लरज़ा दे।

"नरेन, अब नींद न आयगी। तुम कुछ कहो। यों चुप-चुप क्या सोच रहे हो?" मंजूर ही बोला।

दिमाग आज यों ही गुजरी ज़िन्दगी के सफ़हे पलटने लगा था, मंजूर। एक-एक कर सभी बातें याद आ रही हैं।" नरेन ने कहा।

"एकाध सफहा मुझे भी सुनाओ। जरा तबीयत बहले।"

"दुत, तू क्या सुनेगा?"

"मैं सब सुनूँगा। याद है नरेन, वह रात, जब पहले-पहल हम मिले थे। उस पहली मुलाकात में ही एक पागल की तरह न जाने कैसे कितनी-कितनी दिल की बातें मैं तुम्हें सुना गया था। लेकिन तू ऐसा चुप्पा है कि..."

"क्या बताता?"

"और मैंने क्या बताया था?"

"तूने तो वह बातें बतायीं, कि उसी छन से मेरी ज़िन्दगी बदल गयी। जानता है, तुझसे मिलने के पहले मेरी क्या हालत थी?"

"कभी बताया था क्या?"

"नहीं, तो आज सुन ले कि उस वक्त अगर मैं कुछ चाहता था, तो वह मर जाना था। उस बेकार की भारी जिन्दगी से मैं छुटकारा चाहता था। मेरी जिन्दगी में कोई ऐसी चीज़ बाकी न रह गयी थी, जिससे जिन्दा रहने की चाह होती। कमा-खाकर एँड़ियाँ घसीटते जिन्दगी काट देने का मुझे कतई अनुभव न था और न इस तरह जिन्दा रहने की बात ही कभी ध्यान में आयी थी। मेरे जीवन में केवल दो ही प्रेरक शक्तियाँ थीं—माँ और भाभी। जब मैं सात साल बाद लौट कर आया और इन दोनों को खत्म पाया, तो जैसे उसी दिन मेरी जिन्दगी भी खत्म हो गयी। एक चीज़ और थी, जो उस दौरान में मेरे दिल और दिमाग पर छायी थी। वह चीज़ नेताजी और देश-प्रेम का जादू थी। लेकिन अब यह कहते मुझे जरा भी झिझक नहीं कि वह मेरे दिल और दिमाग पर एक आवरण की ही तरह छायी हुई थी। आत्मा से उसका सम्बन्ध न था, वह एक वक्ती जोश था, एक अन्धी प्रेरणा थी, एक अज्ञान की बलिदानी उमंग थी, जो अन्धकार के पर्दे पर अचानक चमक कर आँखों को चौंधियाँ गयी और अपने पीछे-पीछे खींचती चली गयी। जिस दिन सच्ची जिन्दगी से वह टकरायी, उसी दिन उसका जादू टूट गया। जिन्दगी की उन पुरानी प्रेरक शक्तियों का वह स्थान न ले जा सकी। और जो बची-खुची थी, वह भी उस दिन कांग्रेस-दफ्तर में हमेशा के लिए खत्म हो गयी।

"कानपुर मैं कोई उद्देश्य लेकर नहीं आया था। घेनुक के साथ यों ही चला आया था। और यह सच मानो, अगर तुमसे उस रात भेंट न हुई होती, और तुमने वह बातें न कही होतीं, तो कौन जाने मेरी क्या हालत होती।

"याद आती है, एक समय लाल किले में कैद की ज़िन्दगी, गुलामी से मुक्ति पाने के लिए मैं अपनी मौत के लिए प्रार्थना किया करता था। और आज इस कैद में. इस दशा में भी मैं जिन्दगी, केवल जिन्दगी की कामना करता हूँ, कामना ही नहीं, जिन्दा रहने के लिए अपनी आत्मा की शक्ति-भर मौत और उसके जेल के फरिश्तों से लड़ने का साहस रखता हूँ। और मै यह लड़ाई अपने खून की अन्तिम बूँद तक लड़ूँगा, क्योंकि जीवन मुझे दुनिया की हर चीज़ से ज्यादा प्यारा है। प्यारा इसलिए नहीं, कि उससे मुझे मोह है, बल्कि इसलिए कि वह संसार की सबसे अनमोल वस्तु है, उससे, उसकी शक्ति से हम दुनिया की, इतिहास की वह सबसे बड़ी लड़ाई लड़ते हैं, जो दुनिया को हमेशा के लिए खुशहाल कर देगी, इन्सान-इन्सान की जिन्दगी को हमेशा-हमेशा के लिए सरसब्ज कर देगी, इन्सानियत के माथे से शोषण के कलंक को धो देगी, इन्सान-दुश्मनों के पैदा किये हुए दुख, गम, आँसू, भूख, गरीबी, नंगेपन को मिटा देगी, समाज-शत्रुओं की पैदा की गयी दुश्मनी, अविश्वास, नफरत, गुस्से, ईर्ष्या, धोखे, चोरी, लूट और व्याभिचार को समाप्त कर देगी; और जो संसार के हर बच्चे के होंठों पर फूलों की मासूम मुस्कानें छिड़क देगी, संसार की हर नारी के मुखड़े पर चाँद की हसीन किरनें बिखेर देगी, संसार के हर पुरुष के माथे पर सूरज का प्रखर प्रकाश मढ़ देगी; और सारा संसार इन मुस्कानों, इन किरनों और इन प्रकाशों से जगमग-जगमग हो उठेगा!

"साथी, आज इस लड़ाई की ही तरह मुझे अपनी जिन्दगी प्यारी है, तू प्यारा है, सकीना प्यारी है, बुलबुल प्यारा है, सब साथी प्यारे हैं, संसार का बच्चा-बच्चा प्यारा है। इस लड़ाई को देखने की आँखें मुझे तुमसे मिलीं, समझने का दिमाग मुझे तुमसे मिला, अनुभव करने का हृदय मुझे तुमसे मिला। और फिर मुझे मालूम हुआ कि यही मेरी सही आँखें थीं, यही मेरा सही दिमाग था, यही मेरा सही हृदय था। और

मेरी आत्मा इन आँखों, इस दिमाग और इस हृदय को पाकर अजेय हो गयी है। साथी, मेरा सलाम कबूल करो!"

"नरेन!" मंजूर न जाने कैसे चीख उठा।

नरेन के काँपते हाथो पर आँसू लुढ़क पड़े। उसने मंजूर की आँखों पर हाथ रख दिये।

"ये साथी के प्यार के सदके हैं!" मंजूर बोला, "तुम रुको नहीं, कहते जाओ, कहते जाओ!"

"इन बातों को कहने में मुझे खुशी होती है, कामरेड! लेकिन इन बातों को जबान देने में मुझे उतनी ही तकलीफ भी महसूस होती है। हृदय की गहरायी से, आत्मा के आवेश से निकली हुई बातों के लिए मेरे पास जबान कहाँ है? फिर भी सुनो! आज मैं तुम्हें सब सुनाऊँगा।

"उसी रात से मुझे कानपुर से मुहब्बत हो गयी, मजदूरों से मुहब्बत हो गयी और उन टूटे-फूटे, गन्दे, खोभारों से बदतर झोपड़ियों के खँडहरों से मुहब्बत हो गयी, जिनमें तुम लोग रहते थे, जहाँ बैठकर तुम लोग हड़तालों की बातें करते थे, जहाँ सोकर तुम लोग एक नये समाज, एक नयी जिन्दगी के सपने देखते थे, जहाँ मोटी-मोटी रोटियाँ और नमक खाकर तुम लोग संघर्ष करने की शक्ति प्राप्त करते थे।

"तुम लोगों के साथ रह-सह कर जिन्दगी में पहली बार मैंने समझा, कि सच्चे इन्सान क्या होते हैं, हमदर्द दोस्त किन्हें कहते हैं, प्यार, मुहब्बत और सचाई क्या है; काम, मिहनत और लगन क्या होता है, जिन्दगी, संघर्ष और शक्ति क्या है; सेवा, त्याग और बलिदान क्या होता है!

"इन बातों का पहले मुझे जो भी अनुभव हुआ था, वह किसी समझ के बिना पर न था, सीधे जीवन के संघर्ष से वे बातें न निकली थीं, इसीलिए उनमें न कोई सैद्धान्तिक शक्ति थी; और न आत्मा में सीधे घुस जाने वाली संजीविनी। उनका केवल क्षणिक महत्त्व था।

जीवन के पूरे प्रसार पर छा जाने वाला प्रभाव नहीं। लेकिन आज वह बात नहीं है, कामरेड। आज तो आँखों के सामने वह प्रकाश फैला है, जो कभी, मौत की गोद में भी मद्धिम न होगा; आज आत्मा उस शक्ति से शक्तिमान है, जिसने न कभी हार जानी, न कभी जानेगी!

"मुझे आज एक-एक बात याद आ रही है। और इन बातों का मेरी जिन्दगी में वही महत्त्व है, जो एक बच्चे के जीवन में माँ के दूध का होता है। सचमुच जिस दिन मैं तुम लोगों के बीच आया, उस दिन क्या मै एक बच्चे की ही तरह न था? घेनुक एक दिन कहता था, कि मैं कुछ पढ़ा-लिखा हूँ, एक बड़ी दुनिया देखी है। लेकिन आज मुझे यह कहते जरा भी शर्म नहीं, कि जिन्दगी की दुनिया उसने मुझसे कहीं बड़ी उस दिन भी देखी थी और आज भी देखे है। और जिस दिन मैंने यह सचाई अनुभव की, उसी दिन मेरा सिर उसके धूल-अटे पैरों पर झुक गया।"

नरेन का हृदय जब इस आभार से भर आया, तो वह चुप हो गया। मंजूर से भी कुछ बोला न गया। थोड़ी देर के बाद फिर नरेन के होंठों पर जिन्दगी के सफ़हे बुदबुदाहट के स्वर में खुलने लगे। और फिर वह गुजरे को लेकर गुम हो गया—

साहब की कोशिश से एक महीने बाद नरेन को जे० के० काटन में नौकरी मिल गयी। एक महीने तक नरेन जुटकर चुनाव के काम करता रहा, मजदूर-बस्तियों में पर्चे बाँटता, पोस्टर चिपकाता रहा और जलूसों में नारे लगाता रहा। अक्सर शाम को मंजूर उसके यहाँ आता। कभी-कभी वह शकूर के यहाँ भी उसे ले जाता। वे घंटों बैठकर बातें किया करते, अखबार पढ़ा करते। साथ ही वे मजदूरों की मिटिंगों में भी जाया करते और वहाँ सुनी बातों पर बहस भी किया करते।

सब की नजरें बचाकर नरेन एक काम और भी करता रहा। मंजूर

से भाभी के बारे में सब-कुछ सुनकर, उसे विश्वास हो गया था, कि भाभी जिन्दा है और बहुत सम्भव है कि वह इसी शहर के किसी कोने में पड़ी हो। फौजी जिन्दगी में उसने कई अपहरण की कहानियाँ पढ़ी थीं। वह सोचता था कि हो सकता है कि भाभी को भी कोई धोखे से भगा ले गया हो। मंजूर की बातों से यह साफ था कि भाभी पिछली बातों को भूलकर एक नयी जिन्दगी बनाने में तत्पर हो गयी थी। उस हालत में यह कभी भी सम्भव नहीं कि वह आत्म-हत्या कर ले। निदान नरेन को जब भी फ़ुरसत मिलती, वह शहर के अन्दर के किसी-न-किसी मुहल्ले में घूमा करता और पता लगाया करता।

आगे चल कर मिलों में आठ घंटे के काम और पहले के बराब-री तनखाह के मसले को लेकर जब मजदूर सभा की सरगर्मियाँ बढ़ गयीं और खुद उसके मिल में भी संघर्ष शुरू हो गया, तो उसे बहुत कम समय मिलता। फिर भी किसी-न-किसी तरह समय निकाल कर वह भाभी की खोज में जरूर निकल जाता। जैसे वह भी सब महत्व-पूर्ण कामों में ही एक हो।

मिल में सरकार के आदेशानुसार जब आठ घंटे का दिन लागू हुआ, तो मिलवालों ने इसे असफल करने के लिए अपनी तिकड़मबाजी शुरू कर दी। उन्होंने हर पाली नियत समय से बीस-पचीस मिनट पहले शुरू करना और बीस-पचीस मिनट बाद बन्द करना आरम्भ कर दिया। इस तरह उन्होंने अपने एक घंटे का खमियाजा निकालने की साजिश की। मज़दूरों ने इसे समझा, तो इसके खिलाफ़ आवाज़ बलन्द की। इस पर मिल-मालिकों ने रिले सिस्टम चालू करने का निश्चय किया। इसकी आड़ में भी उनकी वही मंशा थी। लेकिन मजदूरों ने इस सिस्टम से काम करना साफ इनकार कर दिया। इस चाल को भी चलते न देख मिल-मालिकों ने अपनी तीसरी शतरंजी चाल दिखायी। उन्होंने अब दोनों पालियों के बीच एक घंटे का अन्तर कर दिया। ऐसा

करके उनका ख्याल था कि पहली पाली को समय खत्म होने के बाद भा बीस-पचीस मिनट और चला कर और दूसरी पाली को बीस-पचीस मिनट पहले शुरू कर, मजदूरों को बुद्धू बना अपना उल्लू सीधा कर लेंगे। लेकिन मज़दूर अब इतने बुद्धू न थे। उन्होंने इस चाल को भी समझ लिया और दूसरी पाली के मज़दूर जैसे ही पहली पाली का वक्त खतम हुआ, अपनी-अपनी ड्यूटी पर पहुँच गये। इस तरह अधिकारियों की चालीस-पैंतालीस मिनट मज़दूरों से मुफ्त काम करवाने की चाल भी हवा हो गयी।

इस पर अधिकारियों ने दूसरा पैंतरा बदला। जे० के० ग्रूप के मज़दूरों की रहनुमाई तिरासल के मज़दूर करते थे। वर्ग-संघर्ष के ये आगे बढ़े हुए मज़दूर थे। अधिकारियों का नया वार अब की इन्हीं पर हुआ। उन्होंने ऐलान किया कि तिरासल का एक कमरा बन्द कर दिया जायगा और दो पाली की जगह तीन पाली चलायी जायगी, लेकिन तीसरी पाली के लिए नये मज़दूर भर्ती न कर, पुराने मज़दूरों को ही तीनों पाली में बाँट दिया जायगा। ऐसा करके उन्होंने मज़दूरों को बाँटकर, उनके एका और संगठित शक्ति को कमजोर कर टेढ़े तौर पर अपनी मंशा कामयाब करने की सोची थी। लेकिन यह टेढ़ी चाल भी मजदूरों ने भाँप ली और उन्होंने ऐलान किया कि तीसरी पाली के लिए नये मजदूर भर्ती किये जायँ। पुराने मज़दूर, जो दो पाली पर काम करते थे, वे अब भी दो ही पाली पर काम करेंगे।

दूसरे दिन मजदूर जब फाटक पर पहुँचे, तो वहाँ हथियारबन्द पुलीस तैनात थी और हुक्मनामा टंगा था कि अगर मज़दूरों को अधिकारियों के आज्ञानुसार काम करना हो, तो अन्दर जायँ, नहीं तो नहीं। मजदूरों पर यह सीधा हमला था और पुलीस का भय दिखा कर उनसे काम कराने की साजिश थी। मजदूर इस हमले से गुस्सा हो गये और नारा दे कर जो फाटक की ओर एकजूट बढ़े, तो पुलीस की हवा सरक गयी। उनकी संगीनें आसमान तकती रहीं और मजदूरों ने अपनी ताकत

से मिल के अन्दर घुस कर यह दिखा दिया कि वे इन धमकियों से घबराने वाले नहीं।

जब यह भी वार खाली गया, तो मालिक एक कदम और आगे बढ़े। तालाबन्दी का ऐलान हुआ। मजदूरों के पेट पर यह लात मारना था। मजदूर इसे कैसे सहन कर सकते थे ? उन्हें क्या मालूम था, कि मालिक अब अपने आखिरी अस्त्र, दमन और आतंक को उठाने वाले हैं। मजदूर जब फाटक पर जमा हुए, तो अचानक उन पर चारों ओर से ईंट-पत्थर की वर्षा शुरू हो गयी और संगीनें चमकने लगीं। भौंचक-से हो मजदूर थोड़ी देर तक तो खड़े रहे। फिर भी ईंट-पत्थर का बरसना जब बन्द न हुआ और चारों ओर से पुलीस उन्हें घेरने लगी, तो उन्होंने भी जवाब देना शुरू कर दिया और फाटक की ओर समुद्र की तरह बढ़ने लगे। फाटक पर गुण्डों और पुलीस की मोर्चाबन्दी पहले ही से थी।

आखिर गेट पर ही मजदूरों ने मिटिंग की और जोरदार शब्दों में इस गैरकानूनी तालाबन्दी के खिलाफ अपना गुस्सा जाहिर किया और कांग्रेस हुकूमत से मांग की कि इसके लिए मालिकों को उचित दंड दिया जाय और ताला तोड़वाया जाय।

नरेन की जिन्दगी में यह संघर्ष का पहला अनुभव था। उस दिन दिन-भर वह ऐसा आवेश महसूस करता रहा कि उसका दिल लगातार धड़कता रहा। करीब बीस मजदूरों को चोट लगी थी। नरेन के माथे पर भी एक पत्थर पड़ा था, वहाँ बड़ा-सा गुम्मड़ उठ आया था। उसकी उँगलियाँ उस गुम्मड़ पर बार-बार फिरती रहीं और उसकी आँखों के सामने वह दृश्य बार-बार नाचता रहा। मजदूरों की ताकत, उनका संगठन, उनका साहस देखकर आज पहली बार उसने समझा था कि वे बैठकों, मिटिंगों में सिर्फ जोश से बोलते ही नहीं, बल्कि मोर्चे पर डँटना और उसे सर करना भी जानते हैं। उसने देखा था कि उनकी

बेपनाह ताकत देखकर किस तरह हाथों में संगीन लिये पुलीसों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

मजदूरों से सुनकर और खुद भी समझ कर आज वह इस नतीजे पर पहुँच गया था कि मजदूरों का यह संघर्ष रोजी और रोटी की लड़ाई है। आखिर अचानक तालाबन्दी कर मजदूरों के पेट पर लात मारने का क्या मतलब है? सरकारी कानून के मुताबिक मजदूर आठ घंटे ही काम करना चाहते हैं, तो इसमें उनकी क्या गलती है? मिल मालिक उनसे मुफ्त में ओवर टाइम क्यों कराना चाहते हैं? मजदूर बेगार क्यों करें? काम का कानूनी मुवावजा तो उन्हें मिलना ही चाहिए। दो पाली के मजदूरों से ही तीन पाली के मजदूरों का काम ले, वे एक पाली के मजदूरों की रोजी क्यों छिनना चाहते हैं? अगर मजदूर अपने दूसरे भाइयों की रोजी का ख्याल कर ऐसा करने से इनकार करते हैं, तो क्या बुरा करते हैं? ये मिल-मालिक इन न्यायपूर्ण बातों को क्यों नहीं मानते? और जबरदस्ती गुलामों पर हुक्मों की तरह अपना हुक्म मनवाने के लिए, मजदूरों की मिहनत की कमाई अपनी जेबों में भरने के लिए पुलीस की क्यों मदद लेते हैं, मजदूरों पर ईंट-पत्थर क्यों फेंकवाते हैं? और सरकार भी अपनी पुलीस इन अन्याइयों की मदद को क्यों भेज देती है? वह न्याय की माँग करने वाले मजदूरों की सहायता क्यों नहीं करती?

और नरेन के दिल में यह बात बैठ गयी कि यह मजदूरों की लड़ाई न्याय की लड़ाई है, रोजी-रोटी की लड़ाई है और ये मिल-मालिक मजदूरों पर बरजोरी अन्याय करते हैं, उनकी रोजी पर हमला करते हैं और उनके इस हमले में सरकार उनकी सहायता करती है। यह सरकार उन्हीं के पक्ष की है। उससे मजदूरों की भलाई नहीं हो सकती। मजदूरों को अगर अपना हक लेना है, अपने साथ न्याय कराना है, अपनी रोजी की हिफाजत करनी है, तो उन्हें यह लड़ाई लड़नी ही होगी।

बिना इसके उनकी रोजी-रोटी सुरक्षित रह ही नहीं सकती। ये मिल-मालिक तो सिर्फ अपनी ही जेब भरना चाहते हैं, मजदूरों की वाजिब मजदूरी देते भी इनकी नानी मरती है।

यह ईंट-पत्थर की चोट मजदूरों के दिलों पर अभी मुर्झा भी न पायी थी, कि कांग्रेसी सरकार ने एक दूसरा भरपूर वार मजदूरों पर कर दिया। मजदूर-मन्त्री काटजू ने 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' पेश करने का ऐलान कर मिल-मालिकों को तो कवच पहना दिया और मजदूरों के हाथ के एकमात्र अस्त्र, हड़ताल, को भी छीन लिया। सूबे-भर की जंगी हड़तालों से मिल-मालिकों की रक्षा करने और मजदूरों की न्यायपूर्ण मांगों को कुचल देने का यह मिल-मालिकों और सरकार का एक बहुत बड़ा षड्यन्त्र था।

शाम को नरेन शहर से लौटा, तो देखा; ओसारे में मजदूरों की भीड़ लगी हुई थी। ढिबरी की कालिख उगलती रोशनी में जमीन पर फैले अखबार को घेनुक टो-टो कर पढ़ रहा था और बस्ती के सारे मज-दूर उसे घेरे हुए बैठे और खड़े सुन रहे थे। सबके तेवर चढ़े हुए थे। सब ध्यान और उत्सुकता से सुन रहे थे और बीच-बीच में अपने उद्-गार भी प्रकट करते जाते थे।

नरेन को देख कर प्यारे ने कहा, "अरे, तू कहाँ था अभी तक?" फिर घेनुक की ओर मुड़कर उसने कहा, "घेनुक भाई, नरेन आ गया। दे दो, जल्दी-जल्दी यह पढ़ दे।"

घेनुक ने अपनी थकी आँखें उठा कर देखते कहा, "कहाँ है? उसे तो मैं खोज ही रहा था।"

नरेन उसके पास जा बैठा। कई मजदूरों ने एक साथ ज़ोर से कहा, "ज़रा ज़ोर से और जल्दी-जल्दी पढ़ो तो।"

घेनुक ने उँगली से दिखा कर कहा, "यहाँ से पढ़ो।"

नरेन पढ़ने लगा—

"इस बिल के बारे में कानपुर के मजदूरों के प्राण कामरेड यूसुफ ने कहा है—यह बिल भारत रक्षा कानून का ही दूसरा रूप है। इस बिल में मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार पर वार किया गया है, जो मजदूरों की जमात का सबसे बुनियादी अधिकार है। गरीबी, भूख और शोषण से हिन्दुस्तान के मजदूर ऊब गये हैं। युक्त प्रान्त में और सारे देश में वे अपनी दशा सुधारने के लिए उठ खड़े हुए हैं और हड़तालें कर रहे हैं। हड़ताल की इस लहर को दबाने के लिए यह बिल बनाया गया है।

"मैं सूबे की तमाम मजदूर-सभाओं और यूनियनों से अपील करता हूँ। खामोश रहने से काम नहीं चलेगा। उठिये और जिस रोज़ यू० पी० असेम्बली में यह काला बिल पेश किया जाय, उस रोज तमाम सूबे में हड़ताल कीजिये। कांग्रेसी सरकार से माँग कीजिये कि वह इस मजदूर-विरोधी बिल को फौरन वापस ले।"

मजदूर चीख उठे, "हम जरूर हड़ताल करेंगे!"

तभी एक आवाज आयी, "साथियो! ज़रा एक मिनट के लिये रुको! मुझे कुछ जरूरी बातें कहनी हैं।"

सबने मुड़ कर देखा, मंजूर हाथों में कागज का बण्डल लिये खड़ा कह रहा था, "साथियो! तुम लोगों को मालूम ही है कि म्योर मिल में १२ दिन से हड़ताल चल रही है। उन मजदूरों की सहानुभूति में स्वदेशी मिल के मजदूरों ने भी तेरह तारीख से हड़ताल शुरू कर दी है और दूसरे मिलों में भी यही हो रहा है। कांग्रेसी नेता, पुलीस और मिल-मालिक गठबन्धन कर, अलग-अलग एक-एक मिल के मजदूरों को आतंकित कर हमारा संगठन और ताकत तोड़ने की साजिश रच रहे हैं। इसी का नतीजा कल स्वदेशी मिल के फाटक पर देखने को मिला। लेकिन मजदूरों की बहादुराना हिम्मत से उन्हें मुँह की खानी पड़ी। तुम्हें मालूम होगा कि वहाँ उस वक्त एक हजार कांग्रेसी लाठीबन्द स्वयं-

सेवक, एक हजार पुलीस और दो सौ फौजी हमारी ताकत देखने लैस हो कर आये थे। उन्होंने अपनी ताकत की आजमायश भी की, लेकिन बहादुर मजदूरों के सामने वे टिक न सके और आखिर मिल के अन्दर उन्होंने छिप कर अपनी जान बचायी। वे यह साजिश फिर करेंगे। इस साजिश का पर्दाफाश करने के लिए और अपनी एकता-प्रदर्शन के लिए।इतवार को तमाम मिलों के मजदूरों की एक सभा परेड पर शाम को चार बजे होगी। ये उसके पोस्टर और पर्चे हैं। इन्हें आज रात को ही चिपका देना है और पर्चे कल तक जरूर बँट जाने चाहिए। तुम्हें मालूम है कि आज सरकार ने एक सौ चौआलीस दफा शहर में लगा रखी है और हमारे नेताओं, कामरेड यूसुफ, शिबशर्मा और कामरेड काली शंकर को गिरफ्तार करने की भी फिक्र में है, ताकि हम कुछ कर न सकें। मगर हमें कोई भी दफा रोक नहीं सकती। हमें निडर हो कर मजदूर-सभा का हर काम करना चाहिए और सभा में हर मजदूर को आना चाहिए।....ये पोस्टर और पर्चे हैं। मुझे अभी दूसरी जगह भी जाना है।"

मंजूर चला गया, तो फिर मजदूरों ने नरेन को पढ़ने के लिए कहा। नरेन पढ़ चुका, तो धेनुक ने कहा, "पोस्टर चिपकाने कौन-कौन जायेंगे?"

मजदूरों ने एक स्वर हो कर कहा, "तुम जिसे कहो। हम-सब तैयार हैं।"

आखिर दो-दो आदमियों की चार टोलियाँ बनीं। नरेन और प्यारे एक साथ थे। नरेन को पहली बार यह जिम्मेदारी का काम पाकर बड़ी खुशी हुई।

आज नरेन ने अच्छी तरह खाया भी नहीं। उसे बड़ी जल्दी मची थी। रात का सन्नाटा जब गहरा हो गया, तो चारों टोलियों को खूब समझा-बुझा कर धेनुक ने भेज दिया।

नरेन आज अपने में एक अजीब आवेश और स्फूर्ति महसूस कर रहा था। रात के सन्नाटे में सुनसान सड़क पर जब वे आये, तो प्यारे ने कहा, "घबराना मत, दोस्त! अगर कोई वैसी बात हो, तो धीरज न खोना और मेरी परवा न कर बचने की भी कोशिश करना। वैसे में भागने से बेहतर कहीं छिप जाना होता है। आस-पास गली-कूचों की कमी नहीं। भरसक मैं तुम्हें अकेले न छोड़ूँगा। मजबूरन वैसा हो भी, तो मेरी बातों का ख्याल रखना।"

तभी एक ओर से मोटर की घरघराहट की आवाज आयी। प्यारे ने उसका हाथ पकड़ खींचा और पान की दुकान के पीछे हो गया। मोटर घरघराती निकल गयी। प्यारे ने झाँक कर कहा, "पुलीस वान है। चलो, अब थोड़ी देर तक इधर नहीं आयेगी। हाथ-पैर से ज्यादा अपने कानों को चौकस रखने की जरूरत होती है। लाओ तो लेई, पहला पोस्टर इस दुकान पर ही चिपकायेंगे। यह सब से अच्छी जगह होती है। मज़दूर ऐसी जगहों पर बहुत आते हैं न।"

एक मिनट के अन्दर ही प्यारे ने चट पोस्टर चिपका दिया। खुशी बरसाती आँखों से देखते नरेन ने उस पोस्टर पर हाथ फेरा, ठीक वैसे ही, जैसे कोई माँ अपने बच्चे पर हाथ फेरती है।

फिर घरों से बिल्कुल सट कर चलते वे चौराहे पर आ गये। चार पोस्टरों में लेई लगा प्यारे ने नरेन को दो पोस्टर दे कर कहा, "ये दो उधर चिपका तो आओ जल्द!"

अपने हाथ से पोस्टर चिपकाने का मजा कुछ और ही होता है। नरेन खूब सँवार कर अच्छी तरह पोस्टर चिपकाने लगा। तभी प्यारे ने उसके पास आ कहा, "इतनी देर लगाओगे, तो काम नहीं चलेगा। मिल की सीटी सुन कर जितनी जल्दी में कौर निगलते हो, उतनी ही जल्दी यह काम भी करना चाहिए। लाओ, यह मुझे दे दो।"

तभी बायें से सीटी की आवाज सुनायी दी। प्यारे ने नरेन का हाथ पकड़ कर उसे सड़क-किनारे पड़ी एक चौकी की ओर खींचा और दोनों चौकी के नीचे घुस गये।

जूतों की आवाजें पास आती गयीं। फिर खुसुर-फुसुर की भी आवाज़ें आने लगीं। नरेन का दिल धड़-धड़ बज रहा था। उसने प्यारे का हाथ किचकिचा कर पकड़ रखा था।

धीरे-धीरे जब जूतों की आवाज़ें गुम हो गयीं, तो प्यारे झाँकता हुआ फुसफुसाया, "आज तो ये बड़ी सरगर्मी दिखा रहे हैं! आओ, उधर चलेंगे।"

दोनों निकल कर पहले धीरे-धीरे, फिर तेज कदमों से किनारे-किनारे चलने लगे और चट-चट पोस्टर चिपकाने लगे।

नरेन के हाथों में भी अब बिजली की फुर्ती आ गयी।

आधे घंटे में पचासों पोस्टर वे चिपका चुके, तो प्यारे ने कहा, "हँडिया वहाँ पेड़ के नीचे रख दो। वह सुबह ले जायेंगे। अब चिन्ता की कोई बात नहीं, काम हो गया। खाली देह पर कोई मुसीबत भी आयी, तो देख लेंगे।"

और चौकन्ने होकर दोनों तेज कदमों से लौट पड़े।

नरेन की खुशी का ठिकाना न था। मज़दूर-सभा का पहला ऐसा काम उसने पूरी कामयाबी से निभा दिया था। साथ ही इस अनुभव ने उसके दिल को भी मज़बूत कर दिया था। समझ पर सान चढ़ गयी।

पहुँचे, तो उनके पहले ही टोलियाँ पहुँच गयी थीं। सब अपने-अपने अनुभव सुनाने लगे। रामू ने कहा, "पुलीस काफ़ी चौकस मालूम होती है।"

गयास ने कहा, "इससे मालूम होता है कि हमारी ताक़त का उन पर कितना असर है।"

प्यारे ने कहा, "अम्या, बौखला गये मालूम होते हैं।"

"यह बौखलाना ही तो बताता है कि वे कितने कमज़ोर हैं। कहीं मजबूत आदमी को भी बौखलाते देखा है ?" द ना ने कहा।

"ज़रा हमारी सभा तो हो जाय। हज़ारों मजदूरों को जमा देखकर इन्हें हमारी ताकत का कुछ अन्दाजा तो जरूर हो जायगा।" गयास बोला।

"इसका कुछ अन्दाजा तो उन्हें विक्टोरिया मिल के फाटक पर लग ही गया होगा।" ननकू कह पड़ा।

"तभी तो यह सरगर्मी है...." प्यारे कुछ और कहना चाहता था, कि धेनुक ने डाँटा, "अरे सोना नहीं है क्या ? मालूम है, कल कितना काम करना है। सो जाओ अब तुम लोग।

सब पड़ गये। लेकिन नरेन को उस रात नींद न आयी। वह रात भर मजदूरों के इस संघर्ष के बारे में सोचता रहा। निहत्थे, गरीब, भूखे, कमज़ोर मजदूरों का यह कितना बड़ा दिल है, जो ये मिल-मालिकों, हाकिमों और पुलीस की ताक़त से इस तरह भिड़ने का जोर रखते हैं! और उसे महसूस हुआ कि उसका दिल भी आज बढ़कर गज-भर का हो गया है। इन जालिम ताकतों से मोर्चा लेने के लिए हर मजदूर का दिल जैसे गज भर का ही हो गया है। दिल की इस बेपनाह ताकत के सामने जालिम संगीनें क्या ठहरेंगी ? यह ताकत सचाई की ताकत है, न्याय की ताकत है, हक की ताकत है, रोटी-रोजी हासिल करने की भूखों की ताकत है! मजदूरों ने अपनी इस ताकत को अब समझ लिया है। वह जान गये हैं, कि जो-कुछ होता है, उन्हीं के किये होता है। वह न करें, तो बाज़ार की यह रौनक कच्चे रंग की तरह एक छन में घुल जाय, कोठियों की शान मिट्टी में मिल जाय। और उन्हीं को भर पेट खाना न मिले, तन ढँकने को कपड़ा न मिले, रहने को घर न मिले। यह कैसा अन्याय है! नहीं, नहीं, इस अन्याय को खतम किये बिना मजदूर सुखी नहीं हो सकता, इन अन्याइयों को खतम किये बिना दुनिया का यह सबसे

बड़ा अन्याय खतम नहीं हो सकता। सोचते-सोचते कितनी ही बार नरेन की मुट्ठियाँ बँध गयीं और सीना फूल-फूल उठा। उसे पहली बार आज महसूस हुआ कि क्यों नहीं पहले वह यह-सब समझ सका, और इस ज़िन्दगी की लड़ाई में हिस्सा ले सका ? क्यों उसने इतने साल व्यर्थ में काट दिये ? और उसे इसका बहुत अफसोस हुआ। और उसने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि उसे अब इतना काम करना चाहिए कि पहले की बेकार जिन्दगी का घाटा भी पूरा हो जाय।....

इतवार के दिन परेड पर तीस-चालीस हज़ार मजदूरों और अनगिनत लहराते लाल झण्डों को देख, नरेन की आँखें झपकने लगीं। मैदान के चारों ओर फौजियों और पुलीसों का घेरा लगा था। फिर भी निडर मजदूरों के दल-के-दल तेज़ धारा की तरह सभा में आ-आ मिलते जा रहे थे और सभा छन-छन ज्वार के समन्दर की तरह फूलती जा रही थी।

देखते-देखते सारा मैदान खचाखच भर गया। रह-रह कर नारों से दसों दिशायें गूँज-गूँज उठतीं और लगता, जैसे जन-सागर की लहरें उफन-उफन कर आसमान को छू लेती हैं और संसार के कण-कण को अपनी जिन्दगी और ताकत की बौछारों से भिंगो-भिंगो देती हैं। सन्ध्या की सुनहरी किरणें झण्डों पर खुशियों की मुस्कान छिड़क रही थीं और उनकी आभा में मजदूरों के चेहरों पर जैसे शक्ति चमक-चमक उठती।

नरेन की आँखों में जैसे यह समूह समा ही न रहा था। क्या इसी तरह मजदूरों की शक्ति अपरिमेय, अनन्त नहीं है ? मजदूरों की ताकत को माप लेना क्या सम्भव है ? सृष्टि का वह कौन-सा कण है, जो मजदूरों की ताकत से रोशन नहीं ? सृष्टि के कणों को गिन लेना क्या सम्भव है ? आज नरेन को लगा, जैसे यह सारी शक्ति उसी की है, संसार की सारी शक्ति उसी की है, वह अजेय है ! और उसकी भुजायें

ऐसे फड़क उठीं, जैसी कभी न फड़की थीं और उसकी आत्मा में वह शक्ति भर गयी, जो एक सच्चे मजदूर में ही मिलती है।

तभी ज़ोर के नारे हुंकार उठे, "कामरेड यूसुफ जिन्दाबाद !" कामरेड...."

दिशायें हिल उठीं। मजदूरों की मजबूत मुट्ठियाँ हवा में लहराने लगीं। सभा उचक-उचक कर अपने प्यारे कामरेड को देखने की कोशिश करने लगे।

कामरेड यूसुफ ने बोलना शुरू किया, "साथियो !...."

नारों के हुँकारों के बीच कामरेड यूसुफ शेर की तरह दहाड़ते रहे। आसमान में शक्ति के बादल गरजते रहे, मजदूरों की छातियाँ जोश में फूलती गयीं और उनकी आँखों में रह-रह कर बिजलियों की लपटें जलती रहीं।

कामरेड यूसुफ ने ऐलान किया, "हम हड़ताल शान्तिपूर्वक चलाना चाहते हैं। यही नहीं, बल्कि हम तो इज्जत के साथ समझौता भी करना चाहते हैं। लेकिन अगर मिल-मालिकों और कांग्रेसी नेताओं ने पुलीसों और फौजियों की मदद से हमारी हड़ताल तोड़ने की कोशिश की, तो मजदूर-सभा अपनी पूरी ताकत से उनका मुकाबिला करेगी और कानपुर में मजदूरों और मिल-मालिकों में ऐसा संघर्ष होगा, जो मजदूर-वर्ग के इतिहास में हमेशा अमर रहेगा !"

नरेन ने बीच मजमे में उठकर, मुट्ठी लहराते नारा दिया, "मजदूर सभा !"

"जिन्दाबाद !" का नारा दिशाओं को गुँजाता आसमान पर छा गया।

फिर मिनटों नारे गूँजते रहे और मुट्ठियाँ लहराती रहीं।....

कामरेड युसूफ की बात आखिर सच होकर ही रही। हुकूमत के जोम में दीवाने हुए अफसर समझौते का नाम क्या जानें ? वे तो सिर्फ

कुचलना जानते हैं। गोली की ताकत से हुकूमत करने वालों को यह पसन्द नहीं कि उनके सामने कोई सिर ऊँचा करके अपना हक माँगे।

दूसरे दिन सुबह मालूम हुआ कि सन् बयालीस के खूनी कोतवाल खान बहादुर अब्दुल रशीद ने परेड पर मजदूरों के संगठन और शक्ति को देखकर ऐलान किया है कि दो दिनों में ही वह कानपुर शहर से मजदूर-सभा का नामोनिशान मिटा देगा। यूसुफ अपनी ताकत को क्या समझता है?

सुनकर धेनुक ने कहा, "यूसुफ की पूरी ताकत जिस दिन देखेगा, उस दिन दीवार से टकराकर वह अपना सिर फोड़ लेगा।" और वह एक ऐसी मुस्कान मुस्करा उठा, जो किसी पागल की बहक सुनकर आप ही होंठों पर आ जाती है। फिर उसने कहा, "अगर वह पागल होकर हमारी ताकत देखने पर ही उतारू हो जायगा, तो हमें दिखानी ही पड़ेगी। तुम लोग तैयार रहना। जरा मैं मजदूर-सभा से हो आऊँ।"

बिफरे हुए मजदूर ताबड़तोर खाना पकाने में जुट गये। आज तक धेनुक ही नरेन का भी खाना बनाता था। देर से भी आता, तो वही बनाता। आज भी नरेन से वह खाना बनाने को नहीं कह गया था। फिर भी नरेन आज बैठा न रह सका। जैसे अब वह अपने सभी कर्त्तव्य ठीक-ठीक समझ गया हो, अब जरा भी कहीं ढिलाई करना उसे पसन्द न हो। वह खाना बनाने में जुट गया।

धेनुक, मंजूर और शकूर बड़ी रात गये साथ ही लौटे। धेनुक ने चूल्हे के पास खाना देखकर कहा, "अरे, आज तुझे यह क्या सूझी?"

"कुछ नहीं। सोचा, जाने कब तुम लौटो। आखिर मैं बेकार ही तो बैठा था।" झेंप कर नरेन ने कहा, "अब मैं ही खाना बनाया करूँगा। तुम्हें आज-कल फुर्सत कहाँ मिलती है। थके-माँदे आकर तुम्हारा चूल्हा जलाना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

सुनकर तीनों हँस पड़े। धेनुक ने कहा, "अच्छा, उठ। जल्द खाना खा ले। तुझे अभी मदीना भाभी के पास जाना है। रात को वहीं रहना। उसकी तबीयत खराब है। हमें रात को आज कई जगह जाना है।"

पहुँचकर नरेन ने दरवाजा खटखटाया। मदीना मे दरवाजा खोल, नरेन को देखकर कहा, "अरे, तुम इतनी रात गये ? खैरियत तो है ? वह लोग कहाँ रह गये अब तक ?"

"वह लोग काम पर गये। मुझे यहाँ भेजा है। कैसी तबीयत है तुम्हारी ?" नरेन ने अन्दर होकर कहा।

"तबीयत की क्या पूछते हो ? बुखार नहीं टूटता। उनसे कई बार कहा कि अब्बा को बुला लो। लेकिन उन्हें तो एक खत भी लिखने की आज-कल फ़ुरसत नहीं। खामखाह के लिए तुम्हें आज तकलीफ...." और वह अपने खटोले पर बैठती हाँफ उठी।

"क्या कहती हो, भाभी ? तुम लोगों के ज़रा भी काम मैं आ सकूँ, इससे बढ़ कर मेरे लिए खुशी की बात और क्या होगी ? तुम लेट जाओ। कोई ज़रूरत पड़े, तो बेझिझक कहना।"

"अरे बाबू, तुम लोगों से क्या लेहाज रखना है।....लौंडे को मेरे पास दे दो और वह उनका बिस्तर है, बिछा कर पड़ रहो। थके-माँदे तुम भी तो होगे।" अपने खटोले पर एक ओर सरकती मदीना बोली।

"उँ-हूँ, आज तो मेरा बेटा मेरे ही पास सोयेगा," दूसरे खटोले पर बैठता नरेन बोला।

"रात-भर तंग कर मारेगा।"

"तो क्या हुआ ? एक रात बाप बनने का यह मजा मैं नहीं छोड़ने का।"

मदीना हँसने को हुई, पर खाँसी आ गयी। थोड़ी देर बाद बोली, "देखो, दीये में शायद तेल चुक गया है। ज़रा शीशी से डाल तो दो। ताक पर वहाँ है।"

नरेन ने तेल डाल कर, बदरे को काँधे पर साट, एक हाथ से बिस्तर ठीक कर, उसे लिटा दिया।

"दरवाजा तो बन्द कर लो। ठंडी हवा आ रही है।" चादर नाक तक खींचती मदीना बोली।

दरवाजा बन्द कर नरेन बिस्तर पर पड़ गया, तो मदीना बोली, "सकीना की मुझे बहुत याद आती है। न जाने बेचारी को क्या हो गया? सोचती हूँ, तो बड़ा दुख होता है। ओह, कितनी भोली, कितनी प्यारी, कितनी अच्छी थी वह! जै दिन यहाँ रही, मेरा दिल उसी में लगा रहा।"

मदीना सोचती थी, कि नरेन भी सकीना के बारे में कुछ कहेगा। लेकिन वह चुप ही रहा। सकीना की याद आने के बाद नरेन से कुछ बोला जाना असम्भव था। मदीना उस वक्त उसके दिल को टटोल पाती, उसकी आँखों को देख पाती, तो मालूम होता, कि नरेन का दिल कैसे भर आया है, उसकी आँखों में कैसा व्यथा का सागर उमड़ पड़ा है।

"तुमने उसकी कोई खोज-खबर नहीं ली, बाबू?" थोड़ी देर तक नरेन के बोलने का इन्तजार कर वह बोली।

नरेन चुप ही रहा।

तभी अचानक दरवाजा खटखटा उठा। व्यस्त हो मदीना बोली, "देखो, वह लोग आ गये क्या?"

दरवाजा लगातार खटखटाता जा रहा था, जैसे कोई बहुत जल्दी में हो। नरेन ने उठ कर दरवाजा खोला, तो कोई औरत हाँफती-काँपती एक बच्चे को गोद में लिये आँधी की तरह अन्दर घुस, जल्दी में बच्चे

को जमीन पर खड़ा कर, दरवाजा बन्द कर, नरेन से लिपट कर फफ-कती बोल पड़ी, "मैं किस्मत की मारी सकीना हूँ, शकूर भाई !"

नरेन और मदीना एक ही साथ चीख पड़े, "सकीना !"

सकीना दौड़कर उठ बैठी मदीना की गोद में सिर पटक बिलख-बिलख कर रो पड़ी। मदीना की आँखों से आँसू की धारायें बह चलीं और उसके हाथ उसको अपनी गोद में कसते जा रहे थे।

अवाक् नरेन अपने खटोले पर बैठ गया। अचानक घटी इस घटना को समझ सकने का जैसे उसे होश ही न रह गया हो और उसकी आँखों में जैसे कुछ देखने की शक्ति ही न रह गयी हो। दिल धड़-धड़ बज उठा।

अम्मा को रोते और दो अजनबी सूरतों को अपनी आँखें झपका-झपका कर कई बार देख, खड़ा बच्चा रो पड़ा। तब सिर उठा कर मदीना बोली, "अरे नरेन, जरा उठा कर दे तो मेरे बच्चे को मेरी गोद में।"

सकीना सिर उठा चीख पड़ी, "नरेन ! मैं समझी...." और फिर फूट-फूट कर रो पड़ी।

"नरेन के यहाँ आये तो अर्सा हो गया। तुझे क्या मालूम...."

"लो, इसे। कितना छटपटा रहा है !" नरेन ने बच्चे को मदीना की गोद मे डालते कहा।

सकीना और भी बिलख-बिलख कर रोये जा रही थी। नरेन से उसके पास खड़ा न हुआ गया। वह फिर सिर लटका अपने खटोले पर बैठ गया।

बच्चा किसी तरह जब चुप न हुआ, तो मदीना बोली, "अरे, यह तो मुझे पहचानता ही नहीं। रो-रो के बेहाल हुआ जा रहा है। ले, अब तू ही सँभाल इसे, बहन।"

सकीना की रुलाई का जो तार बँधा, तो टूटने का नाम नहीं। जितना वह रोती थी, उतना ही बच्चा। सकीना को अपने बच्चे को सँभालने

का भी होश कहाँ रह गया था ? एक-एक बात याद आती और एक-एक हूक उठती, एक-एक घटना आँखों के सामने नाच उठती और एक-एक शूल चुभ जाता, एक-एक नासूर टीसता और जख्मी दिल का एक-एक टाँका पट-पट टूट पड़ता और आँसू की धारायें उमड़-उमड़ पड़तीं।

बच्चा रोता-रोता, सिसकता-सिसकता, हिचकियाँ लेता सो गया। सकीना को चुप कराते-कराते थक कर मदीना लेट गयी। नरेन के मूक आँसू बहते-बहते सूख गये। लेकिन सकीना की रुलाई न थमी।

आखिर बहुत देर बाद मदीना बोली, "मेरी तबीयत खराब है। यों तू रोती रहेगी, तो और भी खराब हो जायगी।" फिर उसकी कमीज का दामन पकड़ कर, जैसे उसका मन दूसरी ओर करने के लिए उसने कहा, "यह सिलिक है क्या रे ?"

यह सुन कर सकीना का दिमाग जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया। उसने झटके से कमीज को दोनों हाथों से चीर कर एक ओर फेंकते कहा, "बहन, कोई अपना कपड़ा पहनने को दो। ये कपड़े अब एक छन को भी मैं अपनी देह पर नहीं रखना चाहती।"

"सो रह, बहन। सुबह-बदल लेना।" कसमसाकर मदीना बोली।

"नहीं, बहन !....मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? लाओ, कपड़े दे दो।" मदीना का हाथ पकड़ कर सकीना बोली।

"अच्छा", कह कर मदीना आह-उह करती उठी और रेंगनी पर से कपड़े उतार उसे दे कर नरेन से बोली, "सो जाओ, बाबू। कब तक यों बैठे रहोगे ? सकीना आ गयी, इसकी खुशी में रतजगा करोगे क्या ?" कह कर वह हँसने को हुई कि खाँसते ही वह अपने खटोले पर आ कर गिर पड़ी।

नरेन आँखें मूँद कर लेट गया। नींद क्या आनी थी ? जिस सकीना के बारे में सोचते उसने कितनी ही रातें आँखों में काट दी थीं, उसके आज यों सहसा आ जाने पर उसकी पलकें क्यों कर लगतीं।

कपड़े बदल कर सिसकती हुई सकीना बोली, "भाई जान कहीं गये है क्या ?"

हाँफती हुई मदीना बोली, "हाँ, वह और मंजूर कहीं काम से गये हैं। नरेन को यहाँ भेज दिया है। मिलों मे कई दिन से हड़ताल चल रही है। आओ, अब सो रहो।" कुछ याद कर उसने कहा, "याद है न वह रात, जब पहले-पहल तुम यहाँ आयी थीं ?"

सकीना की सिसकियाँ फिर रुलाई में फूट पड़ीं। मदीना बच्चे को उसकी गोद से ले, उसका हाथ पकड़ उसे लेटाती बोली, "अब न रोओ। आओ, कितने दिनों के बाद आज तुम्हे पाकर मेरी छाती ठंडी हुई।" और उसने ओढ़ना ठीक कर सकीना को अपनी छाती से वैसे ही लगा लिया, जैसे कोई माँ अपनी खोयी बेटी को पा कर लगा ले। उनके बीच पड़े बच्चे की माँ कौन थी, कौन बता सकता ?

सकीना सिसकती और हिचकियाँ लेती रही। दीये की सूखी बत्ती कई बार फड़क कर बुझ गयी।

और नरेन रात-भर बादलों पर उड़ता रहा। उन बादलों में कितने ही भयानक रूप से काले थे और कितने ही ऐसे थे, जिनके किनारे गोटे की तरह चमचम चमक रहे थे।

सुबह नरेन खुश था, मदीना भी खुश थी, लेकिन सकीना की सिसकियाँ अभी तक न सूखी थीं। नरेन आग जलाने उठा, तो मदीना बोली, "अरे, यह क्या कर रहे हो ? हम दो के रहते तुम्हें यह-सब करने की क्या ज़रूरत है ?" और वह उठने को हुई कि सकीना बोली, "नहीं, बहन, तुम आराम करो। मैं सब कर लूँगी।" औरवह चूल्हे के पास सिर झुकाये जा बैठी।"

नरेन चाय पी चुका, तो मदीना बोली, "अब जाकर जरा उनकी खबर लो। न जाने क्यों तबीयत घबरा रही है।"

"तुम्हारी दवा भी तो लानी होगी। पता नहीं, शकूर भाई को फ़ुरसत मिले या न मिले।" नरेन बोला।

"तुम जाओ। दवा की कोई जल्दी नहीं। सारा दिन पड़ा है। और बदरे तो है ही।" ज़ोर दे कर मदीना बोली।

नरेन वहाँ से सीधे मजदूर-सभा के दफ्तर पहुँचा। वहाँ सभी लोग बहुत व्यस्त थे। पूछने पर मालूम हुआ कि घेनुक, मंज़ूर और शकूर मज़दूर-बस्तियों में गये हैं। वहाँ से सीधे वे मिलों के फाटक पर पहुँचेंगे। सुनने में आया है कि आज पुलीस दमन पर उतारू है। कांग्रेस के नेता हड़ताल तोड़ने की हर कोशिश कर के हार गये, तो अब दमन का हथियार इस्तेमाल करने वाले हैं। मजदूर-सभा इसका मुकाबिला करने की तैयारी कर रही है।

लौट कर नरेन मदीना को अभी बता ही रहा था कि दौड़ता हुआ प्यारे आ कर हाँफता हुआ बोला, "एलनगंज में शकूर, मंजूर और घेनुक गिरफ्तार कर लिये गये। सुनने में आया है कि सोनेलाल, रामसेवक, माधो, चचा जान महम्मद वगैरह भी गिरफ्तार हो गये। चारों ओर धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयी हैं। जहाँ भी जो मिल जाता है, पकड़ लिया जाता है। धाँधली की कोई हद नहीं है।" फिर नरेन की ओर मुड़कर वह बोला, "तुम्हारे लिए खबर छोड़ गये हैं कि मदीना का ख्याल रखना।" और वह बिना रुके वहाँ से चल पड़ा।

सकीना रो पड़ी। असह्य व्यथा की ऐंठ से मदीना का मुँह एक क्षण को टेढ़ा हो गया। फिर कई बार उसके होंठ फड़के, जैसे उमड़ती हुई चीख पर काबू पाने की पूरी शक्ति लगा कर वह कोशिश कर रही हो।

तड़प कर नरेन बोला, "भाभी!"

मदीना ने भरी आँखें ऊपर उठा कर कहा, "जाओ तुम! मैं जानती हूँ, ऐसे मौकों पर एक क्षण के लिए भी रोक रखने से तुम लोगों

को मेरी इस पीड़ा से कई गुनी पीड़ा होती है। मेरी चिन्ता न करो। सकीना मेरे पास है। बदरे भी तो अब कुछ करने लायक हो गया है।"

"तुम ठीक कहती हो, भाभी। लेकिन उनकी बात...."

"उन्हें क्या मालूम कि सकीना आ गयी है। फिर मैं कहती हूँ, मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। तुम जाओ। इस वक्त एक-एक मजदूर की वहाँ ज़रूरत होगी। तुम लोगों का काम किसी भी हालत में न रुकना चाहिए!"

नरेन चल पड़ा।

मजदूर-सभा का दफ्तर खचाखच भरा था। इधर-उधर देख कर, नरेन ने भीड़ में घुसकर प्यारे के कन्धे पर हाथ रख दिया। प्यारे मुड़कर बोला, "तुम?" फिर तत्क्षण ही जैसे अपने सवाल का जवाब स्वयं ही समझ कर नरेन के हाथ को अपने हाथ में ले कर बोला, "जारज मऊ चलना है। गयास पर्चे लेने गया है।"

तभी गयास ने दरवाज़े के पास से प्यारे को पुकारा। नरेन और प्यारे उसके पास गये, तो नोटिसों के तीन हिस्से कर एक-एक प्यारे और नरेन को दे उसने कहा, "अच्छी तरह छिपा कर रख लो।"

सड़क पर आये, तो पन्द्रह-बीस कदम के फासले से वे अलग-अलग चलने लगे। रह-रह कर पुलीस की वान सर्र से उनके पास से गुजर जाती। उसका लाउडस्पीकर लोगों को एक सौ चौआलीस की बार-बार याद दिला रहा था। चारों ओर हथियारबन्द पैदल पुलीस भी गश्त लगा रही थी। एक आतंक-सा छा रहा था।

जार्जमऊ पहुँचकर दूर से ही देखा, तो मिल के फाटक पर और इधर-उधर हथियारबन्द पुलीस जमी खड़ी थी। पास ही एक चाट की दूकान के सामने पड़ी बेंच पर वे बैठ गये। चाट वाले ने कहा, "क्या दूँ?"

प्यारे बोला, "जरा रुक जाओ। एक साथी का इन्तजार है। वह आ जाय, तो...." फिर गयास की ओर मुड़कर फुसफुसाया, "अब ?"

"कोई तरकीब निकालो," गयास बुदबुदाया, "कुछ पर्चे तो अन्दर किसी-न-किसी तरह पहुँचने ही चाहिएँ।"

थोड़ी देर तक सोचने के बाद प्यारे बोला, "फाटक के पानवाले से कुछ काम बन सकता है। कई बार उसने हमारी मदद की है। लेकिन आज तो वहाँ तक पहुँचना भी मुश्किल है।"

"क्यों, मैं जाऊँ ?" नरेन धीमे से बोला।

"हाँ, तुम नये हो। शायद तुमको कोई न पहचाने। लेकिन बड़ी होशियारी की जरूरत पड़ती है। तुम...." गयास साँस की ही आवाज में बोला।

"तुम बोलो तो क्या करना होगा ? मैं कर लूँगा।" नरेन ने उत्साहित हो होंठों में ही कहा।

"पानवाले को कुछ पर्चे दे देना और उससे कहना कि वह किसी तरह अन्दर साधू के पास भेजवा दे। वह जानता है उसे। लेकिन तुम्हें बहुत होशियारी से...."

"तुम फिक्र न करो," कहकर नरेन उठा।

"देखो, तो वह कहाँ वह गया ? जल्द लौटना।" प्यारे बोला।

मुस्कराता हुआ नरेन चल पड़ा।

इधर-उधर होशियारी से भाँपता पान की दुकान की तरफ मुड़कर नरेन बोला, "जरा एक पैसे का लाल मुहम्मद तो देना।"

वह बीड़ी निकालने लगा, तो नरेन ने धीमे से कहा, "प्यारे भाई ने भेजा है। कुछ पर्चे..."

मुँह झुकाये ही पानवाला तिरछी नजर से पुलीसवालों की ओर देखकर बोला, "मैं भी कहूँ, आज ये साले कैसे आ जमे हैं ? क्या खबर है ?"

"पचासों मजदूर-नेता गिरफ्तार हो चुके हैं और हो रहे हैं। यहाँ भी हड़ताल करानी है। शाम को परेड पर सभा होगी। पुलीस के दमन का जवाब देना है। जब तक हर मिल के मजदूर...."

"समझा, समझा। एक पर्चा दे दो। अन्दर पहुँच जायगा।" पान बनाता वह बोला।

टेंट से छिपे-छिपे एक पर्चा निकाल, मुट्ठी में गुमेटकर, नरेन ने चौकी पर रखा ही था, कि एक कान्सटेबिल दूर से बोला, "अबे, कौन खड़ा है वहाँ?"

पानों से पर्चा ढँकता, पानवाला कान्सटेबिल की ओर देखकर बोला, "मेरा भतीजा है, हवलदार साहब। आइये, पान खाइयेगा?"

नरेन की ओर घूरता कान्सटेबिल वहाँ आकर बोला, "तम्बाकू अच्छा हो, तो दो पान खिला दो। क्या बतायें, इन मजदूरों ने तो नाकों दम कर दिया है। जल्दी में तम्बाकू की डिबिया भी जेब में रखना भूल गया। जब तक अपने पसन्द का तम्बाकू न हो, पान खाने में कोई लज्जत नहीं आती। न जाने कब तक यहाँ रुकना पड़ेगा।"

"सो तो है। खैर, लीजिये। तम्बाकू जो मेरे पास सबसे बढ़िया है, वही दिया है। आप-जैसे लोगों के लिये थोड़ा रख छोड़ा है। वर्ना महँगी के जमाने में...."

पान दबाकर कान्सटेबिल खिसकने लगा, तो वह बोला, "हवलदार साहब, तकलीफ तो होगी, जरा चौकीदार से कह देते कि पान ले जाय। गेट बाबू का पान अभी तक नहीं गया।"

"अच्छा, अच्छा," कहता वह चला गया।

पानवाले ने झट चार बीड़े बनाये। और पर्चे में तम्बाकू रख, गोली बना, एक बड़े कागज में पान के साथ उसे भी लपेट दिया।

चौकीदार आया, तो उसके हाथ में पोटली देता वह बोला, "गेट बाबू से कह देना कि जरा तम्बाकू देखकर खायेंगे। बड़ा तेज है....और

हाँ, तू भी अपनी बीड़ी ले।"

चौकीदार चला गया, तो पानवाला नरेन से बोला, "अच्छा, बेटा, अब तू अपना रास्ता देख। तेरा काम हो गया। गेट बाबू तुम-सबों के ही आदमी हैं। बड़े नेक हैं बेचारे!"

नरेन वापस लौटा, तो उसने इशारे में ही बता दिया कि काम हो गया!

"वह नहीं मिला क्या?" प्यारे ने उसके बैठने पर पूछा।

"पन्द्रह-बीस मिनट में आ जायगा," नरेन ने कहकर मिल की ओर देखा।

तभी मिल के अन्दर एक शोर हुआ। वे तीनों उठ खड़े हुए। देखते-ही-देखते शोर सड़क पर आ गया। हजारों मजदूर फाटक से उमड़ती हुई धारा की तरह नारे लगाते बाहर आ निकले। तीनों लपक कर भीड़ में घुस गये। मिनटों में ही पर्चे कइयों के हाथों में पहुँच गये। भीड़ के शोर में भी यह आवाज़ सुनायी दे रही थी, "पाँच बजे परेड पर सभी मजदूरों को जमा होकर सरकार के इस दमन का जवाब देना है। जब तक हमारे सभी साथी रिहा नहीं कर दिये जाते, हम मिलों में पैर न रखेंगे! हड़ताल, हड़ताल, मुकम्मल हड़ताल!"

चोट खाये शेरों की तरह मजदूर गरज उठे। कूपर और दूसरे काटन मिल भी फटाफट बन्द हो गये। बौखलायी हथियारबन्द पुलीस थानों पर एक सौ चौआलीस का दफा टर्राती और संगीनें चमकाती सड़कों पर आतंक फैला रही थी। और उधर मजदूर-बस्तियों में नरेन डुगडुगी बजा रहा था और प्यारे ऐलान कर रहा था, "साथियो! आज शाम को पाँच बजे मजदूर-सभा की ओर से अपने नेताओं और साथियों की गिरफ्तारी के खिलाफ आवाज बलन्द करने के लिए परेड पर सभी मजदूरों की सभा होगी। कामरेड यूसुफ और हमारे दूसरे नेता वारन्ट को रौंदते हुए उसमें बोलने आयेंगे। आज हर मजदूर को वहाँ पहुँच

कर एक आवाज़ में अपने गिरफ्तार नेताओं की रिहाई की माँग करनी है ! साथियो !...."

परेड के चारों ओर की सड़कों पर हाथियारबन्द पुलीसों से भरी कुछ लारियाँ खड़ी थीं और कुछ गश्त लगा रही थीं। चौराहों पर खड़ी संगीनें राक्षसों की आँखों की तरह घूर रही थीं। घरघराहट और पुलीस के लाउडस्पीकरों के शोर से दहशत खा पेड़ों पर पंछी जोर-जोर से चीख-चीख कर उड़ रहे थे। हवा जैसे एक खौफ से सन्नाटे में थी। शाम की किरनें पेड़ों से जैसे सिहर-सिहर कर दम साधे परेड के सूने मैदान को तक रही थीं। आतंक के भयावने वातावरण के मनहूस साये के नीचे जैसे जिन्दगी की जान सूख रही थी।

नरेन, प्यारे, गयास वगैरा मजदूरों की एक टुकड़ी के साथ गली में छिपे बार-बार जार्ज मऊ से आने वाली सड़क की ओर देखते और गली-ही-गली दूसरी गलियों में जा कर सभा के समय के इन्तजार में छिपे हुए खड़े अनगिनत मजदूरों को समझाते कि जलूस पहुँचने के साथ उन्हें क्या करना होगा, कैसे मैदान में पहुँचना होगा, क्या नारे लगाने होंगे। परेड के दोनों तरफ की सभी गलियाँ मजदूरों से भरी हुई थीं।

सहसा नारे का शोर सुनायी दिया। जार्ज मऊ के एक हजार लड़ाकू चमड़ा-मजदूरों के जलूस ने परेड के पास पहुँचकर नारा दिया, "कम्यूनिस्ट पार्टी !"

"जिन्दाबाद !" के नारे से सारी गलियाँ गूँज उठीं। और हर ओर से दौड़ते हुए मजदूरों के जत्थे मैदान में जैसे जादू की तरह प्रगट हो-हो नारों से आसमान को गुँजाने लगे।

"दुनिया के मजदूरो !"

"एक हो !"

श्मशान में जैसे सहसा जिन्दगी का शोर गूँज उठा। पंछी खुशी से चहचहाने लगे। किरनें लाल-लाल झण्डों पर उतर मुस्करा उठीं। चारों ओर का वातावरण जैसे खिलखिला कर उन संगीनो और पुलीसों पर हँस पड़ा।

हजारों मजदूरों ने एक सौ चौआलीस और पुलीस के आतंक को पैरों से रौंद कर अपनी ताकत के खून से परेड के मैदान पर उस दिन मजदूर-सभा के इतिहास का एक शानदार सफहा लिख कर दिखा दिया कि कामरेड यूसुफ की बात कितनी सच थी!

चबूतरे से प्यारे ने नारा दिया, "कानपुर मजदूर-सभा!"

मजदूरों ने जवाब दिया, "जिन्दाबाद!"

वातावरण जोश से भड़क उठा। अपने चारों ओर पुलीसों का घेरा देख मजदूरों की आँखों से लपटें लपकने लगीं, गुस्से से लाल हो उनके चेहरों की रगें तन गयीं, नफरत के थूक से उनके मुँह भर गये।

गयास ने चबूतरे से चीख कर सवाल किया, "नेताओं को रिहा कराओगे?"

"अपनी जान दे कर करायेंगे!" हजारों मजदूरों ने आवाज़ बलन्द की, तो चारों ओर खड़ी पुलीस काँप उठी।

प्यारे ने बहादुर मजदूरों के सामने दूसरा सवाल फेंका, "अगर मौलना यूसुफ यहाँ आयें और पुलीस उन्हें गिरफ्तार करे, तो?"

हजारों मुठ्ठियों ने हवा में चोट करने को उठे हथौड़ों की तरह उठ कर जवाब दिया, "जब तक हमारे शरीर में जान है, मौलाना को कोई गिरफ्तार नहीं कर सकता!"

नरेन ने मुठ्ठी लहराकर नारा दिया, "मौलाना यूसुफ!"

"जिन्दाबाद!"

नारे गूँजते रहे। शाम झुक कर अपने बहादुर बेटों को एक टक तकती रही। पेड़ झूमते रहे। पंछियों के गोल खुशी में आँखें नचाते रहे।

मजदूरों की आँखों ने मुस्करा कर आँखों से कहा, 'यूसुफ आयेंगे, यूसुफ आयेगें।'

सहसा सन्ध्या ने अपना आँचल फैलाया, गर्द पुलीसों की आँखों पर कुहासा बनकर छा गयी। मंच पर जैसे बादलों में बिजली कौंधी। मजदूरों की टिकी आँखों में खुशियाँ चमकीं। यह कौन किधर से आ प्रगट हुआ? तगड़ा आदमी, पंजाबी घुटन्ना और बर्डी पहने मंच पर यह कौन आ खड़ा हुआ?

"मौलाना यूसुफ आ गये!" होंठों ने चुपके से कानों से कहा।

एक क्षण सन्नाटा। फिर हजारों वज्र-कंठ बादल की तरह गरज उठे, "मौलाना यूसुफ जिन्दाबाद! कम्युनिस्ट पार्टी जिन्दाबाद! मजदूर-सभा जिन्दाबाद!"

अँधेरे में जालिमों की खूनी आँखों की तरह संगीनें मजदूरों की शक्ति-भरी आँखों से टकरायीं। मजदूर मुट्ठियाँ ताने खड़े हो गये। मंच के चारों ओर बैठे मजदूरों ने खड़े हो अपनी मोर्चेबन्दी आँख झपकते ही मजबूत कर ली। मजदूरों के रोम-रोम अपने प्यारे नेता की रक्षा के लिए पागल हो उठे।

पुलीस के होश उड़ गये। मौलाना की ललकार की शक्ति ने उनकी आँखों के सामने आसमान के करोड़ों तारे छिटका दिये।

"सुनो! सुनो! मौलाना क्या कह रहे हैं?" हवा के उत्सुक-स्वर मजदूरों के कानों में गुनगुना उठे—

"मजदूर भाइयो! अब आप बैठ जायँ। आप की मौजूदगी में किसी में हिम्मत नहीं, जो मेरा बाल भी बाँका कर सके!"

दो उठे हुए हाथों का वह जादू! दूसरे क्षण ने मजदूरों को शान्त और मुग्ध बैठा पाया। मौलाना बोलने लगे—

"मजदूर भाइयो! हमने उस दिन इन्साफ और इज्जत के साथ समझौते की माँग की थी। उसका जवाब सरकार ने हमारे डेढ़ सौ

साथियों को आज जेल में बन्द कर, सैकड़ों के नाम वारन्ट काट कर, मजदूर-सभा और कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ्तरों और उनके शाखा-दफ्तरों पर छापा मार कर दिया है। अपनी तानाशाही से सरकार हमारी वाजिब माँगों को दबा कर मिल-मालिकों को खुले आम हमें लूटने और चूसने की आजादी देना चाहती है। मजदूर सभा इस तानाशाही से दबने वाली नहीं, आपने इतनी तायदाद में यहाँ जमा हो कर सरकार को यह दिखा दिया। आज करीब-करीब सभी मिलों के मजदूरों ने हड़ताल कर एक आवाज़ से अपने साथियों की रिहाई का नारा दिया है। इस नारे की आवाज़ लखनऊ तक ज़रूर पहुँच गयी होगी। आज फिर हम अपनी बात दुहराना चाहते हैं, कि हम इज्जत के साथ समझौता करना चाहते हैं। इतने पर भी अगर हमारी बात नहीं सुनी जाती, तो हम अपनी पूरी ताकत से यह आवाज़ बलन्द करते हैं कि हम मजदूरों में इतनी ताकत है कि हम अपनी माँग मनवा कर दम लेंगे। हम पर ज़ुल्म करने वाले समझ लें कि उनके ज़ुल्म जैसे-जैसे बढ़ते जायेंगे, हमारी ताकत, हमारा एका और हमारी हिम्मत भी वैसे ही बढ़ती जायगी! हमें दबा देने वाली शक्ति संसार में पैदा ही नहीं हुई!"

फिर उन्होंने पुलीसों की ओर देख कर ललकारा, "सुना है कि तुम्हें हुक्म मिला है कि यूसुफ और काली शंकर को, चाहे गोली भी मारनी पड़े, तो भी, पकड़ कर लाओ। मैं यहाँ खड़ा हूँ तुम्हारे सामने। अगर तुममें हिम्मत है, तो आओ, करो मुझे गिरफ्तार! और अगर डर लगता है, तो लखनऊ और दिल्ली से और पुलीस बुला लो, सारे हिन्दुस्तान के खुफिया वालों को इकट्ठा कर लो। मगर यह याद रखो, जब तक कानपुर के मजदूर जिन्दा हैं, तुम मेरा और काली शंकर का साया तक नहीं छू सकते!"

"मौलाना यूसुफ जिन्दाबाद!" के नारे आसमान और जमीन को

एक कर उठे और हज़ारों खड़े मजदूरों में जमीन-आसमान के बीच ही मौलना गायब ! पुलीस और खुफिया वाले अपना-अपना जाल टटालते रहे, लेकिन यहाँ वह मछली कहाँ, जिसे जाल बझा ले ? मजदूरों की बहादुर हँसी मिनटों वहाँ गूँजती रही।

बड़ी रात गये नरेन जब लौटा, तो मदीना और सकीना पास-पास फर्श पर बैठी उसका इन्तजार कर रही थीं और बदरे और बुलबुल एक खटोले पर मीठी नींद सो रहे थे। खुशी के आवेश में नरेन मिटिंग की बात सुनाना ही चाहता था कि मदीना बोली, "पहले तुम खा लो। दिन-भर के भूखे हो। सकीना ने भी अभी तक मुँह में पानी नहीं डाला है। लाख कह कर हार गयी, मगर एक ही जिद्दी है यह भी !" कह कर वह उठने को हुई, कि सकीना ने उसके पहले ही उठकर लोटे का पानी नरेन के पास रख दिया।

नरेन हाथ-मुँह धोकर खाने बैठा। पहला कौर मुँह में डालते उसने फिर बात छेड़नी चाही, तो मदीना बोली, "अभी थोड़ी देर पहले मजदूर-सभा का एक आदमी राशन ले कर आया था। वह सब बता गया है। सरकार मजदूरों को अब जेल में बन्द नहीं रख सकती ! उसे झुकना ही पड़ेगा।....तुम आराम से भर पेट खा कर अब सो रहो। बहुत थक गये होगे।"

"नहीं, भाभी, थकना कैसा ? मैं तो आज रात को भी काम करना चाहता था, लेकिन उन लोगों ने तुम्हारा ख्याल कर छुट्टी दे दी। हाँ, तुम्हारी तबीयत...."

"ठीक ही है, बाबू। ज़रा सकीना को समझाओ। दिन-भर रोती रही है। कहीं यह भी बीमार पड़ गयी, तो...." मदीना ने बात होंठों में चुराते सकीना की ओर देखा।

सकीना सिर झुकाये फफक उठी।

नरेन लोटा हाथ में ले, उठ कर बाहर चला। हाथ-मुँह धोकर लोटा चौखट के पास रखकर बोला, "तुम लोग खा लो।" और बाहर पड़े खटोले पर भरा-भरा लेट गया।

बहुत देर के बाद उसने मदीना की धीमी आवाज़ सुनी, "निखहरे सो गये क्या, बाबू? यह बिस्तर तो लो।"

"नहीं, नींद नहीं आ रही, भाभी। तुम लोग भी अभी तक नहीं सोयीं?"

"सकीना सो गयी है। तुमसे कुछ...."

"सकीना ने कुछ कहा नहीं, भाभी! आओ, बैठ जाओ न।" उठ कर बैठता नरेन बोला।

"क्या बताऊँ उस बदकिस्मत की?" बैठ कर मदीना बोली, मुझे जो शक था, वही सच निकला। रो-रो कर बेचारी सब बता गयी। नन्हीं-सी जान...."

"वह कहाँ इतने दिन तक लापता थी? कुछ...."

"वही तो...."

मदीना सब बता कर बोली, "छै महीने हुए उस गुण्डे को किसी कतल के जुर्म में सात साल की सजा हो गयी। कल रात को पहली बार सकीना उस नरक से बाहर निकल कर किसी गाहक के साथ सिनेमा देखने गयी थी। वहीं से मौका पा कर सीधे हमारे यहाँ भाग आयी। क्या बताऊँ, बाबू, उस पर मुझे इतना तरस आ रहा है...." मदीना की आवाज़ नम हो गयी।

नरेन की आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। कुछ बोला नहीं कि रुलाई फूटी। वह ठण्डी साँसें लेता चुप ही रहा।

"ऐसे मौके पर वह लोग भी न रहे। डर लगता है, कि कहीं वह....इस वक्त भी कुछ नहीं खाया।" कहकर वह उठ खड़ी हुई।

"तुम उसे समझाओ, भाभी। इन्सान को आगे देखना चाहिए। जिन बातों पर उसका बस न था...." गला भर आने से वह चुप हो गया।

हड़ताल का जोर दिन-दिन बढ़ता गया। मजदूरों का संगठन और भी मजबूत होता गया। नेताओं की रिहाई की माँग की आवाजें आसमान छूने लगीं। मजदूर-बस्तियों में एक ओर कांग्रेस के स्थानीय नेता पुलीस को साथ लिये मजदूरों को धमका रहे थे और दूसरी ओर जेल में हर तरह का अत्याचार कर गिरफ्तार मजदूरों से माफीनामे पर दस्तखत कराने की कोशिश चल रही थी। और दोनों ओर से मुँह की खाकर, तरह-तरह की अफवाहें फैलाकर, मजदूरों को बहकाकर, उनकी मजबूत हड़ताल को कमजोर करने की वे दुष्टतापूर्ण चेष्टा कर रहे थे। लेकिन हर जगह उनको एक ही टका-सा जवाब मिलता, 'पहले हमारे नेताओं को रिहा करो, फिर बात करो!'

मजदूरों की इस दृढ़ता को बराबर कायम रखना आसान काम न था। लेकिन उस वक्त जैसे हर मजदूर अपना कर्त्तव्य ठीक-ठीक समझ गया था। कहीं किसी बस्ती में कोई मिल-मालिक का एजेन्ट अपना बन कर उन्हें तोड़ने की कोशिश करता, तो दन से वहाँ कोई-न-कोई मजदूर-सभा का कार्यकर्त्ता पहुँच जाता और उस एजेन्ट का पर्दा उधेड़ कर रख देता। कार्य-कर्त्ताओं के लिए यह वक्त बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ दिन-रात काम करते रहने का था। नरेन को बड़ी रात गये छुट्टी मिलती और सुबह ही फिर उसे भाग कर अपने साथियों के साथ जुट जाना पड़ता।

आखिर सरकार के होश ठिकाने आये। एक हफ्ते के अन्दर ही दिल्ली से सलाह-मशविरा लेकर गृह-मन्त्री रफी अहमद किदवई जब

लखनऊ लौटे, तो उन्होंने कामरेड सरदेसाई और कामरेड नकवी से मिलने की तकलीफ गँवारा की और उनसे वादा किया कि सभी गिर-फ्तार मजदूरों को तुरन्त छोड़ दिया जायगा, तमाम वारंट भी रद्द कर दिये जायेंगे और मजदूरों की दूसरी माँगों पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायगा।

यह खबर मिलते ही मजदूर-बस्तियों में जैसे ईद और दीवाली एक साथ ही आ गयी। मजदूरों की खुशियाँ बाँसों उछलने लगीं। उनके सीने तन गयें, माथे उठ गये, आँखें चमक उठीं। उनके संगठन और शक्ति की यह पहली जीत थी, जिसके बीज में आने वाली हजारों जीतों के बड़े-बड़े वृक्ष लहलहा रहे थे।

जब यह खबर खुशी बरसाते स्वर में नरेन ने मदीना को सुनायी, तो उसका मुरझाया चेहरा सहसा ऐसे खिल उठा और उसकी गढ़ों में धँसी आँखें ऐसे चमक उठीं, जैसे कोई जादू हो गया हो और सकीना की आँखों में खुशी के आँसू भर आये और बदरे नरेन से लिपटकर खुशी के मारे चीख उठा, 'अब्बा कब आयेंगे ?' और बुलबुल अपनी गोल-गोल आखें नचा-नचा कर जैसे पूछ रहा हो, 'यह इतनी खुशी काहे की है ? कुछ मुझे भी तो बताओ !' और नरेन ने जैसे उसका जवाब देने के लिए ही उसे गोद में उठा उसके गाल चूम लिये।

मदीना ने खुशी से काँपते हाथों से आँचल की गाँठ से पैसे खोलते हर्ष-विह्वल स्वर में कहा, "बाबू, जरा तुम झट से थोड़ी सेवईं और गुड़ तो लेते आना और सकीना, तू जल्दी चूल्हा तो जला, बहन ! न जाने कितने दिनों के वे भूखे होंगे।"

नरेन सेवईं और गुड़ ला, चूल्हे के पास रखता बोला, "अच्छा, मैं जा रहा हूँ। मजदूर-सभा के दफ्तर में मिटिंग है। हड़ताल खतम करने का प्रस्ताव पास होगा। वहीं से हम जेल के फाटक पर जायेंगे

अपने साथियों का स्वागत करने।" और उसने एक बार फिर बुलबुल को गोद में उठाकर चूम लिया और उसे सकीना की गोद में देते हुए धीरे से कहा, "भाभी!" और हँसता हुआ भाग चला।

मजदूर-सभा के दफ़्तर में एक बार फिर पुलीस ने मौलाना यूसुफ को कैद करने की कोशिश की। उनका यह काम कुछ वैसा ही था, जैसा शैतान जर्मन फौजियों का सफेद झण्डा दिखा कर, सामयिक सन्धि कर, अचानक धोखे से हमला कर देना होता था। फिर भी सैकड़ों मजदूरों की उपस्थिति में कामरेड यूसुफ को पकड़ लेना पुलीस के बस का न था। वह साफ बचकर निकल गये।

इस मोर्चे का यह आखिरी तमाचा खा कर पुलीस मुँह के बल गिर पड़ी और आखिर हथियार डाल ही दिया।

नरेन को वहाँ मालूम हुआ कि गिरफ्तार साथी कल छूटेंगे।

उनकी वह रात आँखों में ही कटी। बदरे और बुलबुल सो गये थे और वे तीनों एक साथ ही फर्श पर बैठे बातें करते रहे। मदीना का बुखार न जाने आज कहाँ रह गया था, सकीना भी आज और दिनों से खुश नज़र आ रही थी और नरेन के क्या कहने? इतने दिनों से शान्त पड़ा उसका हृदय आज वाचाल हो गया था, वह अपने घर से भागने की पूरी कहानी अक्षर-अक्षर सुना रहा था और दोनों बहनें उसे वैसे ही सुन रही थीं, जैसे बच्चे परियों की कहानी सुनते हैं। अन्त में उसने सकीना की ओर कोमल नजरों से देखकर कहा, "भाभी, तुम्हें तब से मैं एक छन को भी न भुला सका। तुम न मिलतीं, तो जिन्दगी की आखिरी घड़ी तक एक कलक ही रह जाती।"

टप-टप आँसू चुलाती सकीना बोली, "मैं भी, बाबू, हमेशा यही सोचती रही कि क्या मैं ऐसी ही बदकिस्मत थी, कि सबसे बिछुड़-कर...." और फूट-फूटकर रो पड़ी।

"नहीं, भाभी, अब रोओ मत।....हमारी जिन्दगी, हमारी मेहनत, हमारी इज्जत, सब-कुछ इस समाज के डाकुओं, चोरों और गुण्डों के हाथों का खिलौना ही तो रह गया है। जब तक चाहें, जैसे चाहें, खेलें, जब चाहें तोड़ कर घूरे पर फेंक दें। वे फौजी, वह साहब, वह गुण्डा और वे अस्मत के खरीदार सब उन्हीं डाकुओं, चोरों और गुण्डों में से ही तो हैं। ये चन्द राक्षस समाज के सारे अधिकारों को अपने हाथ में ले, गोली, बन्दूक, फौज, पुलीस, चाँदी और कानून के बल पर हमारे-जैसे लाखों-करोड़ों गरीब, निस्सहाय मर्दों और औरतों के साथ यही खेल तो खेलते हैं। हममें जिसके पास रूप है, उसका वे रूप लूट लेते हैं; जिसके पास जवानी है, उसकी वे जवानी लूट लेते हैं; जिसके पास मेहनत है, उसकी वे मेहनत लूट लेते हैं; जिसके पास जो-कुछ है, उसका सब-कुछ वे लूट लेते हैं। यह समाज आज लूट का एक बाजार ही तो रह गया है, जिसे चन्द डाकू दोनों हाथों से लूटे जा रहे हैं और हमारे-जैसे लाखों-करोड़ों इन्सान सब तरह से लुटकर, अपनी किस्मत को रोते ऐड़ियाँ रगड़-रगड़कर, अपनी जिन्दगी, अपना खून, अपनी मुहब्बत, अपनी इज्जत और आबरू को जला कर, राख होते जा रहे हैं।

"लेकिन, भाभी, अब यह लूट का बाजार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। अब हम भी कुछ-कुछ इस लूट को समझने लगे हैं, हम भी अपने हक, अपनी मेहनत, अपनी ताकत, अपनी मुहब्बत, अपनी इज्जत-आबरू को कुछ समझने लगे हैं। इस समझ का नतीजा आज हफ्ते से चलती हमारी यह हड़ताल है। हमने अपनी ताकत, अपने संगठन से इस हड़ताल को कामयाब बनाया है, मिल-मालिकों और सरकार की इतनी बड़ी ताकत को, उसके कानून, जेल, फौज, पुलीस और बन्दूक-गोली को अपने पैरों पर झुका दिया है, अपने गिरफ्तार साथियों को जेलों से निकाल लिया है। यह हमारी ताकत का एक अदना करिश्मा है। इसी ताकत को पूरे मुल्क में फैला कर रूस देश में गरीबों ने

डाकुओं को हमेशा हमेशा के लिए खत्म कर दिया है। आज हमारे देश के गरीब, लुटे हुए इन्सान भी उसी राह पर आगे बढ़ रहे हैं। और, भाभी, एक जमाना आयेगा, जब अपने देश में भी हम अपनी ताकत से इन डाकुओं को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म कर यह लूट का बाज़ार उठा देंगे। उसी वक्त हमारी जिन्दगी अपनी जिन्दगी होगी, हमारी मेहनत हमारी मेहनत होगी, हमारी मुहब्बत हमारी मुहब्बत होगी, हमारी इज्जत-आबरू हमारी इज्जत-आबरू होगी। उस वक्त वे गोरे फौजी न होंगे, जो तुम-जैसी मासूम औरत पर जुल्म तोड़ें; उस वक्त वह साहब न होगा, जो तुम-जैसी बेबस औरत पर बन्दूक लेकर हमला करे; उस वक्त वह गुण्डा न होगा, जो तुम-जैसी भटकी औरत को भगा ले जाय; उस वक्त वह अड्डा न होगा, जहाँ तुम-जैसी देवी को अस्मत बेचने के लिए मजबूर किया जाय। भाभी, वह ज़माना सच्चे इन्सानों का जमाना होगा, सच्ची ज़िन्दगी का जमाना होगा, सच्ची मेहनत का जमाना होगा, सच्ची मुहब्बत, इज्जत और आबरू का ज़माना होगा! इसीलिए आज दुनिया के सभी गरीबों और ईमानदार इंसानों का यह सबसे बड़ा फर्ज है कि वे उस जमाने को लाने के लिए जो लड़ाई चल रही है, उस लड़ाई को लड़ें, उस लड़ाई को कामयाब बनाने के लिए अपना सब-कुछ कुरबान कर दें। तुम्हें, हमें, सबको इस लड़ाई का सैनिक बनना है, भाभी, अपनी जिन्दगी के लिए और उस सबके लिए, जिससे हम जान से भी ज्यादा मुहब्बत करते हैं—शहीद अलीम की आत्मा की शान्ति के लिए, इस भोले बुलबुल की मासूम मुस्कानों के लिए, उस प्यारे मंजूर की सच्ची हमदर्दी के लिए, बचपन से ले कर आज तक की मेरी दिल की बेज़बान मुहब्बत के लिए, और इस सकीना और शकूर-जैसे सच्चे भाई-बहन के लिए...."

दूसरे दिन दोपहर को दुहरी खुशी के आवेश में भागते-भागते मंजूर और शकूर नरेन के साथ घर पहुँचे, तो मदीना शकूर को मिलने बाहर

ओसारे में आ गयी। बदरे चीख पड़ा, "अब्बा आ गये, अब्बा आ गये !" और सकीना बुलबुल को गोद में लिये दरवाजे की आड़ में आ खड़ी हुई। मंजूर उसके पास जा बोला, "सकीना, तुम आ गयीं, मुझे बहुत खुशी हुई !" और उसकी गोद से बुलबुल को ले, उसे बार बार चूमता वह अन्दर जा अपना बकस खोलने लगा।

नरेन देख रहा था, सुन रहा था और मुस्करा रहा था।

मंजूर एक ओर खड़ी सकीना के पास जाकर बोला, "सकीना, उस दिन मैं यह किताब, यह स्लेट और पेंसिल लाया था। मैं भूला न था, सकीना ! तुम्हें याद है न, तुमने कितनी बार ताकीद की थी ! मैं भूला न था, सकीना ! आओ, आज फिर हम वहीं से अपनी ज़िन्दगी शुरू करें, जहाँ से यह टूटी थी। कामरेड प्रभा हमेशा तुम्हें याद करती रही। खबर मिलते ही वह दौड़ी आयेगी। लो, लो देखो न ! तुम कितनी बेताब थीं इस किताब के लिए ! देखो, देखो ! अलीफ से अनार, बे से बकरा, हः-हः-हः !"

सकीना की झपकती आँखें चमक रही थीं और उनमें भरे आँसू मुस्कराये जा रहे थे और हाथ की किताब को वह ऐसे देख रही थी, जैसे उसके हाथ में एक ढाल हो।

तभी मदीना कटोरे में सेवई लाकर मंजूर के हाथ में देती बोली, ' लो, ज़रा मुँह तो मीठा कर लो।"

एक चम्मच बुलबुल के मुँह में डाल कर मंजूर बोला, "क्या नाम रखा है इसका ?

नरेन अन्दर जाकर बोला, "बुलबुल।"

"बुलबुल !....ठीक। हमारे आशियाने में यह हमेशा चहकता रहेगा...."

"और हम तरह-तरह के फूलों से इसका आशियाना सजायेंगे," शकूर बुलबुल को अपनी गोद में ले कर चूमता बोला।

"और उस बाग में मैं एक बेर का पेड़ लगाऊँगा। जब बेरें पकेंगी, तो भाभी उनसे मेरी जेबें भर देगी...."

मदीना खिलखिला कर हँस पड़ी। शकूर, मंजूर, नरेन और बद्रे भी जोर से हँस पड़े। उस वक्त सकीना के होंठों की मन्द मुस्कान में भी जैसे हजारों खिलखिलाहटें गूँज पड़ीं और जैसे दुनिया का ज़र्रा-ज़र्रा खिल खिलाकर हँस पड़ा।....

"नरेन, नरेन! तुम इस तरह हँस क्यों रहे हो?" मंजूर नींद से अचानक जगकर, सिर उठाता बोला।

उसका सिर अपनी गोद में दबा कर नरेन बोला, "मुझे चार महीने पहले उस दिन की अपन लोगों की हँसी याद आ गयी, जब तुम और शकूर पिछली दफे जेल से छूटकर आये थे।"

"ओह!....सचमुच उस दिन हम कितने खुश थे, नरेन! आज न जाने सकीना, मदीना, शकूर और बच्चों का क्या हुआ हो।"

"थोड़ी देर रुको, सब मालूम हो जायगा।" नरेन ने उसके चेहरे पर हाथ फेरते हुए कहा।

"सुबह हो गयी क्या?" दरवाजे के उजाले की ओर आँखें फेरते मंजूर ने पूछा।

"मालूम तो होता है," नरेन ने कहा।

तभी खड़खड़ा कर दरवाजा खुलने की आवाज आयी। मंजूर और नरेन ने उधर देखा, तो दो काली छायायें खड़ी नजर आयीं। उनमें से एक बोला, "डाक्टर साहब, देखिये तो इन्हें।"

डाक्टर उनके पास आया, तो उसे घूरकर देखते ही मंजूर की आँखें चमक उठीं।

डाक्टर उसे देखने को झुका, तो मंजूर होंठों में ही बोला, "डाक्टर साहब!"

डाक्टर ने हाथ बढ़ा कर उसका हाथ दबा दिया। फिर उन्हें इधर-उधर टो-टा कर दरवाजे के पास खड़े आदमी से बोला, "जेलर साहब, इन्हें अस्पताल में भेजवाइये।"

"अच्छा, आप बाहर तो आइये," जेलर कहता बाहर हो गया।

डाक्टर के बाहर निकलते ही दरवाजा खड़खड़ाकर फिर बन्द हो गया।

थोड़ी देर बाद नरेन बोला, "डाक्टर तुम्हारा जाना है क्या ?"

"हाँ, हम लोगों का बहुत ख्याल रखता है। पिछली दफे...."

तभी फिर दरवाजा खड़खड़ाया और दो कैदी दो छोटी-छोटी अस्पताली चारपाइयाँ लाकर, अन्दर डालकर जाने लगे, तो नरेन बोला, "भाई, ये चारपाइयाँ...."

"तुम लोगों के लिए यहीं अस्पताल बनेगा," उनमें से एक बोला।

"क्यों ? अस्पताल तो...."

"उन्हें डर है कि तुम लोगों की बीमारी की छूत कहीं अस्पताल के दूसरे रोगियों को भी न लग जाय।" और वह हँस पड़ा।

"और जो हमारी बीमारी के कीड़े आज हवा के जर्रे-जर्रे में उड़ रहे हैं, उनके बारे में क्या ख्याल है उनका ?" मंजूर बोल पड़ा।

"उनका बस होता, तो न वे साँस लेते और न दूसरों को लेने देते।" वह बोला।

"यानी घुट कर मर जाते," हँस कर नरेन बोला।

"मर जाते साले तब तो जंजाल ही कटता। अरे भाई, यहाँ कूपर एलेन में मेरा एक रिश्तेदार भी काम करता है...."

"अबे, किसे गाली बक रहा है ?" अन्दर आता कोई बोला।

"किसी को नहीं, कम्पाउण्डर साहब, यह मेरा रिश्ते में...." अपने दूसरे साथी की ओर इशारा कर वह चुप हो गया।

"अच्छा. जा, जल्दी गरम पानी, बेसिन, साबुन वगैरा ला," फिर कम्पाउण्डर मंजूर और नरेन की ओर मुड़ कर बोला, "अब आप लोग जरा तकलीफ कीजिये। चारपाइयों पर लेट जाइये, तो मैं पट्टी-वट्टी कर दूँ। उठ तो सकते हैं न? लाठी-ही-लाठी पड़ी है या एकाध गोली-वोली भी....सुना है कि पुलीस ने कल गोलियाँ काफी सस्ती कर दी थीं....

"डाक्टर साहब को आ जाने दीजिये। हम यहाँ...."

"जरा इधर आइये तो आप लोग। डाक्टर साहब भी आयेंगे। आज सत्तर जख्मी कैदियों को उन्हें देखना है। बहुतों को गोलियाँ भी लगी हैं। आइये आप लोग। देखूँ तो मैं।" कम्पाउण्डर बोला।

"हमें अस्पताल में क्यों नहीं ले जाया जाता?" मंजूर ने विरोध के स्वर में कहा।

"अधिकारियों की मर्जी। लेकिन इस वक्त यह बात उठाने का वक्त नहीं है। जरा सँभल तो लीजिए आप लोग। सीधे पैर खड़ा हो कर लड़ना अच्छा होता है। खामखाह के लिए कहीं और कुछ हुआ, तो उनका क्या बिगड़ेगा? वे तो पागल हो ही गये हैं। वर्ना क्या ऐसा होता? आइये आप लोग।"

कम्पाउण्डर के स्वर में अपने प्रति सहानुभूति पाकर मंजूर चुप हो गया। नरेन बोला, "मैं तो उठकर आ सकता हूँ। लेकिन यह...."

"मैं इन्हें उठा लूँगा। आप आइये।"

"पहले इसे ही देखिये, इसकी...."

"अच्छा," कहकर कम्पाउण्डर ने मंजूर को दोनों हाथों से उठाकर चारपाई पर लेटा दिया।

कैदी पानी वगैरा रख गया। कम्पाउण्डर ने मंजूर के पैर पकड़कर कहा, "सीधा तो कीजिये।" और खुद खींच कर सीधा करने लगा, तो मंजूर दर्द के मारे चीख उठा।

"अच्छा, यों ही रखिये," उसके पैर छोड़ कर कम्पाउण्डर बोला, "मालूम होता है, हड्डी पर चोट आयी है। कहीं प्लास्टर न लगाना पड़े।" और जख्म धीरे-धीरे धोकर पट्टियाँ बाँध दीं। फिर सिर की पट्टियाँ खोलते बोला, "अखबार मे आज सरकारी बयान निकला है, कि आप लोगों का जुलूम मीसामऊ थाने पर हमला कर रहा था, तो पुलीस को अपनी रक्षा करने के लिए गोली चलानी पड़ी। क्या सच-मुच आप लोग ...."

मंजूर नफरत के आवेग मैं मुस्कराया, तो कम्पाउण्डर बोला, "आप न बोलिये।"

नरेन बोला, "अगर जुलूस सिर्फ कम्युनिष्ट मजदूरो का ही होता, तो जनता सरकार के इस झूठे बयान से धोखे में आ जाती। लेकिन जिस जुलूस में हिन्दू, मुसलमान, अछूत, कम्युनिस्ट, काग्रेसी, लीगी, सोशलिस्ट सभी मजदूर शामिल थे, उसके बारे में ऐसा झूठा बयान सुन कर जनता घृणा और क्रोध से भर कर सरकार के मुँह पर थूक देगी। जुलूस में आगे-आगे सैकड़ो स्त्रियाँ और बच्चे थे, हम बिलकुल निहत्थे थे। इस हालत मे कोई भी क्या इस बात पर विश्वास कर सकता है, कि हम बन्दूक-गोली से लैस थाने पर हमला बोलेंगे? इस झूठे बयान से सरकार जनता को भ्रम मे नहीं डाल सकती। कानपुर का बच्चा-बच्चा जानता है, कि हमारा वह जुलूस मिल-मालिको के अन्यायों के खिलाफ एक शान्तिपूर्ण प्रदर्शन था।"

कम्पाउण्डर फूटे सिर के गहरे जख्मों को धो रहा था और नरेन बोलता गया, "आप ही बताइये, जब सरकार ने ऐलान कर दिया कि मजदूरों को उन्नीस सौ पैंतालीस और छियालीस की छुट्टियों के बदले दस-दस दिन की तनखाह मिलनी चाहिये, तो मिल-मालिको को देना चाहिये या नहीं?"

कम्पाउण्डर बोला, "जरूर देना चाहिये।"

"मगर उन्होंने इनकार कर दिया। मीन-मेख निकालने लगे और नौकरशाही का सहारा पाकर हड़प जाने की कोशिश करने लगे। हम ने जब यह देखा, तो अपने एक मात्र हथियार, हड़ताल, का सहारा लिया। हर मिल में नोटिस दे दी गयी। इस पर जानते हैं क्या हुआ? होना तो यह चाहिए था कि कानून के मुताबिक हमें दस-दस दिन की वाजिब तनखाह देते, लेकिन हुआ यह कि मिल-मालिकों ने सीधे हम पर हमला बोल दिया। जे० के० काटन मिल, जहाँ मैं काम करता हूँ, के डायरेक्टर सोहन लाल सिंहानिया एक मजदूर कार्य-कर्त्ता दीना को चोरी में फँसाना चाहते थे। उन्होंने दो चौकीदारों को बुलाकर उसके खिलाफ गवाही देने के लिए कहा। लेकिन जब उन्होंने इनकार कर दिया, तो सोहन लाल ने आग-बबूला हो कर फौरन हुक्म दे दिया कि दीना और दोनों चौकीदारों को फौरन बर्खास्त कर दिया जाय। हमें इसकी खबर लगी, तो हम इसका विरोध करने के लिए इकट्ठे हो गये। इस पर सोहनलाल के सार्जेन्ट ने रिवाल्वर निकाल कर फट-फट गोलियाँ दाग दीं और हममें से कइयों को जख्मी कर दिया।

"यह तो मैंने आपको इनकी जल्लादी का एक मामूली नमूना बताया। ये अपने जोर-जुलुम से हमें दबाकर अपना उल्लू सीधा करने पर उतारू हो गये थे।

"दूसरे दिन इतवार था। गोली चलने की खबर सुन सभी मजदूरों के चेहरे गुस्से से लाल हो रहे थे। वे गोलियाँ जे०के०के चन्द मजदूरों को ही नहीं लगी थीं, उनसे आज हर मजदूर की छाती छलनी हो रही थी। हर मजदूर की घायल आत्मा कह रही थी, 'अब यह जुल्म बर्दाश्त नहीं होता। अभी तक हमने मालिकों की गालियाँ सहीं, फटकारें सुनीं, सभी बेइज्जतियाँ बर्दाश्त कीं, जूते खाये; लेकिन अब तो इन्होंने हमें गोलियों से भी भुनना शुरू कर दिया। क्या हमारी जिन्दगी का कोई

मूल्य नहीं ? क्या हम इन्सान होकर भी कुत्ते-बिल्ली से भी गये गुजरे हो गये हैं, जो अपनी जान बचाने के लिए भी कुछ नहीं कर सकते ? नहीं, अब और नहीं सहेंगे ! हड़ताल होनी चाहिए—मुकम्मल हड़ताल !

"और जैसे जुलुम अभी इन्तहा पर नहीं पहुँचा था कि नौकरशाही का हम पर दूसरा हमला शुरू हो गया। पुलीस ने जे० के० के ग्यारह जख्मी मजदूरों को पकड़ लिया। वाह, कितना अच्छा इन्साफ है ! खूनी सोहनलाल और जालिम सार्जेन्ट चैन की बंशी बजायें, और जख्मी मजदूरों को तुम जेल में बन्द कर दो !

— "और आतंक फैलाकर दूसरे दिन तीन बजे सुबह से ही हमारी आम हड़ताल की घोषणा को रद्द करने के लिए पुलीस की लारियाँ हमारी बस्तियों में चक्कर लगाने लगीं। सुबह होते-होते खबरें आने लगीं कि मौलाना यूसुफ, सन्तोष, सोने लाल, माधो, जान महम्मद, गंगादीन वगैरा मजदूरों के प्यारे नेताओं के साथ कांग्रेसी, सोशलिस्ट आदि मजदूर-नेता भी पकड़ लिये गये, जैसे अन्धे नौकरशाहों को मजदूर और मजदूर-नेता नाम से ही चिढ़ हो गयी हो।

"इतने पर भी हम चुप कैसे रह सकते थे ? आप ही बताइये, इन अत्याचारों के विरुद्ध हमने आम हड़ताल कर, जलूस निकालकर अपना गुस्सा जाहिर किया, तो क्या अपराध किया ? आप एक सौ चौआलीस लगा दें, हमारी बस्तिओं में कर्फ्यू की धमकी दें, मिटिंग-जुलूस पर पाबन्दी लगा दें, हड़ताल को गैरकानूनी होने का फतवा दे दें, नारे लगाना, यहाँ तक कि दीवार पर लिखना भी जुर्म बना दें—याने हर तरह से हमारा चलना-फिरना, बोलना-चालना दुश्वार कर दें और हमारी जिन्दगी को नरक बना दें और हमें जेलों में बन्द कर दें और फिर हमसे यह उम्मीद करें, कि हम आपके हर अन्याय, जुलुम, ज्यादती और अपमान को सिर-आँखों पर ले चुप हो जायँ। ऐसा क्या किसी के लिए भी मुमकिन है ?"

"ठीक कह रहे हैं आप," कम्पाउण्डर ने पट्टी बाँधते कहा।

"और कल इन अत्याचारों के विरुद्ध नौकरशाहों के नाजायज हुक्मों को रौंदते हुए हम अपनी आवाज़ बलन्द करने सड़कों पर निकल पड़े। हममें आज कोई पार्टी-भेद नहीं रह गया था। आज हर मजदूर ने यह समझ लिया था, कि नौकरशाही का हमला पार्टी का भेद नहीं करता। वह सभी मजदूरों पर बराबर हमला करता है और उसका जवाब सभी मजदूरों का संयुक्त मोर्चा ही दे सकता है। वही हुआ। हमारा जुलूस नारे लगाते सड़क से गुजर रहा था। जरीब की चौकी पर पहुँचा, तो सामने पुलीस और फौजियों के आगे कोतवाल अब्दुल रशीद और बयालीस के हिटलर हैलट का दाहिना हाथ स्टीफन्सन खड़े थे। इन्हें हमारे प्रान्त का कौन नहीं जानता। रशीद ने चिल्ला कर हुक्म दिया, "हटो, वापस जाओ!"

"और उसके हुक्म के साथ ही पुलीस ने तड़ातड़ लाठियाँ चलानी शुरू कर दीं। निहत्थे मजदूर पटापट गिरने लगे। तभी राइफलें भी तड़-तड़ करने लगीं। निशाना ताक-ताक कर वे गोलियाँ चला रहे थे। पहले औरतें गिरीं, फिर मर्द गिरने लगे। सड़क पर खून की धारें बह चलीं।"

"यहाँ तो गोली लगी मालूम होती है, मंजूर की बाँह उठाता कम्पाउण्डर बोल पड़ा, "डाक्टर साहब जाने कहाँ रह गये!"

तभी डाक्टर ने अन्दर आ कर पूछा, "क्या हाल है?"

कम्पाउण्डर ने मंजूर का वह हाथ उठाते कहा, "यहाँ...."

"गोली शायद अन्दर रह गयी है। जाओ, औज़ार लाओ जल्दी।" और वह मंजूर के पास चारपाई पर बैठने लगा कि बड़े जोरों से नारे की आवाज आयी—"शहीदों के खून का! बदला ले कर रहेंगे!"...."खूनी स्टीफन्सन और रशीद को! फाँसी दो!"...."हमारे मजदूर नेताओं को!

रिहा करो !"....मजदूरों की एकता ! जिन्दाबाद !"...."शहीद मजदूर ! जिन्दाबाद !...."

"डाक्टर साहब, ये नारे...." मंजूर ने पूछना चाहा ।

"बाहर मजदूरों का जुलूस आया है और उनके नारों के साथ अन्दर के एक हजार कैदी आवाजें बलन्द कर रहे हैं । ये आवाजें अब और भी बलन्द होती जायँगी । मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर-आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी ! आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलायी है, वह कभी न बुझेगी ! उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्क्लाबी एकता की लड़ी में बाँध कर उसे मजदूरों के इन्क्लाब का रास्ता दिखायेगी !...."

डाक्टर बोलता जा रहा था और नारे गूँज रहे थे—" दुनिया के मजदूरो ! एक हो !"...."इन्क्लाब ! जिन्दाबाद !...."

कम्पाउण्डर के हाथ से औजार ले कर डाक्टर मंजूर पर झुका, तो वह बोला, "डाक्टर साहब, जुलूस में मेरे घर की सकीना और मदीना और शकूर भी थे । सकीना की गोद में मेरा बच्चा...."

डाक्टर के होंठों पर एक करुण मुस्कान उभर आयी । उसने कम्पाउण्डर की ओर खबर लाने का इशारा किया । कम्पाउण्डर बाहर चला गया, तो वह मंजूर का हाथ अपने हाथ में ले, उसकी गोली निकालने में लग गया ।

गोली निकाल कर पट्टी बाँधी । फिर दूसरे हाथ और पीठ को देखा और उनकी पट्टियाँ भी ठीक कर नरेन की ओर मुड़ता बोला, "कहिये, जनाब, आपका क्या हाल है ?" फिर सहारा देकर उसे भी चारपायी पर लेटा दिया और मरहम-पट्टी में लग गया ।

काफी देर तक कम्पाउण्डर जब नहीं लौटा, तो नरेन बोला, "कम्पा उण्डर साहब नहीं लौटे ?"

डाक्टर के होंठों पर फिर वही मुस्कान उभर आयी। बोला, "आपका भी कोई...."

मंजूर बोल पड़ा, "सकीना इसकी भाभी है। यह उसे बहुत प्यार करता है।"

तीनों मुस्करा उठे। उन मुस्कानों में करुणा के ऊपर हृदय के मासूम प्यार की शर्मायी हुई मधुरता, स्निग्धता और ज़िन्दगी करवटें ले रही थीं।